श्री राम उवाच-दो

यतना की महिमा

आचार्यश्री रामलालजी म.सा.

प्रकाशक

श्री अखिल भारतवर्षीय साधुमार्गी जैन संघ

समता भवन, बीकानेर (राज.)

प्रकाशकीय

आचार्यप्रवर श्री रामलालजी म सा हुक्मगच्छ के नवम् नक्षत्र एवम् परम पूज्य आचार्यप्रवर श्री नानालालजी म सा के पट्टधर है। आचार्यश्री नानालालजी म सा ने स्वय अपने कर कमलो से बीकानेर के ऐतिहासिक जूनागढ दुर्ग के प्रागण मे चतुर्विध सघ की साक्षी मे आपको युवाचार्य पद की पछेवडी प्रदान की थी। आपका प्रथम स्वतन्त्र चातुर्मास निम्बाहेड़ा की पावन भूमि पर सम्पन्न हुआ था। प्रस्तुत कृति उसी चातुर्मास के कतिपय मगल प्रवचनो का सम्पादित सकलन है। इन प्रवचनो का सरक्षण महाश्रमणीरत्ना श्री इन्द्र कवरजी म सा के निर्देशानुसार विदुषी महासतीवर्या श्री सुयश प्रज्ञाजी म सा ने किया। सम्पादन हेतु मेरे मित्र श्री इन्द्रचन्द बैद ने ख्यातनामा शब्द-शिल्पी डॉ आदर्श सक्सेना का चयन किया। सम्पादित प्रवचनो का समीक्षण कवि रत्न श्री गौतम मुनि जी म सा द्वारा सम्पन्न हुआ।

ग्रन्थ-प्रकाशन मे हमारे सघ के उदीयमान उत्साही कार्यकर्ता श्री रतनलालजी राका, चैन्नई का अर्थ सहकार-रूप आग्रह रहा। इन सभी श्रद्धेय आत्मीय जनो के भरपूर सहकार से यह भगीरथ कार्य सम्पन्न हो सका है। श्रद्धेय एवम् आत्मीय जनो के प्रशस्त सहकार हेतु मै अपनी अनेकश शुभकामनाए एव शुभ भावनाए सप्रेषित किए बिना नही रह सकता।

सम्पादन मे आचार्यप्रवर के मूल भावो को सुरक्षित रखने का पूर्ण प्रयास किया गया है तथापि अज्ञानवश यदि कही कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिये हम हृदय से क्षमाप्रार्थी है।

हमे विश्वास है कि यह सकलन पाठको को आचार्यप्रवर की अमृत वाणी से लाभान्वित होने का सुअवसर प्रदान करेगा।

शान्तिलाल सांड
सयोजक

साहित्य प्रकाशन समिति
श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ
समता भवन, बीकानेर

अर्थ-सहयोगी : एक परिचय

स्वनामधन्य श्रेष्ठिवर स्व श्री रोडमलजी सा राका तथा उनकी धर्मपत्नी स्व श्रीमती कचनबाई मूल निवासी सारोठ (ब्यावर के पास) है। स्व श्री मेघराजजी राका के सुपुत्र श्री रोडमलजी उदार, सरल, धर्मनिष्ठ, सेवाभावी सुश्रावक थे। पाच पुत्र एव एक पुत्री के पिता श्री राकाजी ने अनेक व्रत-प्रत्याख्यान अगीकार कर रखे थे। नियमपूर्वक 5-6 सामायिक, स्वाध्याय आपके प्रतिदिन की दिनचर्या मे शामिल थे।

आपके ज्येष्ठ पुत्र स्व श्री बालचन्दजी राका ने अपना कार्यक्षेत्र दक्षिण मे मद्रास को बनाया। व्यापार मे अभिवृद्धि के साथ-साथ आपने धार्मिक, सामाजिक कार्यो मे भी यश प्राप्त किया। तण्डियारपेट मे 'समता भवन' निर्माण मे आपका मुख्य सहयोग रहा। श्री बालचन्दजी के पुत्र श्री अशोकजी भी उन्ही के पदचिह्नो पर चल रहे है।

द्वितीय पुत्र श्री कन्हैयालालजी राजस्थान मे ही रहते है। आप सारोठ सघ के अध्यक्ष है। तृतीय एव चतुर्थ पुत्र श्री सम्पतराजजी, श्री पारसमलजी एव पुत्री श्रीमती नवरतनबाई भी धर्मनिष्ठ एव सद्सस्कारी है एव सपरिवार मद्रास मे रहते है।

आपके छोटे पुत्र **श्री रतनलालजी राका** अत्यन्त मिलनसार, मृदुभाषी, सहृदय, उदारमना, सेवाभावी युवारत्न है। आपका धार्मिक-सामाजिक कार्यक्षेत्र विस्तृत है। आपने श्री साधुमार्गी जैन सघ, तण्डियारपेट के पूर्व अध्यक्ष के रूप मे समता भवन एव उसकी गतिविधियो मे काफी प्रशसनीय कार्य किया। आप श्री साधुमार्गी जैन सघ चैन्नई के मानद मत्री है। अ भा सा जैन सघ के आप न केवल कार्यकारिणी के सदस्य है बल्कि एक कर्मठ कार्यकर्ता भी है। स्थानीय एव बाहर की अनेक सस्थाओ मे आप जुडे हुए है एव उनमे आपका महत्त्वपूर्ण आर्थिक सहयोग रहता है।

आप केवल व्यापार एव धनोपार्जन मे ही नही अपितु पारमार्थिक कार्यो मे भी पूर्णरूपेण सक्रिय है।

'आर आर प्लास्टिक' तथा 'आर आर इलेक्ट्रो ट्रेडर्स के नाम से ख्यातिप्राप्त प्रतिष्ठान के मालिक होते हुए भी आप 'सादा जीवन उच्च विचार' के प्रतीक है।

आपकी धर्मपत्नी श्रीमती सन्तोषबाई धार्मिक प्रवृत्ति, सत सेवा एव आतिथ्य-सत्कार मे सदैव अग्रणी रहती है एव अपने पति को धार्मिक कार्यो मे सदा सहयोग देती रहती है। सचमुच मे यह कहावत यहॉ शत-प्रतिशत चरितार्थ होती है कि 'हर सफल आदमी के पीछे एक महिला का हाथ रहता है।' आपके दो पुत्र—श्री मुकेशकुमार और राकेशकुमार भी अपने पिता के पदचिह्नो पर चल रहे है। आपके एक पौत्र भी है—श्री ऋषभकुमार।

आपका परिवार एक धर्मनिष्ठ परिवार है। आदर्श त्यागी, पण्डितरत्न, शासन प्रभावक श्री धर्मेशमुनिजी म सा एव आदर्श त्यागी विदुषी साध्वीश्री जयश्रीजी म सा के आप ससारपक्षीय साला एव भाई है।

आपका परिवार स्व आचार्यश्री नानेश एव वर्तमान आचार्यश्री रामेश के प्रति अनन्य आस्थावान एव पूर्णरूपेण समर्पित है। आपने श्री अ भा साधुमार्गी जैन सघ को वर्तमान आचार्यश्री रामलालजी म सा के प्रवचनो एव सद्साहित्य को प्रकाशित करने एव जनसाधारण तक पहुॅचाने के लिए सहायतार्थ अपनी सहमति प्रदान की है, इसके लिए सघ आपका आभारी है।

—केशरीचन्द सेठिया

अनुक्रम

त्याग का आदर्श : साध्वीरत्ना धापूकंवरजी म.सा.

सस्कृत सूक्ति भडार की एक लोकप्रिय सूक्ति है—

महाजनो येन गता स पन्था ।

अर्थात् महाजन जिस मार्ग पर चले, व्यक्तियो को उसी मार्ग पर चलना चाहिये। इसके अर्थ को ध्यान मे लेते हुए बाल गगाधर तिलक और भण्डारकर मे काफी चर्चा हुई। भण्डारकर का कहना था कि महाजन जिस पर चले, वही पथ है। तिलकजी ने कहा—जिन महाजनो की बात है यदि वे स्वय कभी झूठ बोलते हो, चोरी करते हो, अन्य असद् आचार उन्होने जीवन मे किया हो तो फिर वह पथ कैसे आचरणीय हो सकता है? चर्चा के दौरान बात आई कि ब्रह्मा, विष्णु और महेश को महाजन माना जाता है तो इनमे से किसका पथ स्वीकार किया जाये क्योकि किसी एक का पथ स्वीकार करने से विसगतियॉ उत्पन्न होगी। तिलकजी ने कहा—ब्रह्मपुराण मे उल्लेख आता है कि ब्रह्माजी स्वय एक बार अपनी पुत्री पर मुग्ध हो गए थे फिर उनका यह आचार अन्यो के लिए आचरणीय कैसे हो सकता है? विष्णुपुराण मे विष्णु को अनेक लीलाऍ करने वाला बताया गया है, वह आचरण भी सामान्य जनो के लिए अनुकरणीय नही है। शिव भी श्मशानवासी है उसका अनुकरण भी हर व्यक्ति के लिए शक्य नही है। महाजनो का पथ तो ऐसा होना चाहिए जिस पर प्रत्येक प्राणी आसानी से गतिशील हो सके। उन्होने यह उत्तर अपनी दृष्टि से दिया। युगद्रष्टा, युगस्रष्टा ज्योतिर्धर जवाहराचार्य ने भी इस सूक्ति पर चितन किया और उन्होने कहा महाजन अर्थात् महानजन, और वे है वीतराग। वस्तुत उनका ही पथ चलने लायक है। दूसरे पथ तो उत्पथ होते है। उत्पथ अर्थात् ऊबड़-खाबड़, गड्ढे या चढ़ाई वाले पथ, जिन पर आरोहण दुरूह है, पग-पग पर गिरने की सभावना रहती है। ऐसा पथ गतव्य तक नही पहुॅचा सकता।

देवताओ और वीतरागो के पथ की बाते अपने स्थानो पर और भक्तो की दृष्टि से सही है, परन्तु यह भी ध्यान मे रखने की बात है कि उनके द्वारा दिखाये

गये पथ अथवा मार्ग आदर्श मार्ग है। सीमित मानसिक और आध्यात्मिक क्षमताओ से युक्त सामान्य जन उन्हे इसी रूप मे ग्रहण कर उनके अनुसरण का प्रयास करते है। वे पूर्णत उन पर चल पाते है या नही, यह तो दूसरी बात है। प्रमुख बात है यह देखना कि उनकी उन मार्गो पर चलने की कामना कितनी प्रबल होती है और कितने समर्पित भाव से वे अनुसरण-हेतु प्रवृत्त होते है। यदि उनकी प्रवृत्ति पूर्ण समर्पित निष्ठा की बनती है तो समझ लिया जाना चाहिये कि उन्हे मजिल मिल जायेगी। वे कितनी दूर तक चल पाते है, कहॉ तक पहुॅच पाते है और कितने सफल होते है, ये बाते तब अर्थहीन हो जाती है क्योकि मुख्य बात भावना की होती है और उसकी उत्कटता ही मजिल तक पहुॅचाने मे सहायक होती है। वर्तमान काल के सत-सती जन इस दृष्टि से उत्कृष्ट आदर्श प्रस्तुत करने मे समर्थ हुए है। ऐसे जिन समर्पित जनो ने धर्म प्रभावना के मार्ग को आलोकित किया है उनमे महासती शा प्र साध्वीरत्ना श्री धापूकवरजी म सा का नाम प्रथम पक्ति मे गणनीय है। उन्ही के समाधिमरण पर श्रद्धासुमन अर्पित करने का प्रसग आज उपस्थित हुआ है। 'धापू' नाम को उस महासती ने किस प्रकार गौरवान्वित किया एव उसे नया भाव-बोध प्रदान किया इस पर आज चिन्तन अपेक्षित है।

हम जानते है कि एक समय था जब किसी परिवार मे बेटियॉ ही बेटियॉ जन्म लेती थी तब परिवारजन पुन बेटी होने पर उसका नाम धापू रख देते थे, यह ज्ञापित करने के लिये कि हम बेटियो से धाप चुके है अर्थात् उनसे तृप्त हो चुके है। इस प्रकार यह नाम कन्या के प्रति एक प्रकार से अरुचि का बोधक बन गया था और जब इसी भावना से श्रीमती गगाबाई ने अपनी नवजात कन्या का नाम 'धापू' रखा था तब न उन्हे, न उनके पति श्री बीजराजजी पटवा को यह ज्ञात था कि वह होनहार कन्या कालान्तर मे 'धापने' को नया अर्थ दे देगी और परिवार के लिए कीर्ति और सौभाग्य की गगा बहाकर उसे धपा देगी अर्थात् तृप्त कर देगी और स्वयं के जीवन की भी तृप्ति कर लेगी। उसी धापूबाई ने यौवन मे प्रवेश करते ही सत-सगति से वह कार्य कर दिखाया, जिसे बडे-वडे योद्धा भी नही कर पाते और पीछे रह जाते है।

एक घटना पर दृष्टिपात करे जो राजगृह की है। एक लकडहारा प्रभु महावीर के चरणो मे साधु बन गया। राजकीय एवं प्रशासक वर्ग के अनेक व्यक्ति उसे प्रभु के पास देख कर ईर्ष्याग्रस्त हो गये और किसी रूप मे उसका उपहास भी करने लगे—अरे कल तक तो लकडियॉ ढोता फिरता था, अव साधु

बनकर मौज मनाएगा। खाने-पीने को नही मिलता रहा होगा, अब समस्या सुलझ जायेगी।। अभयकुमार ने पास से निकलते हुए इन शब्दो को सुन लिया। उनके मन मे विचार आया—अरे, ये पॉच इन्द्रियो के दास, विषयो के गर्त मे पडे हुए व्यक्ति एक साधु का उपहास कर रहे है। ये साधु-जीवन का आनद क्या जाने ? पर ऐसा उपहास नही करना चाहिये। वे अपने निवास पर पहुँचे, एक स्थान पर रत्नो की ढेरियॉ लगवा दी और नगर मे ऐलान करा दिया कि जो व्यक्ति जीवनपर्यन्त के लिए अहिसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को स्वीकार करेगा, ये ढेरियॉ उसे मुफ्त मे ही प्राप्त हो जायेगी। लोगो ने सुना, रत्नो की आकाक्षा भी बनी पर प्रतिज्ञा की शर्त मजूर नही हुई। कल जो उपहास कर रहे थे वे भी पीछे हटने लगे। अभयकुमार ने कहा—कल तक तो आप लोग बहुत बाते बना रहे थे, आज अवसर आया तो पीछे हटने लगे जबकि मात्र प्रतिज्ञा के बदले इतनी राशि मिल रही है। वे भी समझ गये और चरणो मे गिर पड़े—हमारी भूल हुई, हमे क्षमा करे। प्रतिज्ञा ले ली तो फिर यह सब-कुछ बेकार है। बाह्य सग्राम मे बल प्रदर्शन करने वाले आभ्यतर सग्राम मे पीछ रह जाते है। अत सग्राम मे विजय प्राप्त करने का गुरुतर कार्य महासती श्री धापूकवरजी ने सपन्न किया। उन्होने लगभग 55 वर्ष की सयमी आराधना पूर्ण की। कहा गया है—

एक घडी, आधी घडी, आधी मे पुनि आध।
तुलसी सगत साधु की, कटे कोटि अपराध।।

थोडे-से समय मे कोटि वर्ष के अपराध कैसे नष्ट हो जाते है, यह प्रमाणित किया श्रमणीरत्ना धापूकवरजी म सा ने। हमारे यहॉ भी कहा गया है कि सम्यक् दृष्टि से श्रावक की, श्रावक से सयत की निर्जरा क्रमश असख्यात गुणी अधिक होती है। पर निर्जरा कब होती है जब रूपान्तरण किया जाता है और महासतीजी ने अपने जीवन का रूपान्तरण किया था। विद्यार्थी 12 माह अध्ययन करता है पर परीक्षा-फल के आधार पर ही विचार किया जाता है कि उसने कैसा अध्ययन किया था। मेरिट लिस्ट मे यदि नाम आ गया तो माना जायेगा कि लड़के ने अध्ययन अच्छा किया था। साधना के क्षेत्र मे भी इसी आधार पर परिणाम निकलेगा कि साधक ने अपना कितना रूपान्तरण किया है। कुछ दिन पूर्व ही मैने बताया था कि आप काया को विदाई देने मे सकल्प-विकल्प मे न पड़े क्योकि काया तो निर्मम भाव से आपको विदाई देने मे तनिक भी सकोच नही करेगी। महासतीजी ने स्वय काया को विदाई देकर अच्छे अको

से उत्तीर्णता प्राप्त की है। उनके हृदय मे शरीर के प्रति निर्ममत्व-भाव आ गया था। आप कहेगे—सत भी क्या अपने शरीर की देखभाल एव सुरक्षा करते है ? उत्तर होगा—हॉ, आवश्यक होने पर उपचार लेते है। स्वय गौतमस्वामी बेले-बेले तप करते, पर पारणे के दिन प्रभु चरणो मे उपस्थित होकर कहते—भते। आपकी आज्ञा हो तो मै त्रिक्षार्थ परिभ्रमण करना चाहता हूँ। प्रभु ने कहा—अहासुह देवाणुप्पिया। प्रभु जानते थे कि वह शरीर भाव का पोषण करने नही जा रहे है। उसके लिए प्रभु अनुमति नही देते। प्रभु की दृष्टि आत्मा पर टिकी हुई थी और आहार भी साधना का साधन है। अत शरीर को थोडा-थोडा आहार देकर साधना के मनचाहे रत्न निकालते रहना चाहिये। यही प्रयास किया महासतीजी ने। यह सभवत 9वॉ चातुर्मास उदयपुर मे चल रहा था। पहले उनके शरीर मे फ्रेक्चर हो गया था और शरीर भारी होने से हड्डियॉ जुडने मे देर लगी थी। फिर चलने की स्थिति नही बनने से एक स्थान पर रहने का प्रसग बना। लेकिन फिर भी 'जल कमलवत्' रही। सहवर्ती साध्वियो मे श्री गुलाबकवरजी म सा तथा श्री शाताकवरजी म सा साथ ही थे। एक महीने के सथारे का प्रसग तो आगमो मे भी उल्लिखित है परन्तु 82 दिन पूर्ण कर 83 वे दिन महासती श्री गुलाबकवरजी म सा का सथारा कुछ ही समय पूर्व सीझा था। उस दृश्य को साक्षात् देखने वाले भी मौजूद है।

शा प्र महाश्रमणीरत्ना श्री पेपकवरजी म सा भी पधारे और महासती शा प्र महाश्रमणीरत्ना श्री इन्द्रकवरजी म सा भी शारीरिक स्थिति को गौणकर पहुँच गये। इनके अतिरिक्त त तपतेजस्विनी श्री कस्तूरकवरजी म सा आदि-आदि अनेक सत-सती वर्ग पहुँच गये थे। परिणामस्वरूप लगभग सम्मेलन जैसी स्थिति बन गई थी और सथारे मे लकवे की स्थिति भी ठीक हो गई। किसी ने उनसे पूछा—आपको भूख लगी होगी ? उन्होने दृढता से कहा—मेरे सामने ऐसी बाते मत करो। किसी ने गरमी से राहत पहुँचाने के लिए कपडा झलना चाहा तो उन्होने साफ मना कर दिया। ऐसी क्रियाएँ वस्तुत साधु के लिए वर्जनीय है। भीषण गरमी होने पर भी जिस कमरे मे उन्होने सथारा ग्रहण किया था वहॉ से स्थान-परिवर्तन भी नही किया तथा उत्कृष्ट भावो मे सतत् आसीन रहे और उन्हे सहयोग देती रही महासती श्री धापूकवरजी म सा । जब उन्हे खबर मिली कि निम्बाहेडा चातुर्मास खुला है तो उन्होने अपने पास से श्री सुमनप्रभाजी, श्री श्रद्धाश्रीजी, श्री रौनकश्रीजी—3 सतियो को रवाना भी करवाया, यह नही सोचा कि मेरी सेवा मे कमी पडेगी यद्यपि महासती श्री इन्द्रकवरजी म सा वहॉ विराज रहे थे फिर भी लोगो को ऐसा लगता है कि

उनके साथ वाले जायेगे तो मुश्किल होगी परन्तु उन्होने ऐसा नही सोचा। निष्पृहभाव से कह दिया—जाओ, वहाँ भी सतियो की आवश्यकता रहेगी। वे भटेवर तक आये भी पर लम्बे विहार की स्थिति व समय की अल्पता की वजह से उन्हे लगा, शायद पहुँचना सभव नही हो अत वे लौट गये।

महासती श्री धापूकवरजी ने समाधिमरण का मार्ग अपनाया था, इस प्रकार मृत्यु को ललकारा था और मृत्यु-महोत्सव मनाया था। आज व्यक्ति जन्म-महोत्सव मनाता है पर याद रखिये मृत्यु-महोत्सव द्वारा जन्म-परम्परा को तोडा जा सकता है, जबकि जन्म-महोत्सव तो उसकी शृखला को और आगे ही बढाता है। कभी-कभी व्यक्ति घबराता है, पर क्यो ? हम जानते है कि जीव तो जाने के स्वभाववाला है तो फिर जन्म और मृत्यु मे हर्ष-शोक क्यो ? पुराने समय से ही शोक-सभा का आयोजन होता रहा है। मैने एक बार इदौर मे कहा था—यह शोक सभा नही है। मै इस खेद या शोक को नही मानता। मुझे तो सतोष है। आप कहेगे कि मै यह क्या कह रहा हूँ ? सोचिये, हममे से किसी ने भी तो जीते रहने का पट्टा नही लिखाया है। जब हम जानते है कि मृत्यु आयेगी तब हम स्वय ही यदि तिलक देकर रवाना कर रहे है तो इससे बड़ा सतोष और क्या हो सकता है ? यह प्रसन्नता नही है, सतोष है। इसी कारण तो हमने नग्नभाव और मुडभाव को स्वीकार किया है। आप पूछेगे कि जब नग्नभाव स्वीकार किया है तो साधु वस्त्र क्यो पहनते है ? प्रभुजी नग्न भाव मे रहते थे और हम तो महान् जनो का अनुकरण करने वाले है। लेकिन हम जरा गहराई से सोचे कि प्रभु ने किस रूप मे नग्नता स्वीकार की थी ? कपड़े से नही, भावो से। भावो की नग्नता का अर्थ है जैसे ऊपर के कपड़े आवरण-रूप है वैसे ही भावो का आवरण आत्मा पर नही होने पाये। कथनी व करनी मे ऐक्य बने, तदनुरूप व्यवहार ढले। यह नही कि 'मुह मे राम बगल मे छुरी।' तो सफलता नही मिलेगी। क्योकि हम जानते है कि—

राम झरोखे वैठकर सवका मुजरा लेय।
जाकी जैसी चाकरी वैसा ही फल देय।।
राम नाम सव कोई कहे ठग, ठाकुर अरु चोर
विना प्रेम रीझे नही तुलसी नद किशोर।।

मुड भाव मे ऊपरी मुडन नही, पाँच इन्द्रियो व मन का मुडन करना है। औरगजेब ने किया था बाह्य मुडन। सभी मूर्तियो मे से किसी के कान काटे,

किसी की नाक काटी और किसी का और कोई अग खण्डित किया, किसी भी मूर्ति को अखड नही रहने दिया। प्रभु ने कहा है—5 इद्रियो के विषय से मुडना है। आकर्षक दृश्यो पर चक्षु का आकर्षण नही बने। इसी प्रकार अन्य इद्रियो का भी उनसे सबधित वस्तु के प्रति आकर्षण न बने। मन को अशुभ विचारो से मोडे। वचन को भाषा समिति से समित करे—कहा भी है—साधु सोहता अमृत वाणी। इसी प्रकार काया को भी सवृत करे। नग्न भाव और मुड भाव से हमारे जीवन मे अमृत बूदे बरसेगी, फिर मरण की स्थिति नही बनेगी। मरण वह होता है जो इद्रियो की गुलामी मे हो। महासतीजी ने युगद्रष्टा आचार्यदेव श्रीजवाहर के चरणो मे, जब वे अस्वस्थता के कारण भीनासर विराजित थे, निवेदन किया—**आलित्तेण भंते लोए, पलितेणं भते**।—भगवन् यह ससार जल रहा है, विषय-वासना का भयकर ताप है। वासना का भी ज्वर होता है, शरीर धूजने लगता है। व्यक्ति समझ नही पाता। यह ताप जीवन को गरमी देकर भीतर की शक्ति को नष्ट कर देता है। भगवान् मुझे इस ताप से बचा लो। साधु धर्म मे प्रवेश दिला दो। विनती की तो आचार्य भगवन् ने उनकी भावना को समझा और फिर वह कवच पहना दिया जिसके भीतर ताप का प्रवेश नही हो सकता। राजगृह मे रत्न कम्बल के व्यापारी पहुँचे, आजकल जिस प्रकार वाटरप्रूफ तकनीक द्वारा जल से बचाव हो सकता है वैसे ही ये फायरप्रूफ रत्न कम्बल होते थे जिन्हे ओढकर व्यक्ति आग मे कूदकर भी सुरक्षित रह सकता था। आज हम विज्ञान की खोज पर विस्मित होते है पर ये हमारे प्राचीन कलाकार कितनी कलाएँ जानते थे, इसका ध्यान नही रखते। वे कम्बल आग और पानी मे कवच-रूप होते थे। भगवान् ने भी कवच दिया है। वह है सवर रूप, सयम रूप। जो आश्रवो को रोकता है। आचार्यदेव ने प्रभु का वह कवच उन महासतीजी को पहनाया और फरमाया—अब तुम्हारी आत्मा के निकट विषय-वासना की आग फटक ही नही सकेगी **करेमि भते! सामाइय सव्वं सावज्जं जोग पच्चक्खामि जावजीवाए तिविहं तिविहेण मणेण वायाए काएणं न करेमि न कारवेमि करतंपि अन्नं न समणुजाणामि तस्स भते! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि**। और आजीवन सावद्य कार्यो का त्याग करवा दिया। ऐसा कार्य तो वीर ही कर सकते है। कहा भी है—

प्रण वीरा रो शृंगार, कायर कई लेसी।

यह तो वैसी ही बात है जैसे रेलगाडी मे यात्रा करनी हो तो कुछ खर्च करना होगा। टिकट नही लिया तो टिकट निरीक्षक जेल की हवा खिलायेगा।

उस यात्रा मे पैसे की टिकट होती है जबकि मुक्ति का टिकट त्याग है और त्याग से ही मुक्ति रूप गतव्य मिलता है। त्याग की इतनी महत्ता नही होती तो प्रभु उसे क्यो अपनाते ? आप कहेगे—माता मरुदेवी तो हाथी पर आरुढ थी और मुक्त हो गई पर ऐसी माता मरुदेवी कितनी हुई है ? उन्होने उस भव मे त्याग भले ही न किया हो पर पूर्व जन्मो मे खूब तपस्याए की थी। आगे बढना है तो त्याग को अपनाना ही होगा।

एक सेठ महात्मा के पास गया। महात्मा ने कहा—कोई त्याग ले लो। सेठ ने कहा—अब आप कहते ही है तो यह नियम दिला देवे कि मेरे घर के सामने जो कुभकार रहता है जिसके सिर पर बाल नही है, मै प्रतिदिन उठता हूँ तो जो सामने दिख जाता है उसकी टाट जिस दिन नही देखूँ, भोजन नही करूँ। महात्मा ने सोचा—कोई बात नही, चलो इसकी भावना तो बनी। एक बात याद आ गई। एक भिक्षु 12 वर्ष तक सेठ के घर भिक्षा के लिए घूमता रहा पर किसी ने कुछ देना तो दूर रहा एक शब्द भी नही कहा। एक दिन सेठानी ने कह ही दिया—'क्यो आता है रोज-रोज, मै कुछ नही देती।' भिक्षु तो मारे प्रसन्नता के झूमने लगा। वह घर से बाहर निकल रहा था इतने मे सेठजी आ गए। सेठजी भी मक्खीचूस थे। रोटी लूखी खा लेते पर घी तिजोरी पर चोपड़ा जाता। देखा—भिक्षु प्रसन्न है। पूछा—क्या बात है, बहुत खुश हो ? उत्तर मिला—अरे, मुझे तो आज भीख मिल गई। सेठजी दौड़े घर के भीतर। पूछा—सेठानी ! तुमने ये क्या किया, एक को दोगी तो भीड लग जायेगी। सेठानी ने कहा—अरे बाबा, मैने तो कुछ दिया ही नही। सेठ ने कहा—तो क्या वह झूठ बोल रहा था ? खैर, पहुँचे उसके पास। तुम साधु होकर झूठ बोलते हो, तुम्हे तो सेठानी ने कुछ दिया ही नही है। भिक्षु ने कहा—हॉ हॉ, उसने मुझे दिया है। 'हकारा' नही तो 'नकारा' ही सही। आज नकारा तो दिया है, आज के पूर्व तक बोलती भी नही थी। अब कभी 'हकारा' भी देगी। इसीलिए मै खुश हूँ। वात सेठ और कुभकार की चल रही थी। महात्मा ने भी सोचा सेठ की त्याग की भावना तो बनी। नियम दिला दिया। बराबर पालन होता रहा। एक दिन कुभकार मुँह अधेरे ही मिट्टी लेने चला गया। सेठ देर से उठा। सोचने लगा—पता नही मिट्टी की खदान से वह कब आएगा। मै ही खदान पर चला चलूँ। उधर कुम्हार ने ज्योही मिट्टी की खुदाई की, एक सोने का चरू दिखाई दिया। तुरत मिट्टी चरू पर डाल दी। उसने सोचा—अभी लेना ठीक नही है रात्रि मे आकर ले जाऊँगा। वह काम करके उठ ही रहा था कि सेठ ने जोर से आवाज

लगाई 'देख लिया, देख लिया।' कुम्हार डरा—अरे, इसे तो मेरा राज मालूम चल गया। अब क्या होगा ? उसने भी कहा—देख लिया यह तो ठीक है पर अब चिल्लाता क्यो है। सेठ ने समझा जरूर दाल मे काला है। बोला—चिल्लाऊँ क्यो नही। जब मैने देख लिया। कुम्हार ने कहा—अरे भाई, दो जने और आ गए तो फिर हिस्सा बट जायेगा। वणिक भाई को समझते देर नही लगी। बोले—तो फिर लाओ मेरा हिस्सा। उन्हे आधा हिस्सा धन का प्राप्त हो गया। अब विचार आया कि मैने तो त्याग का मखौल उडाया था फिर भी उपलब्धि हुई। इसका मतलब है त्याग की बहुत महिमा है। इसके बाद तो उसने अनेक त्याग व्रत ले लिये। त्याग पर श्रद्धा बढ गई थी। त्यागमय जीवन अपनाकर महासतीजी ने जीवन सफल किया। सयोग की बात है, दीक्षा भी ग्यारस को ली, ग्यारस को ही प्रयाण कर दिया। तब यह समझ ले कि त्याग की महिमा अपरम्पार है और किसी रूप मे ही सही, किसी प्रकार का त्याग करने का व्रत अवश्य ले। श्रद्धा बढेगी, साधना घनीभूत होगी और प्रभूत धर्म-लाभ होगा। यह धर्म-लाभ जीवन का निश्चित रूप से उद्धार करेगा, यह हम विश्वास रखे।

ग्यारस को दीक्षा लेकर उन्होने शासन मे सदा एक और एक ग्यारह का ही काम किया। उनकी शासन के प्रति निष्ठा-समर्पणा अनूठी थी। गुरु आज्ञा को उन्होने सदैव अहमियत दी। एक सभ्रात परिवार मे जन्म लेने के बावजूद उन्होने त्याग का उच्च आदर्श स्थापित किया। दीर्घ काल तक सयमी जीवन का पालन कर शासन की भव्य प्रभावना की और त्यागमय जीवन का आदर्श बन गईं। ❖

श्रावण शुक्ला 13/14
27-8-96

रक्षाबंधन पर्व का संदेश

पद्मप्रभ जिन तुज मुज आतरु रे, किम भाजे भगवत?
कर्म विपाके कारण जोईने रे, कोई कहे मतिमत।।

पद्मप्रभु भगवान की प्रार्थना से सबधित इन पक्तियो मे कवि आनदघनजी भगवान के चरणो मे आत्म समर्पण की बात कह रहे है। इस प्रसग मे आत्मा के तीनो भेदो—बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा की परिकल्पना वे कर लेते है। प्रार्थना मे मानो उनकी अन्तरात्मा प्रभु के चरणो मे यह अनुभूति कर रही है कि मै और परमात्मा दोनो एकजातीय है। हम दोनो का स्वरूप एक है और मै बहुत बार उनके साथ खेला हूँ, उठा-बैठा हूँ और शयन भी किया है। हमारे बीच इतनी गहरी प्रीत रही पर आज वे मुझसे बहुत दूर है। लेकिन मै दूर नही रह पा रहा हूँ। उनके स्वर निकल पड़े—पद्मप्रभ जिनेश्वर, बताओ कि तुम्हारे और मेरे बीच का यह अन्तर, व्यवधान, दूरी, 'किम भाजे भगवन्त?' अर्थात् किस प्रकार दूर हो। व्यवहार जगत् मे सासारिक प्राणी अपने प्रियतम या मित्र से मिलने की तीव्र भावना होने पर साधनो के माध्यम से कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है। कवि भी मिलने का इच्छुक है और मिलन का मार्ग पूछ रहा है, पर क्या परमात्मा उत्तर देगे? हमने परमात्मा को सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, निरजन, निराकार माना है। निराकार परमात्मा अर्थात् ऐसा परमात्मा जिसका आकार-प्रकार नही, जिसमे वर्ण, गध, रस, स्पर्श नही। आचाराग सूत्र मे कहा गया है—जिसमे वर्ण नही, गध नही, रस नही, स्पर्श नही, जो दीर्घ नही, ह्रस्व नही, ऐसे स्वरूप वाला परमात्मा कहाँ से और कैसे उत्तर देगा? उत्तर देने के लिए वचन की जरूरत होती है, यद्यपि वचन के बिना भी उत्तर दिया जा सकता है। कान से कम सुनने वालो या बधिरो को इशारे से समझाया जाता है यद्यपि इशारे के लिए भी काया की जरूरत होती है। पर उनके तो काया भी नही है। ऊपर के देवलोक के देव कभी-कभी प्रभु से प्रश्न पूछते है तब प्रभु वचन और काया से नही किन्तु मनोवर्गणा को उस प्रकार का अवस्थान करते है और उससे वे देव मतव्य समझ लेते है। तात्पर्य यह है कि उत्तर देने के लिए कोई-न-कोई पौद्गलिक यत्र चाहिये। आप यत्रो का तात्पर्य अप्राकृतिक यत्र न ले। यद्यपि वे

भी सहयोगी होते है पर आत्मा के भीतर के यत्र स्वत तैयार होते है और विकसित होते है। बाहर के यत्र इन्हे प्रकट नही कर सकते। बाहर के यत्रो को निर्मित किया जाता है पर यदि भीतर के यत्र नही है तो ये बाह्य यत्र निरर्थक होगे। यत्रो के माध्यम से उत्तर दिया जा सकता है पर सिद्ध भगवान् के पास ये यत्र नही है। न इन यत्रो के माध्यम से वे उत्तर देते है फिर भी कवि उत्तर पाते है और वे यह उत्तर पाते है अपनी आत्मा मे। कवि कह रहे है—

पद्मप्रभ जिन तुज मुझ आंतरु रे

प्रभो। यह अन्तर क्यो आ गया है? स्थानाग सूत्र मे कई चौभगियाँ है, उन्ही मे एक चौभगी है—

चत्तारि पुरिसजाया पण्णत्ता, त जहा—आयाणुकपए णाममेगे णो पराणुकपए, पराणुकपए णाममेगे णो आयाणुकपए, आयाणुकपए णाममेगे पराणुकपए, णो आयाणुकंपए णाममेगे णो पराणुकपए। स्थानाग सूत्र 4/4

अर्थात् पुरुषजात चार प्रकार के कहे गये है। जैसे—

1 एक पुरुष अपने पर अनुकम्पा करने वाला होता है किन्तु दूसरे पर अनुकम्पा करने वाला नही होता।
2 एक पुरुष दूसरे पर अनुकम्पा करने वाला होता है परन्तु अपने पर अनुकम्पा करने वाला नही होता।
3 एक पुरुष अपने पर अनुकम्पा करने वाला होता है और दूसरे पर भी अनुकम्पा करने वाला होता है।
4 एक पुरुष न अपने पर अनुकम्पा करने वाला होता है और न दूसरे पर अनुकम्पा करने वाला होता है।

प्रथम भग के अन्तर्गत प्रत्येकबुद्ध अथवा जिनकल्पिक मुनि आते है। प्राणीमात्र पर अनुकम्पा भाव होते हुए भी प्रत्येकबुद्ध और जिनकल्पिक मुनिराज अन्य मुनियो की सेवा-परिचर्या नही करते। ये मुनि न किसी को उपदेश देते है और न किसी को दीक्षित करते है। मात्र अपनी आत्म-साधना, आत्म-कल्याण का ही लक्ष्य रखते है। इसके अलावा इस भग मे वे व्यक्ति भी परिगणित किये जा सकते है जो नितान्त स्वार्थी हो अथवा निर्दयी हो, दूसरो का उपकार नही करते हो, केवल स्वय के लिए ही जीते हो।

दूसर भग मे उन पुरुषो को लिया गया है जो अपनी अनुकम्पा नही करते प्रत्युत दूसरो पर अनुकम्पा करते है एव इस हेतु सतत जागरूक रहते है। इस

भग के अन्तर्गत तीर्थकर महाप्रभु मेघरथ राजा एव मेतार्य मुनि जैसे सत्पुरुषो की गणना की जाती है। तीर्थकर कृतकृत्य होने के बावजूद जगतप्रेक्षी होकर उपदेश देते है और मोक्ष-मार्ग दिखाते है। प्रश्न व्याकरण सूत्र मे कहा गया है—'सव्व जग जीव रक्खण दयट्ठयाए, भगवया पावयण सुकहिय' अर्थात् प्रभु ने ससार के सभी जीवो की रक्षा-रूप दया के लिए प्रवचन कहा है।

तृतीय भग मे स्थविरकल्पी मुनि होते है जो स्वात्म-अनुकम्पा के साथ पर-अनुकम्पा भी करते है। वे आत्मसाधना मे रत रहते हुए परोपदेश भी करते है, भव्यो को दीक्षित करते है और उनकी साधना मे सहायक बनते है। 'स्वपरकार्याणि साधयति इति साधु ' इस उक्ति को वे चरितार्थ करते है।

चतुर्थ भग के अन्तर्गत कालशौकरिक कसाई आदि को ग्रहण किया जा सकता है जो अपनी और पराई दोनो की दया—अनुकम्पा से रहित होता है। बात परोपकार की है और उससे जुड़ा है आज का प्रसग, रक्षाबधन का प्रसग। रक्षाबधन के विषय मे लोग इतिहास के सदर्भ लाते है। इतिहास दोहराने या समझने के लिए कुछ कह देते है या जिस प्रवाह मे बहते चलते है उस कर्तव्य को अदा कर देते है। रक्षाबधन का अर्थ करते है—बहिनो को पीहर बुलाना, राखी बधवाना, बदले मे सामर्थ्य के अनुरूप भेट दे देना। वर्ष-भर बाद फिर जब त्योहार आता है तब फिर बहिन को बुला लिया जाता है पर शेष वर्ष-भर कभी उसकी खबर नही ली जाती कि वह सुख मे है या दु ख मे है। राखी के लिए हाथ बढ़ाया पर सुख-दु ख मे यह हाथ कितना बढ पाता है, यह सोचने की बात है। राखी का पर्व ब्राह्मण भी मनाते है। यजमानो के घर जाकर राखी बॉधते और कुछ भेट प्राप्त करते है। व्यापारी तो दवात, कलम, गल्ले—सबके राखी बॉधते है। पर यह रक्षा-सूत्र चला कहॉ से ? यदि हम आगमो मे ढूँढे तो कोई उल्लेख नही मिलेगा इस पर्व के प्रवर्तन का। कोई घटना घट जाय, यह अलग बात है पर घटना-घटने से तो कोई पर्व नही बन जाता। घटना तो यह भी घटी थी कि गजसुकुमाल के सिर पर अगारे रखे गए, पर वह घटना पर्व नही बनी। एक दिन हम भी तो देखे सिर पर अगारे रखा कर। मनाए पर्यूषण मे एक दिन यह भी पर्व और करे अनुभूति। मिठाई खाने को मिले वह पर्व अच्छा, पर यदि सिर पर अगारे रखने पडे तो वह बुरा। आप नही मनाते वह पर्व, पर साधु मनाते है। अगारे तो वे भी नही रखाते, पर हॉ, लोच कर लेते है। जहॉ तक मुझे जानकारी है, आगमो मे रक्षा के विधि-विधान और तरीके उपलब्ध नही है। वैदिक ग्रथो पर यदि दृष्टि दौडाई जाये तो जिस सूत्र को लेकर रक्षाबधन का प्रसग उपस्थित

होता है वह भविष्य पुराण का यह श्लोक है—

येन बद्धो बलि राजा दानवेन्द्रो महाबल ।
तेन त्वां प्रतिबध्नामि रक्षे मा चलमाचल।।

और ब्राह्मण इस सूत्र के उच्चारण के साथ रक्षासूत्र बॉधते है। हम जरा सोचे कि इसका अर्थ क्या है ? अर्थ है—जिसके द्वारा बॉधा गया दानवो का इन्द्र महाबलवान बलिराजा, उसी से तुम को बॉध रहा हूँ। रक्षा करना—तुम चलित मत होना—चलित मत होना। इतिहास सुने हम उस महाबली का। उसे अहंकार हो गया कि मेरे जैसा कोई दानी और बलशाली नही है। अह के कारण वह अत्याचार करता गया। शास्त्रो मे माना गया है कि विष्णु अवतार लेते है। वे वामन का रूप धरकर पहुॅचे बलि के द्वार-पर। बलि उस समय यज्ञ करवा रहे थे और उनका यह प्रण था कि यज्ञ काल मे आने वाला कोई भी भिक्षु उनके द्वार से खाली नही जाये। बलि ने वामन को देखा तो कहा—जो चाहिए वह मॉग लो। व्यक्ति अह मे चूक कर जाता है। अह मे विवेक नही रहता। बलि प्रतिज्ञाबद्ध हो गया। वामन ने कहा—राजन्, क्या कह रहे हो, पुन सोच लो। बलि ने कहा—हॉ, हॉ मैने सोच लिया है, मॉगो तो सही। वामन ने कहा—मुझे 3 पैर जगह दे दो। बलि ने आश्चर्यपूर्वक कहा—क्या मॉगा है तुमने ! मैने तुम्हे तीन पैर पृथ्वी प्रदान की। कहा जाता है कि वामन रूपधारी विष्णु ने एक पैर से सम्पूर्ण पृथ्वी और दूसरे से स्वर्ग नाप लिया। तीसरा पैर बाकी था। तीसरे पैर के लिये स्थान नही था अत· बलि ने अपनी पीठ नपा दी। प्रसन्न होकर विष्णु ने बलि को पाताल लोक का राजा बनाकर वहॉ भेज दिया। जैसे बलि वचन प्रतिबद्धता मे बधा, क्या आपको भी वैसे ही वरुण पाशो मे बधना है ? लेकिन वहॉ पर भाई-बहिन की रक्षाबधन का प्रसग नही है। उस समय के एक कथानक का उल्लेख और है जब दानवो से परेशान होकर इन्द्र युद्ध के लिए जा रहे थे। दानवो की प्रचड शक्ति से देव भी थर्राते थे और उनका विनाश करने के लिए जाने से पूर्व इन्द्र अपनी पत्नी के पास विदा लेने पहुॅचे। तब शची (इन्द्र की पत्नी) ने अपनी सारी शक्तियो का सप्रेषण करने के लिए अपने हाथो से उनके विजय का प्रतीक सूत्र बॉध कर विजय तिलक किया था। पौराणिक आख्यान के अनुसार इन्द्र को दानवो पर विजय प्राप्त हो गयी थी। जिस भावना से इन्द्र के रक्षासूत्र बॉधा गया था वह भी घटनाक्रम ही था। उससे भी रक्षाबधन भाई-बहन का त्योहार-सिद्ध नही होता है। मनुस्मृति मे एक श्लोक है जिसमे भी यह कथन नही है कि यह भाई-बहन का त्योहार है।

पिता रक्षति कौमारे, भर्ता रक्षति यौवने।
पुत्रस्तुस्थविरे भावे, न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।।

इसका अर्थ यह है कि स्त्री बाल्यकाल मे माता-पिता द्वारा रक्षित, युवावस्था मे पति द्वारा और वृद्धावस्था मे पुत्र द्वारा रक्षित होती है। लेकिन उसमे भाई का कही उल्लेख नही है। यहॉ तक बताया गया है कि स्त्री 'न स्वातन्त्र्यम् अर्हति'। स्वतत्र रहने मे सक्षम नही तो फिर स्वतत्र रूप से किसी की रक्षा क्यो अपनाये ? कतिपय प्रश्न उभरते है कि फिर यह प्रवृति कैसे चली ?

लगभग ८०० वर्ष पहले से यह प्रसग चल रहा है कि बहिन भाई के राखी बॉधनी है और ब्राह्मण यजमान के तथा यह आमदनी का जरिया बन गया है। एक ऐतिहासिक प्रसग भी है कि महारानी कर्मावती ने जब देखा कि चित्तौड़ पराजित होने की स्थिति मे आ गया है क्योकि बहादुरशाह की विशाल सेना टिड्डी दल की भॉति आक्रमण के लिए पहुॅच गयी थी तब उसने हुमायूँ को राखी प्रेषित की और हुमायूँ उसका सम्मान कर रक्षा के लिये चित्तौड़ पहुॅचा भी परन्तु उसे विलम्ब हो गया था और कर्मावती जौहर कर चुकी थी, पर यह भिन्न प्रसग है। परन्तु यह एक अर्वाचीन उल्लेख है। प्राचीन काल का कोई उल्लेख नही मिलता।

इस स्थान पर एक जैन कथानक का उल्लेख उपेक्षित है। नमुचि प्रधान जैन साधुओ के प्रति ईर्ष्या रखता था। एक बार महाराज ने प्रसन्न होकर उसे एक वरदान दे दिया था। उसने अवसर देखकर सात दिन का राज्य मॉग लिया। उसी अवधि मे उसने जैन साधुओ पर इल्जाम लगाकर दडित करने का विचार किया। यह बात आचार्यवर ने आकाश मे नक्षत्रो के प्रकपन से भॉप ली कि किसी अनिष्ट की आशका है। पृथ्वी पर जब भी कोई भयानक आपदा आने वाली होती है, किसी बहुत बड़े राजा या आचार्य का वियोग होता है तो इसी प्रकार प्रकृति भावी अनिष्ट का सकेत दे देती है। प्रकृति की यह प्रतिक्रिया इस कारण होती है कि उसे भी यह मजूर नही होता है। वह भी इस वियोग को सहन नही कर पाती। जब तीर्थकर का निर्वाण होता है तो एक क्षण के लिए तीनो लोको मे अधकार फैल जाता है। आचार्यश्री के मुॅह से सहसा उच्चरित हुआ कि धर्मसघ पर सकट आ गया है। सतो ने पूछा—भते ! कोई उपाय नहीं है क्या ? उत्तर मिला—उपाय तो हो सकता है पर समय कम है। अधिक आग्रह पर गुरु ने बताया कि यहॉ से बहुत दूरी पर विष्णुकुमार मुनि विराज रहे है, अभी चातुर्मास काल चल रहा है। जाने की स्थिति नही है। यदि वहॉ जाया जा सके

तो उनमे वह शक्ति है कि वे वैक्रियलब्धि से सघ की रक्षा कर सकते है। एक मुनि ने निवेदन किया—'भते। आपकी कृपा से मुझमे वहाॅ जाने की शक्ति है।' गुरु ने कहा—'वत्स, यदि तुम उन्हे यह सदेश पहुँचा दो तो रक्षा का कुछ उपाय हो सकता है।' वैक्रियलब्धि से मुनि पहुँच गये। विष्णु मुनि महाराज के भाई थे। वे नमुचि के दरबार मे उपस्थित हुए। नमुचि ने कहा—मै किसी को कुछ देना नही चाहता और फिर जैन मुनि से मुझे चिढ भी है पर तुम चूँकि महाराज के भ्राता हो अत तुम्हे दिया जायेगा—माॅगो। विष्णु मुनि ने भी उसी प्रकार 3 पैर की जगह माॅगी, सम्पूर्ण ढाई द्वीप को माप लिया और आधा पैर खाली रह गया। लेकिन रक्षाबधन की घटना का भाई-बहन से कोई सबध इसमे भी नही है। पर इस से पर्व की महिमा घटती नही है। आज के इस पर्व को हम त्याग और बलिदान का पर्व मान ले और राखी के लिए हम जो हाथ आगे बढाते है वह हाथ सपूर्ण नारी जाति के उत्थान के लिए बढे तो पर्व की सार्थकता सिद्ध हो जायेगी। नारी जाति पर यदि अत्याचार होते रहेगे तो धर्म की रक्षा भी कठिन होती जायेगी।

पुराने युग की बात कुछ और थी पर आज यह पर्व प्रदर्शन का विषय बन गया है। इसने एक व्यावसायिक रूप ले लिया है। बहिन सुदर एव मूल्यवान राखी बाॅधती है ताकि भाई के हाथ का सौदर्य बढ जाये पर कही इससे परस्पर ईर्ष्या और द्वेष का बीजारोपण तो नही होता है ? बेचारी वह गरीब बहन, जिसने सामान्य राखी बाॅधी और वह अमीर बहन, जिसने सुदर राखी बाॅधी, उन दोनो के बीच व्यवहार मे आप अन्तर तो नही करते है ? ये बाते हीन भावो को पैदा करती है। उसके दिल पर गहरी चोट लगेगी। फिर क्या वह बहन पीहर आना चाहेगी ? क्या इसी प्रकार आप उसकी रक्षा करेगे ? ब्राह्मण 100/200 रुपये की आमदनी कर रहा है, वहाॅ भी रक्षा का उद्देश्य कहाॅ है ? कही उद्देश्य से विपरीत प्रक्रिया तो नही हो रही है ? रक्षा का विलोम 'क्षार' है। कही किसी के दिल पर आप क्षार तो नही डाल रहे है। यदि यह प्रवृत्ति बढ रही है तो हम राखी बॅधवाकर घाव पर नमक डाल रहे है—चूँकि क्षार का मतलब नमक भी है। घाव पर नमक डाले तो जलन होती है। रक्षा के बहाने हम ईर्ष्या को तो नही पनपा रहे है ? यदि बहन कर्मोदय से गरीबी का दु ख भोग रही है और उस पर राखी का विलोम व्यवहार खीरा (आग) डालना तो नही हो रहा है ? रक्षा के लिए चाहिए त्याग और समर्पण। हम केवल पर्व की औपचारिकता की पालना मे नही रह जाये।

हम भी कहते है राखी वॅधवाओ पर परमात्मा ने तो पहले ही राखी बॉध दी है। आपको साधु-साध्वी की रक्षा का दायित्व सौपा है। इन साधु-साध्वियो को भूमडल पर विचरण का आदेश मिला हुआ है, जो स्वय शक्रेन्द्र ने दिया था जब वह स्वय प्रभु के चरणो मे उपस्थित हुआ था और कहने लगा था कि मै सयमी मर्यादाओ को जान पाया हूँ, अपने अवग्रह का भी ज्ञान हो गया है। मै साधु-साध्वियो को भूमडल पर विचरण करने की आज्ञा देता हूँ। आज भी यदि सजगतापूर्वक जोर से उच्चारणपूर्वक शक्रेन्द्र महाराज के नाम से अनुमति ली जाये तो उपद्रव का प्रसग नही बने। साधु-साध्वी के सयमी जीवन की जानकारी श्रावक-श्राविका को होनी भी आवश्यक है। श्रावक 'स्व' के व्रतो मे दृढ रहता हुआ साधु जीवन की रक्षा के दायित्व को समझे। तीर्थकर भगवान परानुकपी होते है और भव्य प्राणियो की आराधना हेतु चार तीर्थो की स्थापना करते है—साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका। जब स्वय भगवान विराजमान थे और गणधर भी उपस्थित थे तब भी वे सघ को महत्त्व देकर उसकी सारणा, वारणा, धारणा का निर्वहन करते थे। प्रभु ने जब अपना अतिम क्षण नजदीक देखा तब भी वे तीर्थ से निरपेक्ष नही हुए कि मै तो मोक्ष जा रहा हूँ, तीर्थ से मुझे क्या लेना-देना ? गणधर श्री सुधर्मा स्वामी को उन्होने स्वय की मौजूदगी मे आचार्य पद पर आसीन किया और सघ को यह प्रतीति करवाई कि मेरे बाद प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान आप को इनके निर्देशन व नेतृत्व मे करना है। यदि आप ऐसा करेगे तो ही आपकी वह आराधना पल्लवित होगी। प्रश्न किया जा सकता है कि आचार्य की क्या जरूरत है ? पर ऐसा प्रश्न अविवेक पर आधारित ही होगा। प्रभु ने चारो तीर्थो की सुरक्षा का महत्त्व समझा और सुधर्मा स्वामी को उस हेतु मनोनीत किया। उनके बाद जम्बू स्वामी और प्रभव स्वामी तथा उनके बाद आज तक यह परपरा अक्षुण्ण रूप से गतिमान है। यदि परपरा नही होती तो क्या हम आगम का स्वरूप समझ पाते ? व्यवहार सूत्र मे कहा गया है—आचार्य-उपाध्याय के बिना साधु-साध्वी को रहना नही कल्पता है। प्रश्न होगा कि जब बात आचार्य और उपाध्याय की कही गई है तब फिर आज उपाध्याय क्यो नही है ? तब यह समझ ले कि वहाँ पर कथन है 'आयरिय उवज्झायस्स' अर्थात् आचार्य–उपाध्याय इस कथन मे एकवचन का प्रयोग हुआ है, अत एक ही प्रमुख है।

व्यावहारिक क्षेत्र मे यदि हम राजनीतिक क्षेत्र पर दृष्टिपात करे तो पायेगे कि जो पधानमत्री बनता है वह मत्रालयो के विभागो का विभाजन करता है और

कभी-कभी कुछ विभाग अपने अधीन भी रख लेता है। उसी प्रकार धार्मिक क्षेत्र मे आचार्य सर्वप्रमुख होते है। वे द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव को देखते हुए आवश्यक पद-वितरण कर सकते है। आवश्यक नही समझते तो नही करते है। आचार्य श्रीलालजी म सा ने पॉच गणावच्छेदक नियुक्त किये थे और निर्देश किया था कि अमुक भाग का नेतृत्व अमुक करेगे और शेष जो मेरे नेतृत्व मे है, उनका दायित्व मेरे ऊपर रहेगा। समय बदला, अजमेर साधु सम्मेलन की स्थिति बनी। संवत् 1990 के अजमेर वृहत्साधु सम्मेलन मे युगद्रष्टा ज्योतिर्धर श्रीजवाहराचार्य ने एकता की नयी रूपरेखा दी जिसमे सुरक्षा के भाव को लेकर एक ही आचार्य के नेतृत्व मे एक शिक्षा, एक दीक्षा की बात कही गयी। उनका मानना था कि यदि फिरकेबाजी होने लगी, जैसी परिवारो मे हो जाती है और एक ही पिता के चार पुत्र अलग-अलग परिवार बसाते है वैसे ही अलग-अलग शिष्य बनाये जायेगे तो प्रत्येक साधु चाहेगा कि ये मेरे श्रावक है अत इनके पुत्र आदि दीक्षा ले तो वे मेरे ही शिष्य बने, इस प्रकार की भावना से गुरु की अवमानना होगी। स्वच्छद विचरण से अनुशासनहीनता को प्रोत्साहन मिलेगा। यह अनोखी सूझ-बूझ व दीर्घ दृष्टि से लिया गया निर्णय था। एक आचार्य के नेतृत्व मे वहॉ लगभग 26 सम्प्रदायो के साधु मौजूद थे, सभी ने इस हेतु सहमति प्रदान की और कहा आपका नाम ही जवाहर नही है किन्तु आपके विचार भी जवाहर की भॉति अनमोल है, इसी आधार पर परंपरा की सुरक्षा भी संभव है। इस प्रकार की समझ और वातावरण को सुरक्षित रखना आवश्यक है। अत सभी एक गच्छ, एक आचार्य के सिद्धांत का निष्ठापूर्वक पालन करे तथा करावे। एकता के संदर्भ मे उस समय मुख्य बात यह उभरी कि सर्वप्रथम आचार्यश्री हुक्मीचन्दजी म सा के संप्रदाय का एकीकरण होना चाहिए। पूर्व मे आचार्य श्री श्रीलालजी म सा ने अनुशासन भग एव सयम शैथिल्य के कारण कुछ साधुओ को सघ-निष्कासित कर दिया था। सघ-निष्कासित साधुओ ने अपना पृथक आचार्य बना लिया था। स्थानकवासी सप्रदाय के इस प्रमुख बडे सप्रदाय के एकीकरण के अभाव मे एकता अभियान को आगे बढाया नही जा सकता था। अत शतावधानी श्रीरतनचदजी म सा, आचार्यश्री अमोलकऋषिजी म सा, युवाचार्यश्री काशीरामजी म सा, पडितरत्नश्री नानकचदजी म सा, प रत्न मणिचदजी म सा—ये पॉच पच बनाए गए और पूज्यश्री हुक्मीचदजी म सा के सप्रदाय की दोनो शाखाओ का एकीकरण हुआ। निर्णय यह हुआ कि पूज्यश्री मन्नालालजी म सा व पूज्यश्री जवाहरलालजी म सा—ये दोनो आचार्य रहेगे और दोनो आचार्यो मे जो पहले

स्वर्गवासी होगे उनके बाद नेतृत्व विद्यमान आचार्य करेगे। इस प्रकार भविष्य की आचार्य परपरा का निर्धारण कर दिया गया। यह भी तय कर दिया गया कि पडितरत्न श्री गणेशीलालजी म सा को युवाचार्य पद और पडितरत्न श्री खूबचदजी म सा को उपाध्याय पद पर आरूढ किया जाय तथा आगे की दीक्षाएँ श्री युवाचार्यश्रीजी के नेतृत्व मे हो। इस प्रकार एकीकरण हुआ। कालान्तर मे आज्ञा की अवमानना का प्रसग बना। कतिपय सत आज्ञा मे नही चल रहे थे, कान्फ्रेन्स ने भी उन्हे काफी समझाया पर जब वे नही माने तब आचार्य श्रीजवाहरलालजी म सा ने लगभग 6 सतो को सघ से निष्कासित कर दिया। उनके साथ जिन्होने व्यवहार रखा वे सैद्धातिक दृष्टि से आचार्य की अवमानना मे भागीदार हुए। यदि कोई सघ की इसी प्रकार अवमानना करता है तो आचार्य का मूलोच्छेद होता है। चतुर्विध सघ पर कुठाराघात होने से ध्वस की स्थिति बनती है। एक बार सघ की अवमानना होती है तो अनेक व्यक्तियो मे राग, द्वेष, सक्लेश का उद्‌भव होता है। यह सघ किसी व्यक्ति विशेष का नही है, यह तो तीर्थकरो की पावनधारा है। जो सघ को छिन्न-भिन्न करता है, विभिन्न घटको मे वैमनस्य उत्पन्न करता है वह महापाप का उपार्जन करता है। दशाश्रुत स्कध मे उसे महामोहनीय कर्म का बधक कहा है और जो उसे सहयोग देता है वह भी उसमे भागीदार बनता है। गीले आटे के पास यदि सूखा आटा रखा है तो उसमे सील आये बिना नही रहेगी। सघ की अवहेलना वास्तव मे तीर्थकरो की वाणी की अवहेलना है। आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा ने इसे सघ पर कुठाराघात कहा है। ऐसा होने पर क्या हम आत्मा की सुरक्षा कर पायेगे ? गॉव के एक छोर पर लगी हुई आग की लपट नही बुझाई गई तो वह फैलकर हमारे घर को भी स्वाहा कर सकती है। हम चिनगारी को बुझाये, न कि उस पर डीजल और पेट्रोल डालने का प्रयास करे। रक्षा सूत्र के आधार पर ही तीर्थकरो ने जिस प्रकार परपरा का प्रणयन किया है वह आज तक अविच्छिन्न रूप से प्रवहमान है। उसी धारा मे वर्तमान पूज्य गुरुदेव पूरी निष्ठा के साथ सघ-रक्षा के दायित्व का निर्वहन कर रहे है। गुरुदेव ने जीवन का बलिदान दिया है, अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया है। सघ को, सघ के एक-एक सदस्य को ज्ञान, दर्शन और चरित्र से पल्लवित किया है। हम भी अपना कर्तव्य समझे। रक्षा के इस पर्व पर हम यह भली भॉति समझ ले कि यदि हम कर्तव्य की पालना करेगे तथा त्याग और बलिदान मे तत्पर रहेगे तभी सघ-सेवा कर सकेगे। एक घर की आग स्थिति को चितनीय बनाती है। आग को बुझाये, भड़काये नही। त्याग और बलिदान की बात इसीलिये आती है। हम भी जब दीक्षा लेते है तो परिवार व समाज की उम्मीदभरी निगाहे हमसे कितनी अपेक्षाएँ रखती है। यह

कोई रहस्य नही है कि बालक के जन्म के साथ ही आशा के अम्बार जुडे रहते है। परिजन श्वेत चादर पर केशरिया स्वस्तिक का बाना पहनाकर हमे विदा करते है। श्वेत चादर निर्मल जीवन का प्रतीक है। रगीन वस्त्र मे तो दाग लग भी जाये तो वह डिजाइन जैसा लगने लगेगा पर श्वेत वस्त्र मे एक दाग भी चादर को बदरग बनायेगा। केशरिया बलिदान का रग है उससे बना स्वस्तिक हमे बलिदान की प्रेरणा देता है। यहॉ पर बलिदान से समर्पण अभिप्रेत है। सर्म्पण कैसा हो ? अह का विसर्जन-रूप। इन्ही भावो को अपनाकर आगे बढना है। सभी सघ की पुण्यवानी के गीत गा रहे है और बहिने भी गाती है—

म्हारी पुण्यवानी लगा थोडो जोर,
सतां ने लाइजे पावणा।

बहिने चतुर है, सन्तो को पावणा के रूप मे बुलाती है, अधिक रहे तो परिचय बढेगा। परन्तु कवि आनन्दघनजी कह रहे है—

परिचय पातक घातक साधु सुं रे।

साधु से परिचय करो पर यह भी ध्यान रखो कि परिचय कैसे होता है ? आज तो गगा उल्टी बह रही है। आज सभी व्यक्ति अपना परिचय देना चाहते है। चाहते है कि साधु मुझे पहचाने—मै क्या हूँ। पर कवि का प्रयोजन है—यदि पाप का घात करना है तो साधु से परिचय करो ताकि अविद्या से उपार्जित अकुशल कर्मो का अपचय हो सके। हम यदि अपना परिचय देना चाहते है तो त्याग से, तपस्या से, ध्यान से, मौन से दे। तुगिया नगरी के श्रावक इस भावना से पहुँचते कि हम सत-चरण मे ज्ञान चर्चा करेगे, पर्यटना करेगे, पृच्छा करेगे, ज्ञान विज्ञान की उन्नति करेगे पर आज ये सब तिरोहित हो रहे है। हम सत्सगति से कर्म-क्षय करने का प्रयास करे। इससे ही आत्मरक्षा होगी और चारो तीर्थो की रक्षा का भी सुयोग बनेगा।

दानवेन्द्र बलि के उत्पात से विष्णु ने अवतार लेकर रक्षा की, शची ने भी विजय तिलक के माध्यम से इन्द्र की रक्षा का प्रयास किया। सघ-रक्षा मे विष्णु मुनि के एव प्रभु महावीर के तीर्थरक्षा के भावो के साथ हम भी अपने त्याग व समर्पण भावो को जोड दे। इस प्रकार सस्कृति की उज्ज्वलता से मंगलमय जीवन का प्रसंग प्राप्त होगा। स्वर-पर-रक्षा के उद्देश्य के प्रति हमारी कर्मठ कर्मजा शक्ति का सूत्रपात हो—यह इस पर्व पर हम कामना करे। ❖

रक्षाबधन
28-8-96

अविद्या के नाश से प्रभु की प्राप्ति

पद्मप्रभ जिन तुज मुज आतरु रे, किम भाजे भगवत?
कर्म विपाके कारण जोईने रे, कोउ कहे मतिमत।।
जावतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख सभवा।
लुप्पति वहुसो मूढा, ससारम्मि अणतए।।

(उत्तराध्ययन 6/1)

पद्मप्रभ इस अवसर्पिणी काल के छठे तीर्थकर है। कवि आनन्दघनजी प्रार्थना के माध्यम से अपने मन की व्यथा व्यक्त करते हुए कह रहे है कि प्रभु तुम्हारे और मेरे बीच अन्तराल है। यदि क्षेत्र की दृष्टि से विचार करे तो लगभग सात राजू क्षेत्र का अन्तराल है। काल की दृष्टि से अवसर्पिणी काल के चौथे आरे मे वे मोक्ष गए थे और हम पॉचवे दुखमी आरे मे चल रहे है। इस प्रकार कह सकते है कि हजारो-हजार साल का अन्तराल हो गया है। द्रव्य-दृष्टि से भी हमारा आत्मद्रव्य पुद्‌गलो से मिश्रित है और प्रभु पुद्‌गलो से उपरत होकर शुद्ध स्वरूप को प्राप्त है। बड़ी बात यह है कि हम भाव से राग, द्वेष आदि पर्यायो से युक्त है और प्रभु शुद्ध सिद्धत्व पर्याय मे आरूढ है। इस प्रकार चारो अवस्थाओ से हम परमात्मा से दूर है। कवि भी इस दूरी को महसूस करते हुए निवेदन कर रहा है—'प्रभो। यह जो अन्तर पड़ गया है वह कैसे दूर हो?' यह जो अन्तर पड़ा है इसके पीछे कारण है—हमारी द्रव्यात्मा ने कषायात्मा और योगात्मा से सबध जोड़ा है और जब तक यह साथ है तब तक दूरी मिट नहीं सकेगी। इन योगो का निर्माण आत्मा करती है और वे योग जब प्रवृत्त होते है तब शुभ-अशुभ, इष्ट-अनिष्ट से सम्पर्क करके कषाय भावो को पैदा करते है। इसके उपरात काषायिक भावो से कर्मबधन होता है। वैज्ञानिक तरक्की के आज के युग मे अनुसधान के क्षेत्र मे भी कुछ उपलब्धियॉ हुई है। यद्यपि विज्ञान चेतना तक नही पहुॅचा है लेकिन उसके बहुत करीब तक पहुॅच गया है। वैज्ञानिको ने ऐसे यत्र ईजाद किये है कि यदि उनके सामने हम अपना हाथ रख दे और शुद्ध प्लेट पर फोटो लिया जाय तो केवल हाथ का ही फोटो नही आयेगा, उसके साथ पनपने वाली भाव तरगे भी अकित हो जायेगी और यह भी

ज्ञात हो जायेगा कि इर्द-गिर्द का वायुमडल किस प्रकार की अवस्था मे है। आयुर्वेद के अन्तर्गत नाडी देखकर इलाज किया जाता है। कभी हम सोच लेते है कि नाडी से वात-पित्त और कफ का ज्ञान होता है और उसके अनुरूप उपचार किया जाता है, लेकिन सिर्फ इतना जानने से सही उपचार सभावित नही है। नब्ज से यह भी जाना जा सकता है कि व्यक्ति किन भावो मे चल रहा है। मानसिक स्तर के साथ स्वास्थ्य का सबध रहता है। विज्ञान की खोज के अनुसार विचारो के अनुरूप ही हमारे शरीर मे तत्त्वो का निर्माण और विनाश होता है। हीन भावनाओ और चिडचिडेपन की वजह से कोष्ठबद्धता (कब्ज) का निर्माण होता है। चिडचिडेपन से पित्त का प्रभाव, जिसे हम 'एसीडिटी' कहते है, हो जाता है। व्यक्ति समझ नही पाता है कि बीमारी क्यो हो जाती है। पहले तो सजगता नही रहती और फिर इन भावनाओ के कारण भोजन का रस-परिणमन सही नही हो पाता। हम परमात्मा से प्रार्थना करते है कि प्रभो। दूरी हो गई। प्रभु महावीर की भाषा मे जानना चाहे कि दूरी का कारण क्या है तो समाधान होगा कि—

जावतऽविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख सभवा।
लुप्पंति बहुसो मूढ़ा, संसारम्मि अणंतए।।

तब तक दूरी रहेगी जब तक पुरुष (आत्मा) के साथ अविद्या का योग है। विद्या अर्थात् ज्ञान, अविद्या अर्थात् अज्ञान। ज्ञान का मतलब सिर्फ पुस्तकीय ज्ञान से नही है प्रत्युत 'बोध रूप व्यापार' से है। जैसे कोई व्यक्ति पुस्तक पढते हुए 30/40 पृष्ठ पढले और उससे पूछा जाय कि क्या पढ रहे हो, तो फिर वह स्वय सोचने लगता है कि मैं क्या पढ रहा था। यह ज्ञान नहीं है और ज्ञान हो भी गया तो बोध रूप व्यापार नही होगा। बोध रूप व्यापार तो वह है जो आपकी जानकारी मे घटित होता है और जब तक वह घटित नही है, वह अविद्या है। आगमो की भाषा मे कहा गया है कि एक अभवी आत्मा, साधु पोशाक स्वीकार कर गण का मालिक भी बन जाये और उसकी नेश्राय मे 500 साधु भी हो जाये। वह गौतम स्वामी जैसे कठोर क्रिया पाल लेता है अर्थात् साधु व्यवहार मे दोष नही लगाता। यह तो बहुत सरल बात है। एक हिसक व्यक्ति सही रूप मे अहिसा का पार्ट अदा कर सकता है पर एक अहिसक हिसा का आचरण नही कर सकता। प्रभु महावीर को, जिनके जीवन मे अहिसा समाई हुई थी, सगम ने कितने उपसर्ग दिए फिर भी हिसात्मक प्रवृत्ति नही पनपी क्योकि भावो मे अहिसा उतर गई थी। पर जिसके भावो मे अहिसा नही, वह

अहिसा का आचरण कुशलता से कर लेता है और कोई जान नही पाता कि सत्य क्या है ? हम आचरण ऊपरी तौर पर देखते है पर आचरण यदि ज्ञानी की दृष्टि मे सही नही है तो वह अविद्या ही है। प्रभु के चरण मे भी रहते हुए उसमे अविद्या मौजूद है। वह दुनिया को नही, अपनी आत्मा को ठग रहा है। वह दुनिया को भले भ्रमित कर दे पर स्वय की आत्मा को परमात्मा से बहुत दूर कर लेगा। प्रभु ने कहा है—ऐसी आत्माएँ सात कर्मो का निरन्तर बध तो करती ही है, पूर्वबद्ध कर्म की स्थिति और अनुभाग मे भी वृद्धि करती है। अभवी मे हिसा के भाव तिरोहित नही होत, ज्ञानी कहते है वह साथ वालो का कल्याण कर सकता है पर स्वय एक कदम भी आगे नही बढता। इसका कारण यही है कि जब उसके भाव विशुद्ध नही, तो फिर दूरी कम कैसे होगी ? दूरी का कारण क्या है ? कभी सोच लेता है दूरी का कारण कर्म है। पर मात्र कर्म ही कारण नही है।

'कर्म विपाके कारण जोइए रे।' कर्म विपाक जिस समय होता है तब कर्मो के कारण को सामने रखकर होता है और साथ ही कर्मो का उदय भी होता है। कवि की इस सैद्धातिक परिभाषा का तात्पर्य यह है कि कर्मो से आबद्ध आत्मा कर्मो के प्रति उन्मुख होती है और उदय भाव मे बध होता है।

जैसे अनन्तानुबधी क्रोध का उदय है तो मुख्य रूप से क्रोध का ही बध होगा, मान, माया, लोभ आदि का मुख्य रूप से बध नही होगा। कवि ने कितना गहरा विवेचन किया है। विपाक के समय भाव हेतु जुड़ा होता है और कर्मबध होने से यह दूरी का कारण है। दूरी असह्य है उसे दूर करने की भावना बने पर आज तो व्यक्ति को दूरी पाटने की बात रास नही आती उसके पीछे भी कारण है। मेघकुमार साधु बन गए पर कर्मो का कुछ ऐसा उदय ही समझिए कि उत्कृष्ट भावो से दीक्षा ली पर रात्रि मे ठोकरे लगी तो विचारो मे उतार-चढाव आने लगे। विपाक आ गया तो प्रभु के पास रहकर भी दूर चले गए। ठोकर से नीद उचट गई। अरे यह कैसा व्यवहार ? मै राजकुमार था, दीक्षा के पूर्व मेरा कैसा मान-सन्मान था और अब ये ठोकरे। मै सहन नही कर सकता। यह मैने व्यर्थ ही मुसीबत सिर पर ले ली। पहले मै आता था तो सत भी कितना ध्यान रखते थे पर आज तो कोई पूछ नही। क्या करू ? अन्य सत ध्यान आदि से निवृत्त हो सो गए, पर मेघमुनि सो नही पाये। मानसिक तनावो मे मार्ग नही ढूढ पाये, हिताहित का बोध नही हुआ। इसलिए आचाराग सूत्र मे कहा गया है—ज्ञ परिज्ञा से हिताहित का बोध करे, यदि ज्ञ परिज्ञा प्रत्याख्यान परिज्ञा नही तो ज्ञान

तो हो जायेगा पर बोध रूप व्यापार नही होगा। मेघकुमार यद्यपि प्रबुद्ध थे, आत्मा से बोध पाकर ही साधु बने पर अविद्या से हिताहित भूल गये। सोचने लगे—मै कैद हो गया। पक्षी को पिजरे मे आनद नही मिल सकता, कैसे निकलूँ ? पर फिर भी जातिवान, कुलवान कभी जीवन पर बट्टा लगाने की स्थिति मे नही आयेगा। विचार कर रहे थे। देखा, एक स्थविर अभी बैठे है, जैसी दृष्टि, वैसी सृष्टि। मेघकुमार ने सोचा—वे बैठे है, उनके विचारो मे उतार-चढाव होगा, इनसे मिल लू ? कोई मार्ग मिल जायेगा क्योकि कहा भी है 'चोर चोर मौसेरे भाई'। स्थविर के पास पहुँचे, कहने लगे—'मुनिराज क्या बात है आप पौढे नही ?' फिर कुछ असतोष व्यक्त करते हुए बोले—'वस्तुत साधु जीवन मे सुख की नीद पडी कहाँ है ? यह कैसी व्यवस्था है, जहाँ साधको को ठोकरे लगे।' मुनि समझ गये कि उनके विचार उचट गए है और उचटने मे सहयोगी नही बनना है।

मुनि ने कहा—'ऐसी कोई बात नही है—मैने पहले स्वाध्याय, ध्यान किया अब आत्मचिन्तन से निवृत्त हो शयन की तैयारी मे ही था।' मेघ सोचने लगे—गजब हो गया, मै तो कुछ और सोच रहा था पर मुझे भी तो सहयोगी बनाना पडेगा, बात भी रखनी होगी। पुन कहने लगे, 'गुरुदेव। मुझ पर अनुग्रह करिये, मेरा मन नही लगता, मार्ग बताइये यदि कोई पोशाक मिल जाये तो, मै अब ऊब गया हूँ।'

महात्मा ने कहा—'मेघ, प्रभु का सिद्धात जबरदस्ती का नही है, यह अनोखा सिद्धात है—अहासुह देवानुप्रिय। पर व्यवस्था यह तो मेरे अधिकार की बात नही है, गणधर गौतम ही कुछ कर सकते है।' इस पर मेघकुमार ने कहा—'मुनिराज यदि मै वहाँ जाऊँगा तो मुझे ससार की असारता दिखाकर रोक लेगे, पर मै रुक नही सकता।' उत्तर मिला—'वत्स। वे गण के मालिक है वे ही व्यवस्था कर सकते है, चलो मै साथ चलता हूँ।' दोनो पहुँच गये गौतम स्वामी के चरणो मे। मेघ तो चुपचाप बैठ गए। मुनिराज ने ही उनका प्रतिनिधित्व किया, सारी बात रखी। गौतम स्वामी ने कहा, 'इतनी छोटी-सी बात। मै तुम्हे बाध नही सकता, बाधने से तो पशु भी नही टिकते। विचार स्वस्थ हो तभी जुडा जा सकता है। यदि पोशाक की व्यवस्था चाहते हो वह भी हो सकती है किन्तु मेरा एक सुझाव है, जिस पोशाक मे तुमने प्रभु के चरणो मे दीक्षा ली है एक बार उसी पोशाक मे प्रभु के दर्शन कर लो।' मेघकुमार ने कहा—'भते। मै कुछ बोल नही पाऊगा और यदि मै रुक गया तो फिर तनाव

की स्थिति मे न इधर का रहूँगा न उधर का। मेरी आराधना नही हो पाएगी। गौतम ने कहा—वत्स । वे वात्सल्यमूर्ति जबरदस्ती नही करेगे। तुमने दीक्षा ली है, एक बार दर्शन तो कर लो। मै तुम्हारे साथ चलूगा। पहले हम सभी प्रतिक्रमण कर लेते है उसके बाद चलेगे।' प्रतिक्रमण करके मेघमुनि प्रभु चरणो मे उपस्थित हुए। प्रभु विराजमान थे। मेघ चरणो मे बैठ गये, पास मे गौतम स्वामी भी विराज गये। इस स्थिति पर विचार कीजिए—चरणो मे बैठे है फिर भी दूरी है। क्षेत्र की दृष्टि से या काल की दृष्टि से नही, पर भावो की दूरी है। पहले सत कहा करते थे—

आक दूध, गाय दूध अन्तर घनेरो है। .

प्रभु गो दुग्ध के समान है तो मेघ आक दूध की तरह। प्रभु पूर्णिमा के चद्र की भाति प्रकाशमान है तो मेघ अमावस्या के अधेरे मे झूल रहे है। पूर्णिमा, अमावस्या एक साथ नही हो सकती। दोनो मौन है। भगवान् अपनी अमृतमयी दृष्टि वर्षा से देख रहे है। मेघ अपराधी की भॉति निगाहे नीची किए पैर से जमीन कुरेद रहे है। विचारो की घुटन मे खोये हुए है। प्रभु का शक्ति-सप्रेषण हो रहा है। प्रभु ने कहा—'मेघ।' मेघमुनि मानो नीद से उठे हो। तद्रा टूटी, हाथ जोड़कर, नत मस्तक हुए, 'भते।' प्रभु ने कहा—'मेघ। प्रतिक्रमण करो, पीछे देखो।'

अपने ही भीतर देखो। मेघ कहने लगे—'भते। पीछे देखता हूॅ तो नजारा ही कुछ और है। दीक्षा से पूर्व और आज के व्यवहारो की स्मृति से हृदय प्रकपित होता है।' आदेश मिला—'और पीछे देखो।' 'मै देख रहा हूॅ। मॉ ने कहा था—मेघ, सयम शूरो का पथ है, कायरो का नही, तुम सुकुमाल हो। चितनीय विषय है। कैसे भाव, उत्साह, उमग से साधु जीवन अपनाया जाता है पर कभी-कभी वे भाव स्थायी क्यो नही रहते? दशवैकालिक सूत्र 8/61 मे उल्लेख है—

जाए सद्धाइ निक्खतो, परियायठाणमुत्तम तमेव अणुपालिज्जा. ।

जिस उल्लास से, श्रद्धा से अभिनिष्क्रमण किया है, साधु जीवन स्वीकार किया है उसी श्रद्धा से उसका पालन किया जाय। शेर की भाति लिया है तो शेर की तरह पालन करे। शेर बनने का मतलब प्राणी-वध की तत्परता नही पर भीतरी क्रोध, मान, ईर्ष्या, द्वेष काम को समाप्त करना है। भला सियार की क्या सामर्थ्य कि इनसे लोहा ले सके। भीतरी सिह को नही जगाओगे तो क्रोधादि

वनचर आत्म-वन का सफाया कर देगे, आत्म गुणो को नष्ट कर देगे। शेर बनने के साथ ही भीतर मे ओज प्रकट हो, सिहत्व जाग्रत हो। तभी होगी सुख की उपलब्धि। क्योकि 'एगतसुही मुणी वीयरागी' वीतरागी मुनि ही एकात सुखी होते है। वह सुख दुनिया मे नही मिल सकता है। दुनिया मे व्यक्ति समस्याग्रस्त है यदि साधु जीवन मे भी आग लग गई तो फिर बचायेगा कौन? मेघ की बात चल रही थी— प्रभु ने कहा—मेघ, प्रतिक्रमण करो, पीछे और पीछे देखो। उत्तर मिला—भते। देख रहा हू। माता कहती है सयमी जीवन लोहे के चने चबाना है। साधु का भेष तो 15 मिनट का खेल है, मुडन करवाया, पोशाक बदली और प्रभु ने प्रत्याख्यान करा दिये। पर आराधना, साधना और उपासना जीवनपर्यत करनी है, अखडित रहना है। मुनि एकात सुखी होता है। वहा कोई उलझन नही तो फिर दूसरा प्रसग क्यो बनेगा। और भी आगे बढता हूँ तो देखता हूँ माँ की वात्सल्यभरी गोद। पैर जमीन पर नही पडते, कितने हाथो मे झूल रहा हूँ। कहाँ वह और मै? कहाँ आ गया? पहले सोचा क्यो नही।' पुन आदेश हुआ—वत्स। घबराओ मत और पीछे देखो।' और प्रभु ने वह दृश्य दिखा दिया, दर्पण मे नही, क्षयोपशम से जातिस्मरण ज्ञानरूप आदर्श मे देख रहे है। अरे यह क्या? हाथी के भव मे योजन का माण्डला, आग से बचने के लिए सुरक्षित किया गया। आग लगी तो सभी भागे। मण्डल वनचरो से भर गया, जैसे-तैसे मैने भी स्थान प्राप्त कर लिया। खुजलाने की दृष्टि से पैर उठाया तो एक सुसला रिक्त स्थान मे पहुच गया। ज्ञात होते ही मैने पैर ऊपर रख लिया। ढाई दिन/20 पहर मे आग बुझी तो वनचर चले गये, मैने पैर नीचे रखना चाहा पर यह क्या? पैर अकड गया, मै धडाम से गिर पडा। फिर प्रश्न हुआ—मेघ। जिस आग से बचने का प्रयत्न किया वह द्रव्य आग थी, पर भाव आग से बचने के लिए तुमने क्या किया?

मेघ कुंवर हाथी रा भव में, करुणा करी श्री जिनजी वताई।
प्राणी, भूत, जीव, सत्त्व री, अनुकम्पा की समकित पाई।।
अनुकम्पा सावज मत जाणो। अनुकम्पा विचार 1/1
पाणाणुकपयाए, भूयाणुकपयाए, जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकपयाए

सिर्फ सुसले की ही नही, प्राण, भूत, जीव और सत्व की रक्षा की। बीते काल मे कितने अधकार मे थे पर तुमने कितना उपकार किया। उपकार दूसरों पर नही किन्तु अपनी आत्मा पर किया। अनादि काल से अविद्या और अज्ञान मे थे और अब सम्यक्त्व की वह किरण प्राप्त कर ली जिसमे अपना मार्ग देख

सको। मेघमुनि बोले—भगवन्! मै सब कुछ जान गया हूँ। अब अविद्या का साया नही रहा। मेरे विचारो के कालुष्य ने साधुत्व को समाप्त कर दिया था। प्रभो, मुझे पुन दीक्षित करो। रात भर मै आर्त भाव मे रहा। भाव से साधुत्व नही रहा सिर्फ पोशाक से ही रहा। प्रतिज्ञा का भान नही रहा। अब मुझे सत्कार, प्रतिष्ठा, पद आदि की कामना नही। यह सब मै सत-चरणो मे समर्पित करता हूँ। 'मम दो अच्छीणि मोत्तूण अवसेसेकाए समणाण णिग्गथाण णिसट्ठे ।' सयम रक्षा के लिए मात्र दो नेत्रो की रक्षा करूँगा, शेष सारा शरीर मुनि भगवन्तो की सेवा मे जीवनपर्यन्त समर्पित है।'

प्रभु ने पुन 5 महाव्रत मे आरोहण कराया, समिति गुप्ति मे उपस्थित किया। भाव बोध के द्वारा अविद्या से उपरत हुए।

कवि ने पूछा है—दूरी कैसे हटे? यदि दूरी हटानी है तो वास्तव मे कोई दूरी नही है पर यदि कोई ऑख मूदकर ही सो जाये तो बद कमरे मे सूर्य-दर्शन कैसे होगा? सूर्य की रश्मियो को पाने के लिए बाहर आना होगा। ज्योही चरणो मे पहुँचे, भाव बोध प्राप्त हुआ और दूरी हट गई। भगवान से सबध जुड़ गया। समर्पित हो गए। अब कोई पूछे—मेघ! कहो सयम का कैसा आनद है? तो उत्तर मिलेगा वह अनुभूति तो गूँगे के गुड़ की तरह बयान नही की जा सकती। मुझे दिव्य नेत्र मिल गए, भीतर आनद हिलोरे ले रहा है, रोम-रोम पुलकित है। आनद के परमाणु मुझमे समाविष्ट हो गए है। परमात्मा के समक्ष अब कोई उलझन नही, समाधान मिल गया है। पर समाधान के लिए पहले दिल को समाहित करना होता है, फिर मस्तिष्क समाहित होता है। दिलो मे समाधान है तो मस्तिष्क स्वयमेव साफ हो जायेगा। मेघ जब तक बातो मे उलझे रहे, उलझने बनी रही, विवेक नही कर पाये। पर दिल मे दूरी नही थी, भगवान के चरणो मे दिल था इसलिये मस्तिष्क भी आखिर स्थिर हो गया और इस उपाय से दूरी दूर हो गई, प्रभु के नजदीक पहुँच गये। ❖

भाद्रपद कृष्णा 1
29-8-96

जयं चरे : कर्म विपाक से मुक्ति का मार्ग

पद्मप्रभ जिन तुज मुज आंतरु रे, किम भाजे भगवंत?
कर्म विपाके कारण जोईने रे, कोई कहे मतिमत।।

आत्मा और परमात्मा के बीच जो दूरी है उसका हेतु/कारण कर्म विपाक है और कर्म विपाक से जो कर्म बधन के हेतु बनते है उन्हे बध का और दूरी का कारण बताया गया है। कर्म-बध क्रिया से होता है। कहा भी गया है—'या या क्रिया सा सा फलवती।' यह क्रिया मन से, वचन से और काया से होती है। चलना, फिरना, बोलना, बैठना, ये सब क्रियाएँ है। जो भी क्रिया होगी उसमे शुभाशुभ आश्रव का सयोग होगा। शुभाशुभ आश्रव से जो आदान होगा वह आत्मा से सयुक्त होगा—और कार्मण-वर्गणा रूप पुद्गलो का आत्मा से सयुक्त होना ही कर्म की सज्ञा प्राप्त करता है। अबाधाकाल बीतने पर ये कर्म उदय मे आते है। विपाक (फल), फिर क्रियाएँ और बध, यह क्रम अनवरत चला आ रहा है। एक समय भी ऐसा नही होता जिसमे मन, वचन या काया की क्रिया नही हो रही हो। व्यक्ति विचार करता है, क्रिया रुकती नही, कर्म-बध चलता रहता है तो फिर मुक्ति का उपाय ही नही है। गुरु से ऐसा उपदेश सुन कर एक शिष्य ने जिज्ञासा प्रकट कर दी—'भंते! क्या चलना-फिरना बद कर दे, एक जगह बैठ जाये?' भगवान ने कहा—

अजय चरमाणो य, पाण भूयाइ हिसइ।
वंधइ पावयं कम्म, तं से होइ कडुय फलं।।'—दशवै 4/1

अर्थात् अयतना से चलता हुआ प्राण-भूतादि की हिसा करता है वह पाप कर्मो का बध करता है, जिसका कटुक विपाक होता है। 'भगवन्! कह चरे फिर कैसे चले?' गुरु ने उत्तर दिया—'जय चरे।' अर्थात् यतना पूर्वक चलो। पर यतना कैसे की जाय, उसके तौर-तरीके क्या है? इसके उत्तर से ही उस प्रश्न का उत्तर भी मिलता है कि दूरी कैसे दूर हो? दूरी किन कारणो से है? दूरी जिन कारणो से है उनमे चलना भी एक कारण है। तव प्रश्न उत्पन्न होता है कि चलकर तो दूरी तय की जाती है। चलने से यदि दूरी बढती हो तो फिर

दूरी तो दूर होनी ही नही है। दो व्यक्ति मकान के दो छोरो पर है, मिलना चाहते है पर दोनो सोच ले कि हमे चलना नहीं है, तो क्या मिल पायेगे ? विचार करे कि दूरी चलने पर मिटेगी या क्रिया रोकने पर ? 13वॉ गुणस्थान है सयोगी केवली और 14वॉ गुणस्थान है अयोगी केवली। सिद्धत्व प्राप्ति से पहले 14वे गुणस्थान मे जाना जरूरी है। योग प्रवृत्ति के विराम बिना सिद्धत्व नहीं हो सकता। अयोग अवस्था मे योग प्रवृत्ति का अभाव हो जायेगा फिर तो मात्र 5 ह्स्व अक्षर (अ, इ, उ, ऋ, लृ) के उच्चारण जितने समय मे सपूर्ण कर्म विलय से निरजन निराकार अवस्था लब्ध हो जायेगी। पर होगी कव ? जव क्रिया रुक जाये, कर्म के हेतु और कर्म-वध रुक जाये। भेद कल्पना मिट गई। शिष्य के प्रश्न 'कह चरे' मे प्रभु ने कहा 'जय चरे।' यहॉ प्रवृत्ति है, निषेध नही है और इतने-से सूत्र मे बहुत कुछ समाविष्ट भी हो गया है। साधक को आवश्यक होने पर ही चलना है, अनावश्यक नही और चलना पड़े तब भी ईर्यासमिति की विधि से ही गमन करे। उत्तराध्ययन सूत्र 24/8 मे उस विधि का निरूपण किया गया है—

इदियत्थे विवज्जित्ता, सज्झाय चेव पचहा।
तम्मुत्ती तप्पुरक्कारे, उवउत्तेरिय रिए।।

अर्थात् इन्द्रिय अर्थो का वर्जन करता हुआ। इन्द्रियॉ पॉच कही गई है और अर्थ याने उनका विषय जैसे श्रोत का विषय सुनना, चक्षु का विषय देखना, घ्राण का विषय सूँघना आदि इन विषयो से अपने-आप को अलग हटाकर चलना। चलते-चलते मधुर गायन सुनने मे लग जाएँ तो क्रियाएँ तो दो हो जायेगी पर उपयोग एक मे ही रहेगा। चल लेगे पर ईर्या शोधन नही कर पायेगे। इसके साथ ही पॉच प्रकार की स्वाध्याय, वाचना, पृच्छना, परिवर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्मकथा को भी चलते समय त्याग दे। कभी-कभी कुछ लोग कहते है कि प्रभु ने योग-साधना और ध्यान-साधना का स्वरूप नही बताया। पर देखिए इसी गाथा मे आगे कहा है—तम्मुत्ती-तन्मूर्ति (एकमेक) और तप्पुरक्कारे अर्थात् उसी कार्य को प्रधानता दे। यह तन्मयता ही योग-साधना है, ध्यान की एकाकारता है। किसी को आशका होती है कि जैन सिद्धात सिर्फ निवृत्ति धर्म की बात करता है। यह मत करो, वह मत करो, विधेय रूप मे क्या स्वीकार किया उसका दिग्दर्शन इस धर्म मे नही है। वस्तुत यह बात यथार्थ नही है। जैन सिद्धातो मे विधेय रूप मे भी बहुत-कुछ उपलब्ध है—'जय चरे' यह विधेयात्मक वाक्य ही है और यदि देखा जाय तो निषेध भी एक प्रकार से विधेय

को ही उजागर करता है। सडक मे वाहनो के चलने के लिए निर्देश होता है कि बायी ओर चले, इससे दाहिनी ओर चलने का निषेध हो जाता है और यदि दाये का निषेध करे तो बाये का विधान अपने आप हो जायेगा। यह तो वाहन के लिए हुआ और पैदल चलने वाले को दाहिनी ओर अर्थात् राइट साइड चलना चाहिए। एक प्रकार से यह तथ्य भी इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को ही उजागर कर रहा है कि पैदल चलने वाला राइट (सही) चलता है, वह ईर्यासमिति पूर्वक चलता है। वाहन चालक भी सुरक्षा हेतु गड्ढे, पत्थर आदि से बचकर तो चलता है पर उसकी तेज रफ्तार मे छोटे प्राणियो की सुरक्षा कहॉ संभव है ? खैर, मै कह रहा था—चलने की क्रिया मे 'तन्मयता' और 'तत्प्रधानता'—कितने गहन शब्द है। इसी के साथ ही कहा है कि उपयोग पूर्वक चले। 'जय चरे' की परिभाषा को ही स्पष्ट करने के लिए कहा गया है—

दवदवस्स नगच्छेज्जा, भासमाणो य गोयरे।
हसन्तो नाभिगच्छेज्जा, कुलं उच्चावयं सया।।

दशवैकालिक सूत्र 5।1।14

अर्थात्—दबदब करता हुआ न चले, बात करता हुआ, हसता हुआ न चले। यह सभ्यता की दृष्टि से भी उचित नही है क्योकि इन स्थितियो मे ईर्या का पालन नही हो सकेगा। चलने की क्रिया दुर्योधन ने भी की थी। महल का भाग ही ऐसा था कि पानी नही होने पर पानी का आभास होने से उसने धोती ऊॅची कर ली थी और जिस भाग मे पानी था वहॉ ज्ञान नही हो पाया, उसने धोती ऊॅची नही की, यद्यपि वैसा ज्ञात नही होने से हुआ था। आज भी इस प्रकार के चमकदार पत्थर होते है कि यदि उन पर पानी गिरा हो तो सहसा नजर नही आता। अस्तु, दुर्योधन की इस क्रिया पर द्रौपदी को हॅसी आ गई थी और हॅसी के साथ ही उसने कुछ शब्द भी उच्चरित कर दिये। यह था चलने की असावधानी का परिणाम।

शेरशाह सूरी बादशाह का पुत्र था जिसे बादशाह ने युवराज पद दे दिया था। एक दिन युवराज की सवारी निकली अर्थात् वह भी गमन क्रिया कर रहा था, चलने मे ध्यान नही था। वह इधर-उधर नजर डालता चल रहा था। मार्ग मे एक पान की दुकान आई। वह मोदी की दुकान थी। मोदी की एक सुदर कन्या दुकान पर खडी थी। उस रूपसी पर युवराज की निगाहें टिकी और युवराज ने पानदानी से दो बीडे उठाकर उस कन्या पर फेक दिये। कन्या कुछ समझ नही पाई, सकुचा गई। मोदी इस हरकत को देखकर दु खी हुआ। सोचने लगा—मै

क्या करूँ? ये युवराज है, मै इनका कुछ बिगाड नहीं सकता पर हॉ, मै बादशाह सलामत से न्याय की अपील कर सकता हूँ। उसकी अपील पर बादशाह ने सुनवाई की। एक दिन भरे दरबार मे राजकुमार को कटघरे मे खड़ा किया गया। राजकुमार नीची निगाहे किए खड़ा था, मुँह उठाने का साहस भी नही रहा था। इतने मे बादशाह की गभीर गर्जना गूँजी—'हमारे पास एक फरियाद आई है, तुमने मोदी कन्या पर पान के बीड़े फेके है।' युवराज ने कहा—'अब्बा जान, पर मैने किसी बुरी भावना से नही फेके थे।' इतना सुनते ही बादशाह गरजा—'बुरी निगाह से नही फेके, किसी की बहन-बेटी पर इस प्रकार बीड़े फेकना क्या उचित है? बुलाओ अपनी बेगम को।' बेगम को बुलाया गया। उस जमाने मे रानियाँ मुँह ढंके रहती थी, कोई उनका मुँह नही देख सकता था। बादशाह ने कहा—'तुम बेगम का बुरका हटाओ'। मुँह उद्घाटित करना एक प्रकार से उसका तिरस्कार था। राजकुमार ने बुरका उठाया। बादशाह ने मोदी को दो बीड़े देकर कहा—'इन्हे बेगम के मुँह पर फेक दो।' मोदी ने बीड़े हाथ मे लिए। विचार चलने लगे मै युवराजी पर बीड़े फेकू, नही नही। उसका विवेक काम कर गया, उसने वे बीड़े उसके चरणो पर रख दिए और विनम्रतापूर्वक कहा—'बादशाह सलामत, मै मानता हूँ कि आप पूरे राज्य की बहन-बेटी को अपनी बहन-बेटी समझते है, उनकी इज्जत-आबरू का खयाल रखते है। मै तो सिर्फ युवराज के अपराध को दडित करने की भावना से आया हूँ पर यहाँ स्वय अपराध करने के लिए नही। यदि मैने भी युवराजी पर बीड़े फेके तो मै स्वय अपराधी साबित हो जाऊँगा।' बादशाह तख्त से उठे और मोदी को गले लगा लिया। ऐसे प्रसग पर विरले व्यक्तियो मे ही विवेक जग पाता है। इसलिए भगवान ने 'जय चरे' कहा। इन्द्रियो के विषय मे ध्यान नही देते हुए गमन क्रिया मे ही ध्यान रहे तो दुर्घटना टल सकती है। मूल बात यह है कि यदि युवराज सिर्फ चलने मे उपयोग रखता तो वैसा घटनाक्रम ही नही बनता।

ललितागकुमार के आख्यान पर भी दृष्टिपात उपयुक्त होगा। ललिताग कुमार घोड़े पर दौड़ लगा रहा था। इधर-उधर फिसलती हुई निगाहे अनायास महारानी पर जा टिकी। मोहपाश मे आबद्ध होकर महारानी के पास खिचा चला गया। इधर राजा के आने की खबर पाते ही महारानी ने उसे पाखाने मे डोरी से लटका दिया। उधर राजा पहुँच गये और थोड़ी देर मे हाजत होने पर जब वे मल-मूत्र विर्सजन के लिए पाखाने मे गये तो ललिताग उनके मलमूत्र से लथपथ हो गया। एक इन्द्रिय के आकर्षण ने यह दशा बना दी। मल-मूत्र ही उसके भोजन-

पानी का आधार हो गया। इस दशा को ससार के रूपक से जोडा गया है कि माता की कुक्षि मे गर्भस्थ शिशु लटका रहता है। माता के मल-मूत्र उसके ऊपर से जाते रहते है। उस काल कोठरी मे वह लबे समय तक तडफता रहता है पर बाहर आते ही सब-कुछ भूल जाता है और मूछो पर ताव देकर इतराता है। उससे पूछा जाना चाहिये कि उस वक्त तेरी मूँछे कहॉ चली गई थी ? अब बाते बना रहा है।

उठ जाग रे चेतन, निंदिया उड़ा ले मोह राग की...।

यह मोह कहॉ से पैदा हुआ ? इन्द्रिय विषयो से लगाव जुड़ने पर हमारे भीतर मोहभाव-रूप सतान पैदा होती है। वह पदार्थ से आकर्षित होती है और उस मोह का पुट धीरे-धीरे अपना नशा दिखाता है। शराब पीते समय तो नशा नही आता पर पीने के बाद जब व्यक्ति लहरे लेने लगता है तब मालूम होता है कि उसका क्या दुष्प्रभाव होता है। मोह की मादकता भी सम्मोहित करती है। व्यक्ति भान भूल जाता है। इसीलिए प्रभु ने कहा है—'चलने की एक क्रिया द्वारा भी बंध हो जाता है, भगवान से दूरी बढ जाती है अत यदि तुमने ससार से ऊपर उठने हेतु कमर कस ली है, तो सजग बन जाओ।' व्यक्ति तर्क करता है—पूरी सड़क पर जीव बिछे है—क्या फर्क पडता है ? कैसे भी चले। पर भाई, जीव बिछे है या नही, इससे फर्क नही पडता पर इतनी-सी भावना से तुम्हारे भीतर फर्क पड जायेगा। जीव मरे या नही पर तुम्हारी आत्मा का तो मरण हो ही जायेगा और वह हिसा सामान्य नही होगी। जब मन मे यह भाव होता है कि क्या फरक पडता है और इस प्रकार प्रमाद किया जाता है तब आत्मा की हिसा तो हो ही जाती है—आत्मा की मृत्यु हो जाती है। यदि विवेक रखकर यतना पूर्वक चले तो उस स्थिति मे किसी प्राणी का वध-अतिपात हो भी जाये तो वहॉ भाव-हिसा नही होने से पाप कर्म का बध नही होगा। यदि देखकर यतनापूर्वक नही चल रहे है तो चाहे हिसा नही भी हुई, जीव की विराधना नही भी हुई, फिर भी प्रमाद के कारण कर्म-बध, पाप कर्म का बध होगा। आप कहेगे यह तो उल्टी बात हो गयी। बात उल्टी नही सीधी है—यतना मे सजग अवस्था है और अयतना मे जडता है। जड़ता मे जीने वाले मे 'आत्मवत् सर्वभूतेषु' की भावना नही रहती अत वह क्रिया भावरूप-हिसा होकर पाप कर्म का बध कराने वाली हो जाती है। चलने की क्रिया एक है परन्तु यतनापूर्वक वह नही करने से हमे परमात्मा से दूर कर देती है। चलने की क्रिया से ही साधक परमात्मा से दूर हो जाता है और उसी से पास भी हो सकता है। यदि व्यक्ति सावधानी बरते, वह साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका कोई भी हो, तो परमात्मा से दूरी समाप्त कर सकता है। बहनो को घर मे अनेक प्रकार के कार्य

करने पड़ते है। वे रसोई बनाती है, उन्हे आग भी जलानी पड़ती है अत आग जलाने से पहले वे चूल्हे की पलेवणा सम्यग् प्रकार से निरीक्षण कर ले, जहॉ बर्तन आदि रखे है, वहॉ पर देख ले। आजकल तो गैस है, जीव कहॉ होगे? किन्तु गैस के चूल्हे को भी प्रात काल खोलकर देखे तो ज्ञात होगा कि छिद्रों मे कसारी आदि कितने ही जीव प्रविष्ट हो जाते है। बिना देखे जलाने पर उन जीवो की क्या दशा बनती होगी, समझने की बात है। एक बार सत गोचरी मे आचार ले आये। उसे लाकर देखा गया तो उसमे सफेद लटे निकली। कभी-कभी चावल मे भी ऐसा प्रसग आता है। चावल मे दूध या पानी डालकर देखा जा सकता है। कभी-कभी दलिया-थुली, जो कई दिनो की हो जाती है, उसमे भी लटे निकल आती है। हम साधक है, गाव-गाव घूमते है, कई बार भोजन का प्रतिलेखन करते हुए इस बात की अनुभूति होती है कि खाद्य सामग्री मे त्रस जीवो के मृत कलेवर होते है। साधु गृहस्थो के घरो से आहार ग्रहण करते समय तो ध्यान रखे ही फिर स्थान पर आकर भी उसकी पलेवणा करे। एक बार खीर आयी, उसमे कुछ काला-काला दीखा। किसी ने कहा इलायची है, परन्तु जब गौर से देखा गया तो लाल चीटियॉ दिखाई दी।

अब सोचे कि उस थोड़ी-सी खीर मे इतनी-सारी चीटियो के कलेवर क्या दर्शाते है? अयतना, अविवेक। इसीलिए आहार चौड़े पात्र मे करे ताकि कभी कम रोशनी भी हो तो भी वह साफ-साफ नजर आ जाय। आज बहने जल्दी-जल्दी मे काम करती है। विवेक का उपयोग कम रहता है, यतना नही रह पाती है जो रहनी चाहिये क्योकि यतना करने से वर्तमान जीवन की सुरक्षा होती है। यदि यतनापूर्वक चल रहे है तो ऊबड-खाबड़, ककरीले-पथरीले, कटकाकीर्ण मार्ग पर, यदि कोई खड्डे या पत्थर आदि आयेगे तो उनसे बचेगे और ठोकर भी नही खायेगे। इस प्रकार कठिन मार्ग पर भी हम सुरक्षित रह सकते है बशर्ते कि हमने चलने की विधि सीख ली हो।

गुरु शिष्य से कहते है—जय चरे। कवि भी सकेत कर रहा है कि इस क्रिया से तुम परमात्मा के सन्निकट पहुँच जाओगे। विपाक मे कर्म-बध होता है पर यदि सही क्रिया अपना ली गई तो बध रुक जायेगा और कर्मो की शृखला टूट जायेगी। सत जब चलकर आते है तो सुख-साता की पृच्छा की जाती है अर्थात् चलने से आपकी आत्मा की साता मे तो बाधा नही पहुँची और यदि उस परीषह पर विजय प्राप्त हो गई, चलने की सही विधि अपना ली गई तो आत्मा सुख-शाति की सच्ची अधिकारिणी बन जायेगी। ❖

भाद्रपद कृष्णा 2

30-8-96

विशुद्धि के लिये कायोत्सर्ग

पद्मप्रभ जिन तुज मुज आतरु रे, किम भांजे भगवत?
कर्म विपाके कारण जोईने रे, कोई कहे मतिमत।

क्रिया जीवन का सहज व्यवहार है परन्तु उसके सम्यक् रूप के प्रति लोग सजग नही होते। परिणामस्वरूप क्रियाएँ बध का कारण बन जाती है। ऐसी ही एक क्रिया खडा रहना भी है जिससे सबधित जिज्ञासा उत्पन्न होने पर शिष्य ने गुरु के समक्ष निवेदन किया—कह चिट्ठे? भगवन्। कैसे खडे रहे? भगवान् महावीर ने उत्तर दिया—जय चिट्ठे। प्रभु ने जिस छोटे से सूत्र का उच्चारण किया, उस सूत्र के विषय के साथ उनकी गहन अनुभूति जुड़ी हुई थी और उस अनुभूति के धरातल पर उतना उत्तर देना ही उन्होने पर्याप्त समझा। उनके सामने जो समाधान लेने वाले थे वे भी प्रखर प्रतिभा के धनी थे। इतना-सा प्रतिबोध पाकर अपनी प्रखर प्रतिभा से बहुत-कुछ हासिल कर सकते थे। हम ध्यान रखे कि तीर्थंकर की देशना, आगमवाणी, केवल सकेत मात्र करती है, सिर्फ टच (स्पर्श) करती है और उस सकेत को पकड़कर उस दिशा मे मार्ग बनाना होता है। तीर्थंकर भी शिष्य को संकेत करते है। यदि वे ही साधक को सारा मार्ग बता दे तो साधक क्या करेगा? फिर उसका पौरुष कैसे जागेगा? यह मनोवैज्ञानिक सत्य है। आप अपने बच्चे को जिंदगी-भर सिखाते ही नहीं रहते अपितु योग्य होने पर उसे ट्रेनिग देते है। बच्चे को दुकान का भार भी सौपते है और अवसर आने पर उसे पैरो पर खडा करने हेतु उसे स्वतत्र दुकान भी करवा देते है। इसी प्रकार प्रभु साधक को सकेत देते है ताकि वह स्वय के पुरुषार्थ को सक्रिय कर पानी की तरह आगे बढता चला जाए और जिस प्रकार पानी ढाल पाकर मार्ग स्वय बनाता है और आगे बढता जाता है। उसी प्रकार वे भी उस सकेत के वेग से अपना मार्ग बना ले।

जरा सोचे, नहरे तो सरकार ने बनाई है पर नदी का बहाव किस सरकार ने बनाया है? पानी ने अपना मार्ग सहज ही नही बनाया है, मार्गवर्ती चट्टानो को काटकर उसका वेग आगे बढा है। चट्टानो को घेरे मे लेकर पानी उनमे भी प्रविष्ट हो जाता है। इसी प्रकार तीर्थंकर भी साधको को सकेत करते है।

वैज्ञानिको और जासूसो को छोटा-सा सुराग मिल जाय, छोटी-सी बात मिल जाय, तो फिर उसके आधार पर वे तह तक पहुँचने का प्रयत्न करते है। साधक को भी खोजी कहा गया है, वह सकेत पर गति करे। भगवान ने 'जय चिट्ठे' सकेत किया, इससे हम क्या समझे ? यतना से खड़े रहे इसके साथ ही एक बात ध्वनित होती है कि क्या खडे रहना भी साधना है ? यदि खड़े रहना साधना नही होती तो भगवान कह देते—खड़े रहने की बात क्यो पूछ रहे हो ? अनावश्यक तथ्यो के लिए प्रभु निर्देश नही करते क्योकि अनावश्यक खडे रहना प्रमाद होता और प्रभु ने कहा है कि 'समय गोयम मा पमायए'—समय मात्र का प्रमाद मत करो। दीर्घ तपस्वी शासन प्रभावक श्रद्धेय ईश्वरचदजी म सा ने नियम बना रखा था कि लगभग आधे घटे नहीं बैठना, उस समय घूमना हो सकता है, किन्तु बैठना या सोना नही। शास्त्रकारो ने कहा है—उड्ढ ठाण ठाएज्जा' अर्थात् अपने-आप को ऊर्ध्व स्थिति मे स्थापित करो। ऊर्ध्व स्थिति भावो की भी हो सकती है कि भावो को ऊर्ध्वगामी बनाया जाये, पर जिस प्रसग मे बात कही गई है वहाँ इसका तात्पर्य है—'खड़ा रहे।' साधक आतापना भूमि मे आतापना लेता है तो खड़े रहने की स्थिति होती है। दो प्रकार से आतापना ली जाती है (1) हाथ ऊपर की ओर उठाकर (2) बाँहे नीची झुका कर एक पैर पर स्थित रहकर। यदि यह न हो सके तो दोनो पैरो पर भी खड़ा रहा जा सकता है, पर खड़े रहने मे भी अतर होता है। सामान्यत जिस प्रकार आप और हम खड़े रहते है, वैसा खड़ा रहना वहाँ नही बताया गया है। प्रभु महावीर ने जो तरीका बताया है उसे समझे। कायोत्सर्ग मे किस प्रकार खड़े रहा जाय ? दोनो एड़ियो के बीच चार अगुल का अतर रहे और दोनो पजो का फासला आठ अगुल का रहे। इसमे एक महत्त्वपूर्ण बात और भी है जिसे समझ लेना आवश्यक है। व्यक्ति प्राय खड़े रहते समय अपने शरीर का सारा भार एड़ियो पर डाल देता है। पर यह गलत है, इस प्रकार खड़े रहने से मानसिक तनाव शात नही होगे, चित्त मे चचलता आयेगी। एड़ियो से एक नस, जो मस्तिष्क तक पहुँचती है, जब उस पर दबाव पहुँचता है तो सदेश मस्तिष्क तक नही पहुँच पाते, अवरोध उत्पन्न होता है। एड़ियाँ जमीन से ऊपर उठाकर नही रखना है पर इस प्रकार रखे कि हमे आभास हो कि एड़ियो पर कोई वजन नही है, वे बिलकुल सहज एव भारहीन है। हाथो को रखने की भी विधि है। हाथ नीचे झूलते हुए रहे। हथेलियाँ पूरी सीधी तनी हुई नही बल्कि कुछ मुड़ी हुई रहे। अगुलियाँ अँगूठे से मिली रहे और हाथो को तनावरहित ढीला छोड़ दे। दृष्टि

सामने की ओर रहे। यह खडे रहने की विधि हुई। व्यक्ति भिन्न-भिन्न मुद्राओ मे भी खड़ा होता है। धनुष तानने की, भाला लेने की या तलवार उठाने की अलग-अलग मुद्राएँ हो सकती है किन्तु साधक को ध्यान-मुद्रा मे खड़े होना चाहिए। अन्य क्रियाएँ वर्जनीय है क्योकि तदनुरूप भाव बनते है और यदि व्यक्ति ने पूर्व मे इन शस्त्रो का प्रयोग कर रखा है तो उसके भीतर हिसात्मक भाव जाग सकते है। आप कहेगे—प्रभु ने हममे ऐसी कौन-सी कमजोरी देखी जो इस प्रकार का कथन किया ? लेकिन आप स्वय भी तो अनुभव करते है कि हमारा मन एक क्षण कही तो दूसरे क्षण कही और विचलित होता रहता है। प्रभु इन भावो के ज्ञाता थे कि साधक न मालूम किस क्षण फिसल जाये क्योकि चरम शरीरी भी फिसल जाते है। इस फिसलन को रोकने के लिए भीतरी पुरुषार्थ को सक्रिय करना होगा। प्रभु ने भावोत्थान के लिए एक सूत्र और दिया है—

उट्ठिए नो पमायए (आचाराग सूत्र 1/5/2) साधक उठ जाओ, प्रमाद मत करो। यदि बैठे रहे तो आलस्य, प्रमाद बढेगा, ऊँघने लगोगे। पाठशाला मे भी होमवर्क पूरा नही हो या कोई अपराध हो जाय तो शिक्षक कहता है—'स्टेण्ड अप अर्थात् खडे हो जाओ।' प्रभु भी कह रहे है—तुमने पाठ याद नही किया है। पाठ याद करने के लिए ही कायोत्सर्ग का विधान है। कायोत्सर्ग से प्रतिज्ञा ली जाती है—**विसोहणत्थं करेमि काउस्सगं**—विशुद्धि के लिए कायोत्सर्ग करता हूँ। प्रभु ने कहा—खड़े हो जाओ, भावो से भी उठो, प्रमाद मत करो। खड़े रहोगे, नीद नही आ पायेगी। विधि से खड़े रहने पर भीतर भी परिणमन होता है। हमने सूत्र तो पढे पर 'उगारी' नही की। उसे ढालने मे तत्परता नही बन पाई। आज सबके पास एक ही जवाब है—समय नही। श्रावक हो या साधु हो, दो दिन रुकने का आग्रह करते है तो महाराज कहते है—'जल्दी जाना है, समय नही है।' समय कहाँ से आयेगा ? कोई तो नहीं कहता कि मेरे पास समय है। पर समय बरबाद कितना किया जाता है और सार्थक कितना, यह निजी चिन्तन का विषय है। प्रभु ने यतना से खड़े रहने के लिए एक सूत्र यह भी दिया—

एगो एगित्थिए सद्धिं नेव चिट्ठे न संलवे। साधु अकेली स्त्री के साथ न खड़ा रहे, न बात करे। यदि कोई कहे—क्या फर्क पडता है हम तो साधु है। प्रथम बात तो उन्हे यह ध्यान रखना चाहिए कि वर्षो तक एकान्त गिरि कन्दराओ मे ध्यानमग्न कठोर तपस्वी साधक बाहुबली भी राजमती के क्षणिक दर्शन मात्र से विचलित हो गये थे। यह बात जुदा है कि वीरागना सती-साध्वी

राजमती ने कठोर वचनो से फटकार लगाते हुए वाहुबली को पुन सयम भावना मे स्थिर कर दिया।

दूसरी अह बात यह है कि इन मर्यादाओ, वर्जनाओ का पालन साधु को ही करना है, सिद्धो को नही। आगम मर्यादाओ के तट-बध मे सयमी जीवन जीने वाला ही ब्रह्मचर्य की कठोर साधना कर सकता है। मर्यादाएँ इसलिए बनाई गई है कि—अणेग चित्ते खलु अय पुरिसे, से केयण अरिहए पूरइत्तए (आचाराग सूत्र 1/3/2) अर्थात् यह मनुष्य अनेक चित्त वाला है। अपनी इच्छाओ की पूर्ति करना चाहता है। यद्यपि इच्छाओ की पूर्ति का प्रयास छलनी को जल से भरने के सदृश है, फिर भी मनुष्य कामनाओ की अन्धी दौड़ मे निरन्तर भागा जा रहा है। तीर्थकर महाप्रभु ने साधक के सर्वमगल एव कल्याण के लिए मर्यादाओ की स्थापना की। प्रभु ने तो कहा है कि स्त्री यदि वृद्धा भी है तो भी एकान्त मे तो क्या महापथ पर भी उसके साथ खडे रहना नही कल्पता। इसके पीछे भी कारण है। व्यक्ति की निगाहे इस तरह के दृश्य से अपवाद फैला सकती है और भ्रामक स्थिति बना सकती है। भ्राति कैसे फैलती है, इसका एक उदाहरण है। एक बहिन अपने पति को भोजन करा रही थी। दोनो मे बहुत ही सौहार्द था। कही क्लेश-सघर्ष का नाम नही था। भोजन कराते हुए अचानक बहिन की ऑखो मे पानी आ गया। उसने ऑखे पोछने को पल्लू उठाया। इधर पड़ोसन ने दरवाजा खोला। बहिन को ऑख पोछते देख बाहर से लौट गई। दरवाजा खोलते ही सामने ही रसोई थी। पड़ोसन ने दरवाजा बद किया। अब उसे विचार आया, जरूर आज पति-पत्नी मे अनबन हुई है। तभी वह रो रही है। बात पेट मे पची नही। पहुँची दूसरी पड़ोसन के घर और मनगढ़न्त सुना दिया—'आज कमला व उसके पति मे लड़ाई हो गई, बेचारी रो रही थी।' पड़ोसन ने कहा—'पर ऐसा नही हो सकता, उनमे तो बहुत प्रेम है।' 'अरी तू क्या जाने मैने ऑखो से देखा है।' अब क्या था, बात बिजली की गति से फैलती गई। पूरे गॉव मे चर्चा का विषय बन गयी। कमला की प्रिय सहेली ने भी सुना। उसने सोचा—बात क्या है, जानकारी करनी चाहिए। पहुँची कमला के पास और पूछा—कमला आज क्या हुआ? कमला ने कहा मुझे तो जानकारी नही कि क्या हुआ? सहेली ने कहा—लो, सारे गॉव मे चर्चा है, तुम्हे मालूम नही? कमला ने कहा—सच कहती हूँ मै कुछ नही जानती, तुम्हे मालूम है, तुम्ही बता दो। सहेली ने बता दिया—अरे। तुम्हारे नाम की पूरे गॉव मे चर्चा हो रही है। वस्तुत ऐसी बाते, जिनके न सिर होता है न पैर पर वे फैलती चली

जाती है और लोग विश्वास भी कर लेते है। पूज्य गुरुदेव कहा करते है—'बारह हाथ की काकड़ी तेरह हाथ का बीज'। लोग यह नही सोचते कि ककड़ी बारह हाथ की है तो बीज तेरह हाथ का कैसे होगा ? कमला की सखी ने कहा—'आज तुम्हारे और बहनोईजी के बीच झगडा हुआ था ?' कमला ने कहा—'नही तो।' 'तो फिर वह पड़ोसन तो प्रत्यक्षद्रष्टा है। बहुत अच्छी बात है।' पडोसन से जब पूछा गया—बताओ कब देखा ? तब उसने स्थिति स्पष्ट कर दी—अरे आज तुम्हारे पतिदेव भोजन कर रहे थे तब तुम रो रही थी। झगड़ा हुए बगैर रोना क्यो आयेगा ? अब कमला को समझ मे आया। उसने कहा—'पहले पूछ तो लेना था कि उस समय मे आँख मे पानी आने का क्या कारण था ? मेरे पतिदेव प्याज के शौकीन है। मैं उस समय प्याज काट रही थी, प्याज के रस की बूदे आँख मे चली गई थी और आँखो मे पानी आ गया था। गजब हो गया। गाँव मे चर्चा फैल गई। ऐसी चर्चा भी हो जाती है।' साधु यदि निर्दोष भी हो फिर भी अपवाद बन जाता है। लोगो की श्रद्धा-प्रतीति मे न्यूनता आ जाती है। साधु-गोचरी के लिए भी जाये तो दो घरो के बीच मे ज्यादा खड़ा नही रहे। किसी मकान की तरफ ज्यादा निगाहे नही डाले। गृहस्थ के घर मे चारो तरफ नजर न दौडाये। स्नानागार पर दृष्टि गडाकर नही देखे। शास्त्रकार कहते है कि इससे गृहस्थ को सशय होता है कि साधु के मन की स्थिति स्पष्ट नही है। खड़े रहने मे साधु पूर्ण सजगता बरते। गुरु के पास अविनय से खड़ा नही रहे। गुरु से पूछा—कह चिट्ठे ? गुरु ने सकेत दिया—जय चिट्ठे। जब हम इस सकेत को समझते है—तब मार्ग दिखाई दे जाता है। मार्ग अधेरे मे नही मिलेगा। हम मार्ग ढूँढ कर चले। तभी गतव्य तक पहुँच सकेगे।

यदि इलाके मे चोरी डकैती का प्रसग है और साधु किसी मकान को घूर कर देखे तो उस पर शका हो सकती है। व्यवहार दृष्टि से यह औचित्यपूर्ण नही है। साधु को अनावश्यक इधर-उधर घूमते रहना उचित नही है। कार्य सम्पादित होने पर साधु शीघ्र अपने स्थान पर लौट आये। भावो से अप्रमत्त बने। यदि हम इन सकेतो का अनुसधान करेगे तो हमारा साधना पथ आनद रस से आप्लावित हो जायेगा और मगलमय जीवन का प्रसग प्राप्त होगा।

हम यह न सोचे कि ये सब बाते, सामान्य व्यवहार और शिष्टाचार की ऐसी छोटी-छोटी बाते धर्माचरण मे कहाँ आती है ? इन मुद्राओ—भगिमाओ आदि का धर्मानुशासन से क्या लेना देना ? पर समझ ले कि धर्माचरण और धर्मानुशासन से इन बातो का सीधा सबध है, क्योकि भारतवर्ष मे और भारत मे

जन्मे, पनपे और पल्लवित-पुष्पित हुए धर्मो की अपनी एक अनोखी विशिष्टता है जो ससार के अन्य देशो मे उदित हुए धर्मो मे नही है। भारतीय धर्म, मात्र धर्म नही, सम्पूर्ण जीवन-प्रणाली है। हमारे यहॉ खान-पान, उठना-बैठना, सोना-जागना, व्यवसाय-व्यवहार, शादी-विवाह, जन्म-मृत्यु, मकान-बनाना, फसल काटना आदि सभी को धर्म निर्देशित और नियत्रित करता है। यहॉ विवाह एक सस्कार है, पाश्चात्य देशो के समान मात्र ऐसा अनुबध नही जिसे कभी भी समाप्त किया जा सके, वह तो जन्म-जन्म का सबध है। और हम यह भी समझ ले कि इन छोटी-छोटी बातो से ही सस्कार पड़ते है, चरित्र बनता है, व्यवहारशीलता आती है और इस प्रकार सम्पूर्ण जीवनचर्या का सस्कार होता है—ऐसा सस्कार जो जीवन को सार्थकता की ओर ले जाता है। ऐसा जीवन क्षणभगुर होते हुए भी चिरन्तन प्रभावो एव परिणामो को उत्पन्न करता है और विवेकशील, धर्म परायण व्यक्ति को जीवन और मृत्यु के वधन से मुक्त कर सकता है। ऐसे जीवन की पहिचान किसी छोटे-से-छोटे कार्य से उसी प्रकार हो सकती है जिस प्रकार बटलोई के चावलो मे से एक दाना देख कर ही बताया जा सकता है कि चावल कच्चे है अथवा पक गये ? इसीलिये भगवान ने कहा है—'जय चिट्ठे'। विशुद्धि के लिये कायोत्सर्ग की यह भूमिका ही तो है। ❖

भाद्रपद कृष्णा 3
31-8-96

ग्रंथि-विमोचन की महिमा

मनुष्य का जैसे-जैसे विकास हुआ उस विकास के साथ उसके चिन्तन के क्षेत्र का भी विस्तार हुआ। परिणामस्वरूप मान्यताओ, प्रवृत्तियो और विश्वासो मे भी बहुरूपता आई जिसके कारण वाद भी बढे। हम जानते है कि जहॉ वाद होता है वहॉ विवाद भी हो सकता है और विवाद को सवाद के रूप मे भी बदला जा सकता है। युग के प्रारभ मे अर्थात् जब से कर्म जगत् का जाल फैला और युगनिर्माण का कार्य प्रारभ हुआ तब उस निर्माता-युग मे शिक्षा देने वाले प्रथम जिनेश्वर, प्रथम राजा भगवान् आदिनाथ हुए। यह आदिनाथ नाम ही उनके आदि शिक्षक अथवा ज्ञानदाता होने का प्रमाण प्रस्तुत करता है। भगवान् आदिनाथ ने साधु जीवन स्वीकारा और उनके साथ ही उनके प्रति अनुराग रखने वाले बहुत से राजकुमारो ने भी मुनि पर्याय को स्वीकार कर लिया। भगवान् मौन थे। उनमे क्षमता थी, धैर्य था यह सकल्प लेने के लिये कि जब तक प्रासुक एषणीय भिक्षा प्राप्त नही होगी तब तक मै निराहार रहूँगा। वे अपने सकल्प पर दृढ रहे परन्तु अन्य साधक इतने कठिन मार्ग पर बहुत आगे तक बढ नही पाये और इतिहास बतलाता है कि उस समय 363 मत/पथ या वादो का प्रकटीकरण हो गया जिनमे मुख्य थे—विनयवाद, कालवाद, नियतिवाद और पुरुषार्थवाद। युग और आगे बढा तो विकासवाद और उपभोक्तावाद, उपयोगितावाद आदि वाद चल पडे। प्रभु महावीर सहित जितने भी तीर्थंकर हो गए है उन्होने जो वाद दिया, जो स्वीकार किया उसमे पुरुषार्थ को महत्त्व दिया यद्यपि उसके साथ काल-नियति आदि भी समवाय रूप से जुड़ते है। अकेला पुरुषार्थ उतना सक्रिय नही हो पाता फिर भी पुरुषार्थ की मुख्यता है। वैसे तो स्याद्वाद, अनेकातवाद, आत्मवाद व कर्मवाद की भी चर्चा हुई है पर प्रस्तुत प्रसग मे पुरुषार्थ का जिक्र है। एक तरफ तो प्रभु ने पुरुषार्थ का कथन किया और दूसरी ओर प्रभु से पूछा जा रहा है—'कह आसे' भगवन् हम कैसे बैठे ? और प्रभु ने समाधान भी दे दिया कि—'जय आसे' यतना से बैठो। लगता है, यह तो परस्पर द्विरूपता है। यदि पुरुषार्थ है तो फिर बैठना क्यो ? बैठना है तो पुरुषार्थ हो नही सकता। व्यक्ति जब थक जाता है तो आराम के लिए, विश्राम के लिए, बैठता है। बैठना एक प्रकार से अकर्मण्यता का बोध कराता है। हमारे

चिन्तन को विराम नही मिलेगा। यदि हमारे पास चिन्तन नही, सही दृष्टि नही तो यह सोचेगे कि तीर्थकर की वाणी मे परस्पर विसवाद क्यो है? विरोधाभास क्यो है? वस्तुत यह विरोधाभास नही है। अकर्मण्यता की बात प्रभु नहीं कहते क्योकि वह तो एक प्रकार से प्रमाद है और प्रभु ने कहा है—समय गोयम मा पमायए—हे गौतम! समय मात्र का प्रमाद मत करो। नीतिकार भी कह रहे है—

उद्यमेन हि सिद्ध्यान्ते, कार्याणि न मनोरथै व्यक्ति मनोरथ से नही क्रियाशीलता से ही कार्य सम्पन्न कर सकता है। व्यक्ति इन्ही सारे प्रश्नो के जाल मे उलझ जाता है। प्रभु को निर्ग्रथ कहा गया है अर्थात् जिनके जीवन मे ग्रथि नही है। यह ग्रथि क्या है और उसका स्वरूप क्या है? हम विचार तो करते है पर पहचान नही पाते कि ग्रथि का स्वरूप क्या है? वह भौतिक तत्त्वो से निर्मित वस्तु है या अभौतिक तत्त्वो से? व्यक्ति विचार करता है कि वह केवल बाहर का जीवन जी रहा है, भीतर का जीवन नही जी रहा है। पर सचाई यह है कि व्यक्ति भीतर ही जी रहा है। बाहर जीवन नही है। बात कुछ अटपटी लगेगी। आप कहेगे, बाहर का जीवन नही तो फिर उपदेश का क्या प्रयोजन है? हम इसे समझने का प्रयास करे कि बाह्य और आभ्यतर जीवन का स्वरूप क्या है? बहने मेले मे घूम रही थी, स्वर्ण आभूषणो से सजी दूकान दिखाई दी। सुन्दर डिजाइन पर बहिन का मन चला गया। उसके भीतर भाव जगा और उसने आभूषण खरीद लिया। बाहर से खरीद रही है पर भीतर भाव जागने पर ही क्रिया बनी है। भाव नही जुड़ेगे तब तक बाहर तो बहुत-से पदार्थ है। पदार्थ से आकर्षण जुड़ने पर ही व्यक्ति उत्सुक होता है और प्रवृत्ति बनती है।

यह बाहर जीने और भीतर जीने का क्या रहस्य है? जब तक पौद्‌गलिक भावो के साथ सबध है और आत्मा पर भी पौद्‌गलिक भावो का आधिपत्य है तब तक उस सबध से जो भाव निर्मित होते है वे विभाव है। विभाव से जो गति होती है उसे बाह्यगति कहा जाता है। वह स्वभाव नही है। यद्यपि विभाव भी आत्मा के भाव है, इन्हे आत्मा ने ही अर्जित किया है। इन वैभाविक भावो के कारण ही ग्रथियो का निर्माण होता है। उदाहरण के लिए समझ ले कि एक रस्सी है। इसमे यदि एक गॉठ लग गई तो उसके वजन मे तो कोई अतर नही आयेगा, वजन पूर्ववत् रहेगा, उसमे परिवर्तन नही होगा। एक नही कई गॉठे लगाने पर भी एक रत्ती वजन नही बढ़ेगा, फिर भी उसमे बहुत-सा परिवर्तन हो जायेगा। अतर आ जायेगा। अब उस रस्सी मे बधन क्रिया की समर्थता नही

रही वह सिकुड गई। गॉठे संकुचित करती है भीतर का फैलाव सिमट जाता है। प्रभु ने कहा है—'मित्ती मे सव्व भुएसु' भीतर मैत्री का झरना बहे और नीतिकारो ने भी कहा है—'वसुधैव कुटुम्बक'—वसुधा अर्थात् पृथ्वी पर जितनी आत्माएँ है—उनसे पारिवारिक सबध स्थापित हो। फिर हम परिवार के किसी सदस्य को दु·खी नही देख सकेगे। कौटुम्बिक भावो मे दुराव नही रहेगा, आत्मीय भाव जुड जायेगे। ये सैद्धातिक बाते हमारी आत्मा का मौलिक स्वभाव है—पर जैसे ही ग्रथियाँ बनती है, विस्तार सिमटता चला जाता है। एक परिवार मे चार भाई है, शादियाँ हो गई। कई घर ऐसे है जहाँ क्लेश नही होगा, परस्पर स्नेह होगा। पर ऐसे घर भी है जहाँ पुत्र शादी से पूर्व अलग हो जाय या शादी के बाद अलग हो जाय। बहन सोचती है, यह देवर की सतान है, उसकी नटखटता मुझसे सहन नही होगी। स्वयं की सतान चाहे कुछ कर ले। ये मोह की ग्रथियाँ है। अपनेपन की गॉठ बध गई तो फिर परिवार से वह सबंध नही रहा। विस्तार सकुचित हो गया। वैसे देखा जाय तो ग्रथि का कोई स्वतत्र अस्तित्व भी नही है। यदि गॉठ खोल दी जाय तो कोई अलग वस्तु प्राप्त नही होगी। मानसिक ग्रथियाँ भी विचारो मे निर्मित होती है। गॉठयुक्त रस्सी बॉधने के काम नहीं आती। उसी प्रकार इन वैचारिक ग्रथियो मे उलझकर हम जो कार्य करना चाहते है वह कर नही पाते। उलझन मे अनेक सज्ञाएँ बन जाती है। कवि आनन्दघनजी प्रार्थना के माध्यम से कह रहे है—

सात महाभय टालतो, सप्तम जिनवर देव, ललना।

सात महाभय कहे गए है जैसे—1 इहलोक भय, 2 परलोक भय, 3 आदान भय, 4 अकस्मात् भय, 5 वेदना भय, 6 मरण भय, और 7 अश्लोक-अपयश भय। पहले भय का जागरण होता है, हम पोजीशन बनाना चाहते है लेकिन आगे की परिणति देखे। प्रभु महावीर कह रहे है—यतना से बैठे। हम देखते है, जब व्यक्ति निराशा या हीन भावना से ग्रस्त होता है तो वह सुस्त होकर बैठ जाता है। मै नही मानता कि तीर्थंकर ऐसे निराशापूर्ण ढग से बैठने की अनुज्ञा देगे। निराशा कैसे पैदा होती है ? जब हमारे भीतर काम-क्रोध की भावना हो, भीतर यह क्रोध क्यो पैदा होता है। मनोविज्ञान ने जहाँ तक खोज की है और इसके कारणो को जोड़ा है उसके अनुसार क्रोध आता है तो मानिए व्यक्ति निराशा मे है। नैराश्यपूर्ण भावो के कारण, आशा की जब एक किरण भी नही मिलती तो वह उद्विग्न हो जाता है, उसे क्रोध आ जाता है। निराश व्यक्ति की सारी शक्ति क्षीण होने से वह

कमजोर होने लगता है तो बचाव के लिए सहयोगी की अपेक्षा करता है तब उसे क्रोध और अहकार रूप साथी सहारा देते है, आश्वस्त करते है कि तुम्हे हम मजबूती से खड़ा रखेगे। अह से ही क्रोध प्रेरित होता है और आज मनोविज्ञान ने यह स्पष्ट किया है कि क्रोध की उत्पत्ति मे निराशा के बीज होते है अन्यथा सहसा क्रोध पैदा नही होगा। प्रश्न है कि निराशा क्यो आ गई ? समाधान है कि निराशा आई चिन्ता से। चिन्ता का जन्म हुआ भय से। भय का जन्म हुआ प्रतिष्ठा भाव से। ये सूत्र गहरे जुडे हुए है, हम जान नही पाते। आप चिन्ता का ऑपरेशन कीजिए, किसी चाकू-छुरी से नही। उसके भीतर पहुँचिये। ज्ञात होगा कि उसके भीतर भय के कीटाणु किलबिला रहे है। भय के कीटाणु यदि समाप्त हो जाये तो चिन्ता नही रहेगी—चिन्तन होगा। चिन्ता मे आशा की, प्रकाश की किरण नही होती, मानसिक शक्ति जर्जरित हो जाती है। चिन्ता मे घुलते हुए सही मार्ग नही ढूढ पाते बल्कि निराश हो जाते है। सबसे पहले कारण को ढूँढना होगा—कारण है सात महाभय। आज व्यक्ति कैसे-कैसे भय पालता है। मेरा परलोक कैसा होगा ? वर्तमान को सुदृढ बनाइये तो भविष्य अपने-आप सही होगा। यदि वर्तमान बिगड गया तो फिर भविष्य कैसे सुरक्षित रहेगा ? वर्तमान को सुदृढ करना है तो सात भय टालो। प्रतिष्ठा का भय और यशस्वी जीवन की आकाक्षा यदि पूर्ण न हो पाये तो फिर निराशा। एक दार्शनिक ने कहा है—कमल का फूल जब तालाब का पानी बढता है तो ऊपर आ जाता है पर पानी घटने पर नीचे नही जाता। कितनी गहन बात है। एक व्यक्ति के स्रोत बढ़ने से, आमदनी के जरिए बढने से उसका खर्चा भी बढ जाएगा। चाय-पानी, शराब, बीड़ी आदि पर, जिनकी जीवन मे कोई आवश्यकता नही है, यह खर्च बढ़ेगा। कचरा (धन) बढने पर शौक भी बढ़ जायेगे पर यदि आमदनी कम होने लगे तो खर्च कम नही होगे और फिर व्यक्ति धीरे-धीरे निराशा से घिरने लगेगा—अब दुनिया को मुँह कैसे दिखाऊँ ? प्रगाढ़ चिन्ता के कीटाणु पनपेगे और फिर वह निढाल हो जायेगा। एकदम उदास और सुस्त होकर बैठ जायेगा। भगवन् से पूछा गया—कैसे बैठे ? भगवान ने उत्तर दिया तो एक महत्त्वपूर्ण बात बताई क्योकि बैठने मे भी साधना रही हुई है। बैठने के भी भिन्न-भिन्न तरीके होते है। प्रभु ने कहा—शुद्ध पृथ्वी पर नही बैठना। शुद्ध पृथ्वी अर्थात् जिसमे जीव मौजूद है। इसके अलावा—

पमज्जित्तु निसीइज्जा पूजकर ऑखो से प्रतिलेखन कर फिर बैठना। जो व्यक्ति हड़बड़िया होगा, असयमी, अयतनावान होगा तो वह जमीन को न तो

पूजेगा और न देखेगा बल्कि धम्म से बैठ जायेगा, भले वहा छोटे-छोटे विच्छू हो और उनकी आत्मा का हनन कर दे। बैठने की गतिविधियो पर उत्तराध्ययन सूत्र मे प्रभु ने बहुत कुछ सकेत दिए है—

पाए पसारिए वावि उत्तरा 1/19
अवलबिआ न चिट्ठेज्जा। दशवै 5/2/9

पैर पसार कर नही बैठे। दीवाल का सहारा लेकर नही बैठे। आज तर्क का युग है, कोई तर्क कर सकता है सहारा लेने मे क्या नुकसान है? पर तीर्थकर जो कहते है उसके पीछे अर्थ है—सहारा लेकर बैठने से दीवाल के किनारे जो क्षुद्र जन्तु चलते है उनका अतिपात सभव है। यदि वे जन्तु विषैले हो और काट खाये तो असमाधि भी पैदा होती है। आयुर्वेद शास्त्र भी बतलाता है कि सहारा लेने से जठराग्नि मद होती है और मदता के फलस्वरूप वात-पित्त-कफ का प्रकोप बढता है। वात-पित्त-कफ के साथ हमारे कर्मो का सबध रहता है। आचार्य मेघविजयजी ने इसका सुन्दर निरूपण किया है। वायु बढने से मस्तिष्क की चिन्तन शक्ति काम नही करती। 60 वर्ष की आयु के बाद वायु बढने के अवसर अधिक रहते है अत सावधानी रखनी चाहिए। यदि सावधानी नही तो मानसिक जड़ता बनेगी, बुद्धि पर आघात होगा और वह जड़ता ज्ञानावरणीय कर्मो का बध कराने वाली होगी। पित्त का सबध आयुष्य के साथ जुड़ा हुआ है। यदि शरीर मे पित्त बनना बद हो जाय तो शरीर पीला पड़ने लगेगा। व्यक्ति ककाल मात्र रह जायेगा और मृत्यु के नजदीक पहुँच जायेगा। इसी प्रकार कफ का सबंध नाम कर्म की प्रकृति से है। यदि व्यक्ति एक बैठक मे ही ज्यादा बैठता है तो वात-पित्त-कफ के प्रकोप से भीतर की स्थिति गड़बडा जाती है। आयुर्वेद कहता है कि न अति चलना न अति बैठना। सभी क्रियाएँ सतुलित होनी चाहिए। यदि व्यक्ति मस्तक पर हाथ रखकर शोकासन से बैठा है तो ज्ञात होगा यह चिन्ता मे, निराशा मे है। यदि चिन्ता नही भी है पर उस रूप मे बैठे है तो समझिए आपने चिन्ता के लिए आसन बिछाया है उसे आमत्रण दिया है। पैर पसार कर नही बैठना क्योकि यह तो व्यवहार मे भी असभ्यता का सूचक है और पैर फैलाने मे अवलम्बन की जरूरत होगी। अवलम्बन से उदर का फैलाव होगा और वायु का विस्तार होगा। और भी कहा गया है कि—

णेव पल्हत्थिय कुज्जा अर्थात् पलाठी लगाकर नहीं वैठे। पलाठी अर्थात् पटेलो का आसन। यह आसन वैसे भी अविवेक का सूचक है। इस प्रकार वैठने

से आतो पर दबाव पड़ने से पेट की क्रिया मे गडबड़ी आयेगी। विचारो मे विनय का प्रवाह नही, सभ्यता का सचार नही बल्कि अह का प्रादुर्भाव होगा। पैर पर पैर चढ़ाकर भी नही बैठना। ज्ञानियो ने इस आसन को अह का प्रतीक माना है। अह के भाव, उसकी आध्यात्मिक साधना को भी कामयाब नहीं होने देगे। व्यवहार दृष्टि से भी वह अह के कारण परिवार समाज से टूटता चला जायेगा। अहकारी सफलता के सूत्र प्राप्त नही कर पायेगा। बैठने के लिए साधना की दृष्टि से भी 3/4 आसन महत्त्वपूर्ण है जिनमे पद्मासन, सिद्धासन और सुखासन प्रमुख है। इन आसनो से शरीर की क्रियाएँ शुद्ध होती है और भीतर शुद्ध भावो का प्रादुर्भाव होता है। पद्मासन मे चिन्ता, निराशा का लेश भी नही हो सकता। आप प्रयोग करिये—'हाथ कगन को आरसी क्या।' हमारे विचारो मे ऊर्ध्वीकरण होगा पर आसन सही तरीके से लगाना आवश्यक है। घुटने जमीन का स्पर्श करते हुए हो और शरीर का भार जघा भाग पर होना चाहिए। बैठने मे तकलीफ महसूस नही हो। अभ्यास के बाद हम इन आसनो पर लम्बे समय तक बैठ सकेगे। बैठने की क्रिया का असर मन पर भी पड़ता है। मन यदि नही सधा तो साधना आगे नही बढ़ पायेगी। यतना से आसनो का प्रयोग किया जाय। एक राहगीर चल रहा था। प्यास लगी, पास मे कुआँ दिखाई दिया, रस्सी-बाल्टी का साधन भी था। व्यक्ति कुएँ के तट पर जाकर बैठ गया। इन्तजार करने लगा कि कोई आए तो मुझे पानी पिलाये। थोड़ी देर मे दूसरा पथिक भी पहुँच गया, वह भी प्यासा था। पहले राही ने कहा—भाई जरा मुझे पानी पिला दो। आगतुक ने कहा—तुम तो मुझसे पहले आ गये, फिर पानी क्यो नही पीया। पहले ने कहा—भाई मै अमीरजादा हूँ, अपने हाथ से लेकर पानी कैसे पीऊँ? इसलिए तुम पिला दो। दूसरा भी बैठ गया। भाई, तुम अमीरजादा हो तो मै भी नवाबजादा हूँ। मै क्यो हाथ से पानी पीऊँ? दोनो बैठ गए। अब थोड़ी देर मे फिर तीसरा राही भी आ गया। दोनो एक स्वर मे कहने लगे—हमे जरा पानी पिला दो। जोरो से प्यास लगी है। आगन्तुक ने कहा—मगर तुम दोनो अब तक प्यासे क्यो बैठे हो? साधन तुम्हारे पास है। उत्तर मिला—'भाई, मै अमीरजादा हूँ, और यह नवाबजादा है। हाथ से पानी पीने मे तौहीन होगी।' तीसरे ने भी आसन बिछा लिया—'और भाई मै तो शहजादा हूँ मै पानी कैसे पिला सकता हूँ।' तीनो प्रतीक्षा कर रहे थे इतने मे चौथा राही आया, तीनो ने कहा—पुण्य का काम है हमे पानी पिला दो। उसने भी कारण पूछ लिया। उत्तर पाकर, अच्छा ऐसी बात है। उसने डोर सम्भाली, बाल्टी कुएँ मे उतारी, पानी निकाला। हाथ-पैर धोये। फिर अपनी प्यास बुझाई और अपनी राह पकड़ ली। तीनो

ताकते रह गए—अरे तुम तो पानी पीकर चलते बने, हमे पानी क्यो नहीं पिलाया ? उत्तर मिला—अरे भाई, तुम तो अमीरजादा हो, नवाबजादा हो और शहजादा हो तो मै भी कम नही, मै भी हरामजादा हूँ। जब-जब आप जैसे प्रतिष्ठा के भूखेजादे जन्मते है तब-तब हरामजादो का भी जन्म होता है। बैठे तो वे भी थे पर उनमे साधना नही थी,अपितु आकांक्षा थी। पोजीशन का भूत सवार था। प्रभु महावीर यह नही कहते है कि हाथ पर हाथ धरकर बैठ जाओ। प्रभु ने कहा—स्वय अपना कार्य आप करो तो फिर कभी निराशा नजदीक नहीं आयेगी। पुरुषार्थ से मन की गतिविधि सचालित करो। प्रभु ने कहा है--जो आसन चड-चड़ करता है उस पर नही बैठे। पद्मासन मे बैठने के योग सबधी कारण भी है। हमारी जो रीढ की हड्डी (मेरुदड) है उसके भीतर जो कई नलिकाएँ है उनमें एक सुषुम्ना नाड़ी भी है जिसके भीतर पोलार रहती है जैसे बासुरी के भीतर पोलार रहती है। उसमे प्राणो का सचरण होता है। सहारा लेकर बैठने या झुककर बैठने से वह सुषुम्ना सिकुड जाती है। रस्सी मे गॉठ लगने पर रस्सी सिकुड़ जाती है तो वह बांधने के लिए उपयोगी नही होती उसी प्रकार सुषुम्ना के सिकुड जाने पर उसमे होने वाले स्राव का प्रवाह मस्तिष्क से संबधित नही रह पाता और ऊर्ध्वीकरण की क्रिया सभव नही हो पाती। यदि हम सीधे तनकर बैठे तो प्राणायाम सहज सध जायेगा। झुककर बैठने से श्वास फेफडो मे भली प्रकार से पहुँच नही पाता। हमारे फेफड़ो मे लगभग 6 करोड़ छिद्र माने गए है। सही श्वांस लेने वाला व्यक्ति भी 2 करोड़ छिद्रो को भी नहीं भर पाता। प्राणायाम की पूर्ति बराबर होने से, उपघात लगने से भी मृत्यु नहीं होगी जीवन व्यवस्थित रहेगा। जो योगीजन 6 करोड़ छिद्रो को भर लेते है उनके बारे मे लोकभाषा मे कहा जाता है कि वे अमर हो गये। प्रभु ने हमे ऊर्ध्वीकरण की जो प्रक्रियाएँ दी है हम उनका प्रयोग करे, उनमे अवगाहन करे। यदि व्यवस्थित जीवन शैली अपना ली जायेगी तो प्रदूषण समाप्त होता चला जायेगा। यदि जीवन शैली मे सुधार नही तो वह आगे के आयाम कैसे प्राप्त करेगा ? प्रभु की साधना-विधाओं पर चिन्तन-मनन करे। पूज्य गुरुदेव ने भी हमे समीक्षण ध्यान और समता दर्शन दिया है पर हम इन्हे अपना कितना पाए है ? समता सिद्धात दर्शन का फार्मूला है कि हम ग्रथियो को खोलें, ग्रथि-विमोचन के बाद ही हम जीवन दर्शन मे आएगे और जीवन दर्शन मे आनदित होकर, आत्म-दर्शन और परमात्म-दर्शन मे प्रविष्ट होगे। लेकिन प्राथमिक भूमिका है ग्रथि-विमोचन की। प्रभु ने भी कहा है कि अनादि मिथ्यादृष्टि भी

यथाप्रवृत्तिकरण द्वारा ग्रथि-विमोचन करके ससार परित्त कर लेता है। ग्रथि खुलते ही अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण से आगे बढ जाता है। गुरुदेव ने भी हमे समता दर्शन के माध्यम से इसका दिग्दर्शन कराया है। इस प्रकार हम रूपान्तरित जीवन शैली पर अमल करेगे और प्रभु प्रदत्त 'जय आसे' सूत्र से जीवन को अलकृत करेगे तो प्रभु महावीर की ही तरह शुद्ध-बुद्ध, निरजन-निराकार स्वरूप से मगलमय अवस्था उपलब्ध कर सकेगे। ❖

भाद्रपद कृष्णा 4
1-9-96

सार्थक सुषुप्ति का स्वरूप

श्री सुपार्श्वजिन वदीए सुख संपत्तिनो हेतु, ललना।
शांत सुधारस जलनिधि, भवसागरमां सेतु, ललना।।

चरम तीर्थेश प्रभु महावीर केवलज्ञान केवलदर्शन की ज्योति से आलोकित, स्वय की आत्मा मे उपस्थित हो विराजमान है। गणधर गौतम प्रभु के चरणो मे पहुँचते है और वदन नमस्कार करते हुए प्रभु से प्रश्न करते है—भगवन्-मनुष्य के कितने प्रकार है ? प्रत्युत्तर मिला—मनुष्य तीन प्रकार के है परन्तु भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणो से भिन्न-भिन्न उत्तर भी दिया जा सकता है—मनुष्य अनेक प्रकार के भी हो सकते है और तीन प्रकारो मे भी भिन्न-भिन्न अर्थो की सयोजना की जा सकती है। तीन प्रकार के मनुष्य है—सुप्त, सुप्त जाग्रत और जाग्रत। सुप्त अर्थात् सोया हुआ। यह सोना भी कई प्रकार से होता है। एक प्रकार की सुषुप्ति वह है जिसमे चेतना सुषुप्त है उसे न विषय का बोध है, न स्वय का बोध कि मै कौन हूँ। दूसरी सुषुप्ति है शारीरिक अगो की, जिसमे अग सोए हुए होते है पर मनुष्य जागा हुआ होता है। तीसरी सुषुप्ति शरीर के हल्केपन की है जिसमे व्यक्ति सोता है और हल्केपन की अनुभूति करता है। प्रथम सुषुप्ति आत्मा मे लम्बे समय से जारी है, उसे स्व का भान नही। आचाराग सूत्र (1/1/2) के माध्यम से कहा गया है—

'इह एगेसिं णो सण्णा भवइ' यहाँ कितने ही जीवो को सज्ञा नहीं होती उनका परिभ्रमण जारी है। चलना, फिरना, बोलना, सब क्रियाएँ चल रही है पर सज्ञा नही है। बहुत बार हम देखते है, व्यक्ति कितनी ओघ सज्ञा मे रहता है, उसे बोध नही रहता। व्याख्यान से व्यक्ति उठा, जूते-चप्पल पहने, कार के पास गया, पॉकिट से चाबी निकाली, चाबी लगाई, कार मे बैठा और कार स्टार्ट, कार चलती रही पर ये सारी क्रियाएँ वह रुटीन मे कर गया। आनायास मार्ग मे मोड आ गया तो भले उसे झटका लगा। क्रिया कर रहा है पर कुछ ज्ञात नहीं। जो-कुछ वह करता रहा लगभग उचित रूप मे करता रहा। यह भी एक प्रकार की सुषुप्ति है। वैसे ही चेतना की सुषुप्ति मे अनेक क्रियाएँ करता रहता है पर सुषुप्ति समाप्त नही होती। ऐसी आत्माओ को प्रभु ने सुप्त कहा है। जिन

आत्माओ को कुछ बोध है और कुछ नही है, कुछ क्षणो मे जो जाग जाता है, कुछ क्षणो मे सो जाता है। योग्य साधन, सत सतियो की प्रेरणा से जागरण होता है, यदि इनका सान्निध्य छूट जाये तो फिर सुषुप्ति आ जाती है। यह अवस्था है सुप्त जाग्रत की। तीसरी अवस्था जाग्रत कही गई है। जाग्रत अर्थात् जो जगा हुआ है—आचाराग सूत्र (1/2/3) मे प्रभु ने कहा है—**उद्देसो पासगस्स णत्थि।।** जो पासग है अर्थात् देखने वाला है—तत्त्व द्रष्टा है उसे उपदेश की आवश्यकता नही। मनुष्य को देखने वाला माने या न देखने वाला। सत्य यह है कि मनुष्य देखता भी है और उसकी ऑखे बद भी रहती है। यदि किसी की रोशनी मद हो, ऑखे विषय-ग्रहण मे अक्षम हो तो वह देख नही पाता। ऑखे नही होने पर भी मनुष्य देख सकता है। ऊपर की ऑखे ही सब-कुछ नही है। भीतर की ऑखे प्रत्यक्ष ज्ञान (अवधिज्ञान, मन पर्यव, केवलज्ञान) की ऑखे उपलब्ध होने पर बाहर की ऑखे न होते हुए भी वह पारदर्शी हो सकता है। निर्मल श्रुतज्ञान से भी देखने की स्थिति बनती है। कवि सूरदासजी के लिए कहते है कि उनके नेत्रो की वह स्थिति नही थी कि देख सकते पर कैसे विलक्षण पद रचे और भक्ति का स्रोत प्रवाहित कर गये सिर्फ इस कारण क्योकि उनकी भीतर की ऑखे जाग्रत थी। जिसकी भीतर की ऑखे जाग्रत है उसे ही जाग्रत कहा गया है।

पासग वही है जिसने आत्मा को देख लिया है। ऐसे व्यक्ति को उपदेश की जरूरत नही होती क्योकि उसने अपना घर देख लिया होता है। जिसने घर को पहचान लिया, उसे और क्या बताया जाय?

शयन के सदर्भ मे प्रभु से पूछा—कैसे सोएँ? उत्तर मिला—यतना से सोएँ। यह दूसरा प्रकरण प्रारभ हो गया। अब तक चेतना से सबधित प्रकरण चल रहा था। अब जो चेतना जाग्रत है पर शरीर धारण कर चल रही है उसके लिये सोना भी आवश्यक है क्योकि शरीर रूप यत्र कार्य करते-करते थक जाता है अत उसे सोना पड़ता है। यह बात अलग है कि किसी महास्वत्वशाली को सोना नही भी पड़े। प्रभु महावीर की साधना अखडित साधना रही थी, उसमे प्रमाद का नामोनिशान नही था। आचाराग सूत्र नौवे अध्ययन मे कहा गया है कि दीक्षा के पश्चात् भगवान् ने कभी प्रमाद का सेवन नही किया। अप्रमत्त भाव मे विचरते रहे। यहॉ प्रश्न उपस्थित होता है कि आगमो मे अनुसधान करने पर एक बात सामने आती है कि सातवॉ गुणस्थान अप्रमत्त सयत का है और उसकी स्थिति अतर्मुहूर्त की है। प्रभु छद्मस्थ अवस्था मे लगभग साढे बारह

वर्ष रहे। उन्होने साढे बारह वर्ष प्रमाद का सेवन नही किया तो क्या वे सातवे गुणस्थान मे रहे? फिर यह कैसे सभव है और सातवे गुणस्थान की स्थिति अतर्मुहूर्त है। फिर सगति कैसे बैठगी? समाधान—यह यथार्थ है कि सातवे गुणस्थान की स्थिति अंतर्मुहूर्त है पर छठवे गुणस्थान के दो भेद है—शुभ योग पडुच्च, अशुभ योग पडुच्च। भगवती सूत्र मे कहा गया है—अशुभ योग मे आत्मारभी, परारभी और तदुभयारभी ये तीनो अवस्थाएँ होती है। शुभ योग वाले को अनारभी कहा गया है और सातवे गुणस्थान वाला भी अनारभी होता है। उस दृष्टिकोण से छठवे गुणस्थान मे शुभ योग वाला अप्रमत्त के नजदीक है। प्रभु ने उसमे प्रवर्तमान रहते काल व्यतीत किया। अत यह कथन कि प्रभु ने प्रमाद का सेवन नही किया, यथार्थ है। प्रभु ने प्रमाद सेवन नही किया पर यदि साधना करते थकान से नीद आती तो उस स्थिति मे चक्रमण करते (घूमते)। निद्रा के अधीन नही होते। प्रमाद सेवन नही करते पर साधना करते। इस प्रकार वे जाग्रत साधना की दशा मे रहे। प्रत्येक साधक उस प्रकार की साधना नही कर पाता है, आवश्यकता होने पर उसे शयन भी करना पड़ता है। पर किस विधि से, कैसे और कब शयन किया जाय, यह जानना भी आवश्यक है। साधक को समाचारी मे बताया गया कि रात्रि के प्रथम प्रहर मे स्वाध्याय, दूसरे मे ध्यान, तीसरे प्रहर मे शयन और चौथे प्रहर से पहले निद्रा से मुक्त हो जाये। प्रश्न होगा एक पहर की नीद से क्या थकान मिट जायेगी? यह कोई निद्रा का समय है? इस प्रकार नीद कैसे पूरी होगी? तीन घटे मे उठ जाने वाला दिन मे झपकी लेगा। उसे दिन मे सोना पड़ेगा। फिर हम नीद के सही स्वरूप को कैसे समझे? वस्तुत सचाई यह है कि हमारा सोना सही तरीके से नहीं होता क्योकि हमारा जीवन सही तरीके से नही चल रहा है। यदि हमारी दैनदिनी सही हो तो कही दिक्कत नही आयेगी और तीन घटे की नींद भी पर्याप्त होगी। दिन भर हम मानसिक द्वंद्व मे उलझे रहते है। दिल प्रकपित है और शयन कर भी लिया तो विचारो की उथल-पुथल वहाँ भी जारी होगी। तद्रा आ भी गई तो थकान दूर नही होगी। किन्तु यदि कोई साधक है, जिसका चित्त पर नियन्त्रण है तो शयन मे आते ही वह ऐसी नीद लेगा जिसे व्यावहारिक भाषा मे घोडे बेचकर सोना कहते है। और ऐसी नीद मे तीन घटे मे ही स्फूर्ति आ जायेगी। घोडे बेचकर कैसे सोया जाता है? एक प्रसग याद आ गया। एक गरीब व्यक्ति किसान के घर गया। किसान ने देखा आदमी हट्टा-कट्टा है। पूछ लिया—क्यो भाई, कैसे आए हो? आगन्तुक ने कहा—गरीब हूँ, नौकरी की तलाश मे आया हूँ। किसान ने पूछा—क्या काम कर सकते हो? आगन्तुक ने

कहा—इसमे क्या पूछना ? जो बनेगा सब-कुछ कर सकता हूँ। किसान ने पूछा—अच्छा तुम हल चला सकते हो ? उत्तर मिला—हॉ। फिर प्रश्न हुआ—पशुओ को चारा-पानी दे सकते हो ? आगन्तुक ने कहा—दे सकता हूँ। किसान ने पूछा—खेत-खलिहान की देख-रेख कर सकते हो ? आगन्तुक ने कहा—हॉ, कर सकता हूँ। बातचीत करके किसान ने उसे नौकरी पर रख लिया। उस व्यक्ति ने कहा—मुझे तुम्हारी सारी शर्ते मजूर है लेकिन मेरी एक शर्त है। जब मै सोया हुआ रहूँ तो कोई मेरी नीद मे दखल न दे। मै घोड़े बेचकर सोता हूँ। मै नीद मे बेखबर रहता हूँ। किसान ने मजूरी दे दी। कुछ दिन बीते। एक दिन भयकर बारिश हुई। किसान को नीद नही आई, चिन्ता होने लगी। अरे, वह तो बेखबर सो रहा होगा। खेत की पाले टूट गई होगी, फसल बह जायेगी। पशुओ का क्या हो रहा होगा ? किसान उठा और पुत्र को साथ लेकर खेत पर गया। देखा नौकर तो गहरी नीद मे खर्राटे भर रहा था। किसान सोचने लगा, इतनी वर्षा होने पर भी इस पर तो कोई असर नही हुआ। यह इतना निश्चित कैसे है ? किसान खेत मे घूमा। देखा, पालो पर बराबर मिट्टी डाली हुई थी। कही कोई क्षति नही हुई थी, पशु यथास्थान बॉधे हुए थे। सारा काम निपटा कर वह सोया था। मुद्दे की बात यह है कि जो व्यक्ति अपने कर्तव्य के प्रति सजग है, जिसने कार्य को पूर्ण कर लिया है, वही आराम से सो सकता है। यदि हमारे भीतर आकाक्षाएँ पनप रही है। सकल्प-विकल्प चल रहे है, उनकी पूर्ति नही हो पाई है तो हम सही तरीके से नही सो पायेगे। और उस स्थिति मे थकान भी दूर नही हो पायेगी। अग सोये रहेगे, व्यक्ति सोचता रहेगा, अभी तो नीद नही उड़ी। वह आलस्य मे पड़ा रहेगा। सोने का तात्पर्य है शरीर को शिथिल करना। अकड़कर या तनकर सोने से थकान दूर नही हो पायेगी जबकि शिथिलीकरण से तीन घटे मे ही वह तरोताजा हो जायेगा। योगासन मे रहने वाले ऋषि सोते है पर प्रक्रिया भिन्न होती है। योग निद्रा मे ऊपर से हमे लगते है सोये है पर वे जाग्रत होते है। आचाराग सूत्र (1/3/1) मे कहा गया है—

सुत्ता अमुणी, मुणिणो सया जागरति।।

अर्थात् जो सोता है वह अमुनि है, मुनि तो सदा जाग्रत रहता है। शयन की जहॉ बात आई है वहॉ पाट और आसन के बारे मे भी बताया गया है। शय्या सस्तारक बिछा कर सोना चाहिए। साधना पद्धति मे जब साधक सथारा करता है तो पहले घास का सस्तारक बिछाता है। कथाओ मे हम पढ़ते है कि व्यक्ति मार्ग भटक जाता है, जगल मे पहुँच जाता है। रामायण के प्रसग मे भी बताया

गया है कि राम-सीता-लक्ष्मण जब अयोध्या से वनवास के लिए रवाना हुए और जब रात्रि मे रुकने का प्रसग आया तब राम ने कहा—लक्ष्मण, अब यहाँ वे पलग नही है, मखमली गद्दे-तकिए भी नही है। तब लक्ष्मण जगल से सूखे पत्ते चुनकर लाये। उनका आसन बिछाकर शयन की व्यवस्था कर दी। एक शय्या पर राम, एक पर सीता सो गयी और लक्ष्मण वनचरो से सुरक्षा के लिए पहरे पर तैनात हो गये। सामायिक मे भी आसन बिछाने का प्रयोजन बताया गया है? यदि हम धरती पर बिना आसन बैठेगे तो हमारे भीतर जो ऊर्जा सगृहीत है वह ऊर्जा पृथ्वी खीच लेगी। भीतर ऊर्जाहीन स्थिति न बने इसलिए आसन का प्रावधान है। शयन-विधि मे दिशाओ का भी महत्त्व बताया है। हमारा मस्तक-पश्चिम-दक्षिण दिशा मे और पैर उत्तर पूर्व दिशा मे हो। प्रश्न होगा शुभ दिशा मे पैर क्यो रखा जाय? यदि हम सीधे सोये हुए हो तो सीधे, और करवट लेना हो तो बाईं करवट सोना चाहिए। पश्चिम मे मस्तक व पूर्व मे पैर होगा तो करवट लेने पर मुँह उत्तर दिशा मे हो जायगा और उठते ही सामने पूर्व दिशा का प्रसग होगा। पूर्व दिशा-प्रकाश दिशा, उदय की दिशा मानी गई है और हमे यह प्ररेणा मिलेगी कि हम उदय की ओर आगे बढते रहे। उत्तर दिशा का भी माहात्म्य है। हम सोचेगे साधना का दिशा से क्या संबध? आगमो मे उल्लेख है—यदि प्रव्रजित करना हो, मुडित करना हो, आहार, ज्ञानार्जन करना हो तो पूर्व, उत्तर दिशा मे मुँह करके करना चाहिए। और इन दोनो दिशाओ से भी बढ़कर ईशान दिशा का महत्त्व है। साधक सयम स्वीकार करता है तो ईशान कोण मे पोशाक परिवर्तन कर फिर गुरु चरणो मे उपस्थित होता है। यदि हम चिन्तन कर खोजे तो ज्ञात होता है कि अन्य दिशाओ मे काल राहू का निवास है पर ईशान कोण काल राहु से मुक्त है। ईशान मे महाकाल (शिव) का अवस्थान है। हम काल पर विजय प्राप्त करने के लिए ईशान कोण मे उपस्थित होते है। गुरु चरणो मे हम काल पर विजय प्राप्त करने की आकाक्षा से पहुँचते है और कहा भी जाता है कि साधु बनने वाला कफन बाँध कर निकलता है।

शयन की विधि बताई है कि मुर्गे को उल्टा करने पर जो आकृति बनती है उसी प्रकार साधु सोये। साध्वी करवट लेकर सोए। करवट बदलने से पूर्व प्रमार्जन किया जाय, इसमे भी जागरण का भाव है। इससे दो बाते स्पष्ट होगी—पूँजने से जन्तु का अतिपात नहीं होगा और उससे पहले स्वय जगेगा। भीतर का जागरण है तो ऊपर से सोना भी शयन नहीं। जागरण नहीं तो चेतना की प्रगाढ अवस्था मे बोध नहीं होगा। वैज्ञानिक प्रयोग ने शोध की है कि हमारे भीतर नीद कैसे आती है और नींद से जगाया कैसे जा सकता है। उन्होने

यौगिक प्रयोग किये। एक व्यक्ति बैठा है उससे कहा गया--सो जाओ सो जाओ सो जाओ और सचमुच उसे नीद आ गई। लगभग आधा घटे वाद फिर कहा गया--जग जाओ जग जाओ जग जाओ वह उठ बैठा। उसे कुछ मालूम ही नही हो पाया। शयन प्रक्रिया मे शिथिलीकरण से स्नायु तत्र मे रूपातरण होता है। यही शयन है।

ग्लेसर को 24,500 फीट की ऊँचाई पर ले जाया गया तो वह दिग्मूढ हो गया। यह भान नही कि क्या हो रहा है। चूँकि वहाँ उसे प्राणो के लिए आवश्यक आक्सीजन उपलब्ध नही हो पाई। जीवनी शक्ति के अभाव मे वह दिग्मूढ हो गया। और जब उसे और ऊपर 28,000 फीट की ऊँचाई पर ले जाया गया और पूछा गया—घड़ी मे कितने बज रहे है, तो वह वता नही सका। मस्तिष्क का सबध टूट जाने से वह समय निर्धारण मे सक्षम नही रह पाया था। यह भी एक प्रकार की सुषुप्ति है। चिकित्सक जब आपरेशन करते है तो इजेक्शन से रोगी को सुला देते है। यद्यपि उसे नीद नही आती है पर उसकी कोशिकाओ को शिथिल कर दिया जाता है। इतना शिथिल कर दिया जाता है कि यदि अग काट भी दिया जाये तो अनुभूति नही होती। इसी स्थिति मे यदि ध्यान साधना मे पहुँच जाय तो बेहोशी के लिए इजेक्शन की जरूरत नहीं रहेगी। मन, वचन से इतने शिथिल हो जाये तो फिर स्वप्न भी नही आयेगे लेकिन यदि विचारो की दौड़ जारी है तो शरीर तो शिथिल हो जाएगा पर थकान दूर नही होगी। ग्लेसर को पुन 14,000 फीट पर लाया गया तो उसकी क्रिया सहज रूप से सचालित होने लगी। शयन के लिए द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव का भी महत्त्व है। उनका भी ध्यान रखा जाना चाहिये। हमारी सुषुप्ति दूर हो, इसके लिये आवश्यक है कि हम शयन प्रक्रिया को सुधारे और इन अनुसधानो को ध्यान मे रखते हुए मगलमय दिशा की ओर अग्रसर हो। ❖

भाद्रपद कृष्णा 5
2-9-96

आहार शुद्धि : साधना की प्रथम सीढ़ी

मोक्ष की अभिलाषा रखने वाला उपासक भोगों से पराड्मुख होक
पंचमहाव्रत-रूप सयम अगीकार करता है तथापि उसके सम्मुख देह परिपाल
का प्रश्न उपस्थित रहता ही है क्योकि बिना देह का यथावत् पालन कि
संयम-साधना भी संभव नही है। कहा भी गया है—'शरीरमाद्य ख
धर्मसाधनम्', अर्थात् शरीर धर्माराधना का प्रथम साधन है। इस प्रकार देह
साधन के बिना धर्म-साधन नही हो सकता। यह देह-साधन आहार के बि
सभव नही है और आहार के लिये उपासक को गृहस्थजनो पर आश्रित रह
पडता है। सयमियो के लिये इस श्लोक मे यही कहा गया है—

धर्मे चरतः साधोर्लोके निश्रापदानि पञ्चापि।
राजा गृहपतिरपर· षट्काया गणशरीरे च।।

राजा, गृहस्थ, षट्काय, साधु समूह और शरीर—ये पॉच, साधु के आश्र
स्थान कहे गये है। अग्नि, जल, वायु, वन आदि की हिसा किये बिना सा
आहार प्राप्त कर सके—इस हेतु गृहस्थजनो पर आश्रित रहकर विचरण कर
पड़ता है। अत इस आहार के संबध मे साधु को अत्यत सतर्क रहने क
आवश्यकता है क्योकि आहार की शुद्धि और अशुद्धि का प्रभाव उसक
वृत्तियो पर पडता है और वृत्तियॉ साधना को प्रभावित करती है। इस प्रक
प्रकारान्तर से आहार साधु की साधना को प्रभावित करता है।

शुद्ध आहार की उपलब्धि के सबध मे मार्गदर्शन हेतु प्रभु महावीर क
चरणो मे एक प्रश्न उपस्थित किया गया—भगवन् भोजन कैसे किया जाए
प्रभु ने उत्तर दिया—'जय भुजे।' यतना से भोजन करो। शरीर आहारधर्मी है
आहार मिलने पर इसमे चेतना का अर्थात् स्फूर्ति का सचार होता है पर य
अति मात्रा मे भोजन हुआ तो स्फूर्ति गायब हो जायेगी।

भोजन मे जो पदार्थ ग्रहण किए जाते है, वे तीन प्रकार के होते है—
(1) प्रीणनीय (2) प्रणनीय (3) मदनीय। साधक को चिन्तन करना है कि
उसके लिए कौन-सा आहार उपयुक्त है। प्रीणनीय आहार से तात्पर्य उ

आहार से है जिससे प्रसन्नता प्राप्त हो अर्थात् वह भोजन, जो प्रफुल्लता प्रदान करे। प्रणनीय आहार का सबध पोषक तत्त्वो से होता है। भोजन ऐसा हो, जो शरीर का पोषण करे। खाद्य पदार्थ तो अनेक होते है पर उनमे पोषक कितने होते है और अपोषक कितने—इसका विवेक रखा जाना चाहिये। मदनीय आहार वह है जिससे मद बढता है, आवेग बढता है, वासना भड़कती है। यद्यपि भोजन की क्रिया तो एक है पर पदार्थो से और पदार्थ से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है व्यक्ति की प्रकृति या स्वभाव। एक व्यक्ति के लिए रुक्ष आहार घातक हो सकता है, पोषक नही। वात प्रकृतिवाले के लिए रुक्ष या शीत आहार मदनीय हो जायेगा अर्थात् वासना बढ़ाने वाला बन जायेगा क्योकि उससे वात प्रकुपित होता है। वह आहार उसे प्रसन्नता या पोषण नही दे सकेगा। आहार के साथ प्रकृति का तालमेल बैठना चाहिये क्योकि उस आहार के साथ मन का भी सबध जोड़ना होता है। दूध-दही एक के लिए अनुकूल है तो दूसरे के लिए प्रतिकूल हो सकते है। इस प्रकार प्रकृति के आधार पर चिन्तन करते हुए आहार का समन्वय किया जाना चाहिये। आहार विषयक ऐसा विवेक यतना है।

यतना के लिए आहार का उद्गम जानना भी आवश्यक है। दशवैकालिक सूत्र (5/1/56) मे कहा गया है—

उग्गमं से य पुच्छिज्जा, कस्सट्ठा केण वा कड।।

साधु आहार के उद्गम के विषय मे पृच्छा करे। 'कस्सट्ठा' अर्थात् किसके लिए और 'केण' अर्थात् किसके द्वारा किया गया है। विज्ञापन एव प्रचार-प्रसार के आज के युग मे इस सबध मे गहन अन्वेषण आवश्यक है। अखबारो मे कई प्रकार के पदार्थो के सबध मे विवरण छपते है पर इनसे सबधित अपेक्षित ज्ञान के बिना व्यक्ति असमजस मे पड़ जाता है। उदाहरण के तौर पर—साबूदाना के विषय मे एक बार माहौल बना कि यह हिसाजन्य पदार्थ है, महापाप से बनता है, अभक्ष्य है। परिणामस्वरूप बहुत-से लोग इसके उपभोग से अलग हटने लगे। जब यथार्थ स्थिति का अन्वेषण किया गया तो ज्ञात हुआ कि जहॉ इसका निर्माण होता है वहॉ स्थिति भिन्न प्रकार की होती है परन्तु इसके निर्माण मे जो अनुपयोगी पदार्थ बाहर डाला जाता है उसके कारण बहुत से त्रस जीव पैदा हो जाते है। बनाते समय अर्थात् उत्पादन के समय ऐसा होता है। बाद मे स्पष्टीकरण भी हुआ। अवशिष्ट पदार्थ से होने वाली हिसा की पवृत्ति अविवेक एव अयतना की परिचायक है पर जहॉ बड़ी-बड़ी फैक्ट्रियॉ

चलती है वहाँ श्रमिक काम करते है वे अहिसा की महिमा नही जान सकते अत वे जीव-रक्षा मे तत्पर भी नही रह सकते। हम एक जगह से विहार करते हुए गुजर रहे थे। शुगर फैक्ट्री के पिछवाडे से दुर्गंध आ रही थी। पूछने पर ज्ञात हुआ कि जो अवशिष्ट पदार्थ बाहर डाला जाता है वह पड़ा-पड़ा सडता रहता है जिससे दुर्गंध आती है। पर दूध मे चीनी लेते समय वह दुर्गंध हमारे ध्यान मे नही आती। अत साधको के लिए पदार्थ का उद्गम जानने की बात है। अत रसोई के उत्पादन की जानकारी के लिए पृच्छा करे, तब उसके उपभोग के सम्बन्ध मे निर्णय करे कि यह आहार किसके लिए बनाया गया है ? यह पूछना तो फिर भी ठीक है पर प्रभु ने सकेत दिया है 'केणे' अर्थात् किसके द्वारा बनाया गया है—यह जानकारी भी अपेक्षित है। तर्क हो सकता है कि किसी के भी द्वारा बनाया जाय, उससे क्या अतर पडता है ? सत्य यह है कि उससे बहुत अतर पडता है। एक रसोई नौकर बनाता है और एक सद्गृहिणी—दोनो की प्रकृति मे अतर होगा अन्यथा नीतिकार क्यो कहते और क्यो श्रीकृष्ण को गुरु से आशीर्वाद लेना पडता कि मै माँ के हाथ की रसोई ग्रहण करूँ। माता भोजन ही नही परोसती बल्कि उसमे माँ का वात्सल्य भी मिश्रित होता है। वह वात्सल्य भाव शरीर का पोषण भी करता है और प्रसन्नता भी बढाता है। साधु जाने कि भोजन का निर्माण किसने किया है। बनानेवाली बहिन ही जान सकती है कि भोजन किसके लिए बनाया है। गाँवो मे भिक्षार्थ भ्रमण करते समय किसानो के घर भी जाने का प्रसंग बनता है। साथ मे दर्शनार्थी भाई भी दलाली मे साथ हो जाते है और मन से ही कहने लगते है, इन्होने अपने लिये बनाया है। यदि उन दर्शनार्थी भाई से पूछा जाय कि क्या आप पहले यहाँ आये थे ? यदि नहीं तो फिर आपको कैसे मालूम ? आप बोलने से विराम लीजिए और जब ग्रामीणों से पूछा जाता है तब ही सही बात सामने आती है। एक बार सत पानी लेने गए—पूछा पानी कैसा है ? 'महाराज। पानी गरम है', कहकर बहराया। सन्त ले आए। पर जब पानी लाकर ढका गया तो ढकने वाले पात्र पर वाष्प नहीं आई तो सन्त पुन गृहस्थ के घर गए। इस बार घर पर बहिन थी। पूछने पर बहिन ने श्रावकजी से प्रश्न किया—आपने कौन-सी मटकी से बहराया था ? अमुक का सकेत करने पर बहिन ने कहा—अरे आज मैने यहाँ कच्चे पानी का घड़ा रखा था, गरम पानी तो उसमे है। पानी यथार्थ मे उष्ण किया गया या नहीं, इसे जानने के लिए पात्र मे पानी लेकर ऊपर ढक्कन लगा कर देखा जा सकता है। अगर गरम किया हुआ होगा तो ढक्कन पर वाष्प उभर जायेगी। यह विधि पूज्य गुरुदेव की बताई हुई है। जानकारी के अभाव मे ऐसी स्थितियाँ बनती है

इसीलिये यथार्थ जानकारी साधु के लिए आवश्यक है। यही कारण है कि गोचरी के लिए गृहस्थ के घर मे प्रवेश करने वाले साधु के लिये यह प्रावधान किया गया है कि वह काल, बल, प्रमाण, क्षेत्र, अवसर, ज्ञानादि, विनय, स्वशास्त्र, परशास्त्र तथा अन्य के अभिप्राय को समझने वाला हो, कालानुसार क्रिया करता हो और अनासक्त तथा निस्पृह हो।

आज के सदर्भ मे तो उत्पादन के लिए पूछना बहुत बड़ा अर्थ रखता है। पुराने जमाने मे पदार्थ घर पर बनाये जाते थे। पर वर्तमान मे व्यक्ति रेडीमेड, डिब्बो मे पैक, होटल का माल पसन्द करता है। पर सोचिए, खोज करिए, इनका निर्माण कैसे होता है ? एक बार ऐसे ही पिकनिक के प्रसग से कई दोस्त मिलकर गये। मिठाइयॉ भी बनाई गई थी। मिर्च-मसाले से जायकेदार भोजन तैयार हुआ था। सभी भोजन करने बैठे। सहसा एक व्यक्ति ने भोजन करते समय भिडी को देखा, अरे कितनी कड़ी है। पर ज्योही मध्यम प्रकाश मे देखने हेतु उसे पलटा तो—यह क्या ? अरे, वह तो छिपकली थी, वघार लगाते समय गिर गई थी। ज्ञात भी न हुआ, भोजन बन गया। यदि अधेरे मे पहला ग्रास भिडी का ले लेते तो सोचिये, क्या स्थिति होती ? इस प्रकार उद्‌गम जानकर आहार ग्रहण करने से कई दोष टल जाते है। आज बेकरी के बिस्किट के लिए भी सशय की अवस्था बनी हुई है, कई लोग कहते है कि इसमे दोष नही, कई लोग दोष बताते है। डेयरी के घी के सबध मे भी ऐसी ही चर्चा है—इसमे 15% चर्बी मिलाई जाती है। यदि सही-गलत का अन्वेषण न किया जाय तो उस घी का उपयोग मन को प्रसन्नता नही दे सकेगा। सात्त्विक भोजन से प्रसन्नता मिलती है, तामसिक से नही। इसी प्रकार मासाहार बुद्धि को जड़ करता है, आलस और क्रोध पैदा करता है। ये सभी अनुसधान प्रभु के इस उपदेश की महिमा ही उजागर करते है—'जय भुजे'—यतना से भोजन करे। यही कारण है कि आराधक के लिये आहारादि की प्राप्ति के लिये जिस भिक्षावृत्ति का विधान किया गया है उसमे जो नियमोपनियम बताये गये है उनके अनुसार 42 दोषो से रहित भिक्षा ही साधु के लिये ग्राह्य है तथा माण्डला के पॉच दोष भी टालने चाहिएँ।

एक दृष्टात ले। चक्रवर्ती सम्राट राजसभा मे बैठे थे तभी एक ब्राह्मण उपस्थित हुआ और सम्राट के प्रति स्तुति-गान प्रस्तुत किया। सम्राट ने कहा—तुमने स्तुति की है, कहो क्या चाहिये ? ब्राह्मण ने कहा—हुजूर। यदि वस्तुत आप देना ही चाहते हो तो हम मॉगे—कही आप निषेध तो नहीं कर

देगे ? सम्राट ने कहा—विप्र! हमने तुम्हे वचन दिया है, मॉगो। विप्र ने सविनय कहा—और तो कुछ नही चाहिए पर आपके लिए जो भोजन बनता है एक दिन वह हमारे पूरे परिवार को प्राप्त हो जाये—यही कामना है। सम्राट ने कहा—मेरे भोजन मे से देने मे मुझे एतराज नही पर वह आपके लिए हानिदायक हो सकता है। अत और कुछ मॉग लो। ब्राह्मण ने कहा—'सम्राट! आपने वचन दिया है अत. उसे पूर्ण करे। मैने और तो बहुत अनुभव किये है। एक बार यह अनुभव भी करना चाहता हूँ।' सम्राट के समझाने पर भी जब विप्र महोदय नहीं समझे तो ब्राह्मण परिवार को अन्ततोगत्वा सपरिवार राजसी भोजन कराया गया। चक्रवर्ती का आहार गरिष्ठ होता है इसीलिए जो आहार राजा के लिए बनता है वह राजपिण्ड साधु को लेने से मना किया गया है। स्वादिष्ट आहार पाकर ब्राह्मण सहित सभी ने छककर खाया। घर पहुँचने पर हालात ऐसे हो गये कि सारा-का-सारा परिवार, मद-ग्रस्त हो गया। आवेग की स्थिति मे वे कुकृत्य कर बैठे। काम वासना के अंधत्व मे बहन, बेटी, माता का भी ध्यान न रहा। जब मद का प्रभाव कुछ कम हुआ तब सोचने लगे—अहो! हमने यह क्या कर लिया! ब्राह्मण तो शर्म से गड़ा जा रहा था। मुँह उठाने की हिम्मत भी उसमे न रही थी। लज्जाग्रस्त हो कर वह जंगलों मे जाकर रहने लगा। अयतना से लिये गए आहार का यह परिणाम हुआ। साधु को आधाकर्मी आहार वर्जित है, वह सयमी जीवन को ध्वस्त करने वाला होता है। गरिष्ठ पदार्थो का उसके लिये निषेध किया गया है। आचारांग सूत्र मे कहा गया है—बहुत बड़ा भोज होने वाला है तो वह साधु लालसा के वशीभूत होकर छकने के लक्ष्य से वहॉ गोचरी हेतु नही जाये।

सुव्रत अणगार से सबधित प्रसग भी मननीय है। वे नगर मे पहुँचे। सामने श्रावक नही आये और ज्ञात हुआ कि आज मोदक का भोज है। गुरु ने कहा—आज नगर मे गरिष्ठ आहार बनेगा अत आज तपस्या कर ली जाये। आचार्यश्री श्रीलालजी म सा के समय की बात है। जयपुर मे सत गोचरी हेतु पधारे। लगभग पॉच सत थे, सध्या का समय था। एक जौहरीजी का घर दिखाई दिया। जौहरीजी भक्ति भाव से ले गए। एक छोटी-सी बटलोई थी। जौहरीजी ने छोटे चाय के चम्मच के माप से खिचड़ी बहराई। पूछा—आप कितने सत है ? कहा—पॉच संत है। पॉच चम्मच बहरा कर जौहरीजी ने कहा—और अन्नदाता ? सत की समझ मे नहीं आया कि क्या जवाब दे। सोचा था, बड़ी हवेली है, शाम का समय है, घूमना नहीं पड़ेगा, गोचरी हो जायेगी। सेठजी तो

पूछ रहे है—और अन्नदाता। सत के मन मे उतार-चढाव आने लगे। विना मन के पात्रे समेटे। सत प्रस्थित हुए। श्रावक पहुँचाने आया और निवेदन किया—गुरुदेव, आप पहले खिचड़ी वापर लेना (खा लेना) फिर यदि जरूरत हो तो गोचरी हेतु उठना। सत ने सोचा—क्या वापर ले। दॉत के नीचे भी नहीं आयेगी। कवल परिमाण भी नही है। पर श्रावक के विनय, व्यवहार और श्रद्धाभाव पर मुग्ध हुए। सोचा, चलूँ स्थानक मे। पॉचो वापरने लगे पर इतनी-सी खिचड़ी उठाना (ग्रहण करना) भी भारी पड़ गया। प्रतिक्रमण के पश्चात् सभी ने तेले का प्रत्याख्यान कर लिया। दूसरे दिन श्रावकजी से पूछा—ऐसी क्या बात थी। श्रावकजी ने कहा—क्या करे, घर मे अलग-अलग व्यक्तियो के अलग-अलग शौक होते है और शौक से बना ली गई। उस जमाने मे उस खिचड़ी के लिए 500 रुपये खर्च हुए थे। आचार्यश्री श्रीलालजी म सा का स्वर्गवास लगभग 1977 मे हुआ था, यह उससे पहले की अर्थात् 70 वर्ष से भी पहले की घटना है। इन वर्षो मे रुपये का कितना अवमूल्यन हुआ है, हम सभी जानते है। आज उस खिचड़ी के खर्च का हिसाब कितना वैठेगा, आप सोच सकते है। उसमे जिन पदार्थो का समावेश होता है उन्हे थोड़ा-सा लेने मे भी पेट भरा-भरा लगता है। आज औषधि की बात आती है। लोग उससे दवाई का तात्पर्य लगाते है पर साधु के लिए चौबीस प्रकार का धान्य औषध है जो भूख की बीमारी को मिटाने वाला है। क्योकि भूख भी वेदनीय कर्म का विपाक है। उसका विनाश औषध से किया जाता है। वैद्यक का सूत्र होता है। उसमे भी एक अफीम होती है और एक अम्बर होता है। यद्यपि रूप दोनो का काला होता है पर गुणो मे भेद होता है। अफीम एक स्थिति मे यदि मारक हो सकती है तो एक स्थिन्ति मे साधक भी। अबर की थोड़ी-सी मात्रा से स्फूर्ति आ जाती है, और टॉनिक की पूर्ति हो जाती है। आज भी वैसे पदार्थ मौजूद है। पदार्थो के उत्पादन को जानकर प्रकृति से सयोजित होने वाले धर्मो की तुलना करे। तुलनात्मक विवेक से प्रसन्नता प्रदान करने वाला आहार ग्रहण करे। केवल स्वाद और खुराक का पोषण करने के लिए नही क्योकि वैसा आहार साधना का पोषण नही कर सकेगा।

भोजन तीन प्रकार का होता है उसी प्रकार मनुष्य भी तीन प्रकार के होते है—सात्त्विक वृत्ति वाले, राजसिक वृत्ति वाले और तामसिक वृत्ति वाले। जैसा भोजन किया जायेगा वैसे ही विचार बनेगे। सात्त्विक आहार से सात्त्विक वृत्ति, राजसिक से राजसी और तामसिक से तामसी वृत्ति बनेगी। प्रभु ने आहार

विवेक को हमारी वृत्तियो के साथ जोडा है—साधु छ· कारणो से आहार ग्रहण करे, छ कारणो से छोडे। 1 क्षुधा वेदनीय को शात करने के लिए, 2 सेवा करने के लिए, 3 ईर्या समिति के शोधन के लिए, 4 सयम की सुरक्षा के लिये, 5 प्राणियो की रक्षा के लिए एव, 6 धर्म चितन के लिए। ये छ कारण आहार करने के है और छ· कारण ही आहार त्याग करने के है, जैसे—1 ज्वरादि रोग की उपशाति के लिए, 2 उपसर्ग आने पर, 3 तितिक्षु-सहिष्णु बनने के लिए, 4 ब्रह्मचर्य की रक्षा के लिए, 5 प्राणियो की रक्षा तथा तपस्या के लिए एव 6 शरीर त्यागने के लिए। साधु सकारण आहार करता है न कि पेट भरने के लिये। पशु भी इतना विवेक रखते है कि वे पहले खाद्य साम्रगी को सूघते है। यदि वह ठीक नही लगती तो भले ही भूखे बैठ जाये पर भोजन नही करेगे। फिर मनुष्य मे इतना विवेक तो होना ही चाहिये। ऐसा नही कि जो सामने आया, खा लिया। *विवेक नही रखा तो जैसे ब्राह्मण परिवार की वृत्तियाँ बिगड़ी थीं वैसे ही* रसनेन्द्रिय का दास होने वाला उपासक साधना मे तल्लीन नही हो सकेगा। बल्कि अपनी क्रियाओ को पतन की ओर उन्मुख कर लेगा। इसीलिये प्रभु ने यतना से भोजन करने का संदेश दिया है। यतना का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत है। उसे ध्यान मे रखकर प्रकृति व साधना के अनुकूल भोजन किया जाय तो हमारी साधना फलवती होगी, रसवती होगी और अमाप आनंद का सचार करेगी। ❖

भाद्रपद कृष्णा 6
3-9-96

भाषा समिति का महत्त्व

हम भगवान् की स्तुति करते है और भगवान् की कृपा के प्रति आश्वस्त हो जाते है। परन्तु यह स्तुति तब तक फलदायिनी नही हो सकती जब तक उसके साथ मन का योग न बने, काय योग का सहकार न जुड़े और वचन योग के माध्यम से भाषा प्रवाहित न हो। प्रभु महावीर के समक्ष भी एक प्रश्न आया था—भगवन्। कह भासे ? बोलना भी हमारे जीवन का एक महत्त्वपूर्ण अग है। प्रत्येक प्राणी की अपनी-अपनी भाषा होती है। पशु की भाषा पशु समझ लेते है। भिन्न-भिन्न क्षेत्रो से सबधित मनुष्यो की भाषा का स्वरूप भी भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। भाषा का उद्देश्य है मन के विचारो और भावो को अभिव्यक्ति देना। इस प्रकार अभिव्यक्ति के लिए भाषा मुख्य माध्यम है। यद्यपि विचार-सम्प्रेषण के लिए आज के वैज्ञानिक युग मे मानसिक कल्पनाओ से भी प्रक्रिया उत्पन्न की जाती है और उसका प्रभाव भी होता है पर प्रत्येक व्यक्ति के लिए वह सभव नही है। राजमार्ग के रूप मे भाषा ही वह माध्यम बन सकती है जिसके द्वारा भाव या विचार सम्प्रेषित किये जाये। पर विचारणीय यह है कि भाषा कैसी हो ? विचारो की अभिव्यक्ति के लिए विचारो के अनुरूप भाषा का ही चयन करना चाहिए।

आध्यात्मिक क्षेत्र मे भी भाषा का अपना महत्त्व है और इसी दृष्टि से भाषा समिति का निरूपण किया गया है। यदि हमे नहीं बोलना है तो वहुत सुन्दर बात है, बोलने की आवश्यकता नही, तो मौन अर्थात् अवचन उपयुक्त है और अवचन से ही प्रवचन प्रवाहित होता है। यदि प्रवचन देना है या कोई मार्के की बात कहनी है या हम चाहते हो कि हमारी भाषा प्रभावकारी बने तो उसके लिए अवचन अर्थात् मौन का माध्यम बताया गया है। प्रभु ने बताया है—वहुय मा य आलवे—अर्थात् .बहुत मत बोलो। इस प्रकार हमे अनुशासित किया गया है। तीर्थकर भगवान जब तक सत्य को उपलब्ध नही कर लेते थे तब तक वे अधिकाशत मौन रहते थे। अवचन की साधना से जब सत्य को उजागर कर लिया जाता है तब वह अवचन प्रवचन बन जाता है।

प्रश्न होता है—प्रवचन किसे कहा जाय ? आजकल रूढ रूप मे कुछ

व्याख्या आदि को भी प्रवचन की सज्ञा दे दी जाती है। 'प्रवचन' शब्द सामान्य शब्द नही है, इसका अर्थ गहराई लिए हुए है। प्रवचन अर्थात्—प्रकर्ष। प्रकर्ष यानी-गहरा, लम्बा, दीर्घ, उडा वचन अथवा प्रशस्त वचन—और वह प्रवचन आगम वाणी है। प्रभु ने 'जय भासे' का जो सूत्र दिया उस मे प्रभु ने कितना गहरा अर्थ भर दिया है। जिसमे गहरा या प्रशस्त अर्थ नही वह प्रवचन नहीं, उसे व्याख्यान कहना उपयुक्त होगा। व्याख्यान अर्थात् वह कथन जिसमे व्याख्या की जाय। उसमे कितनी गहराई है इसका तोल-माप करने के बाद ही उसे प्रवचन कहा जा सकता है। प्रवचन के लिए अवचन की साधना आवश्यक मानी गई है। यदि एक व्यक्ति 12 वर्ष तक अनावश्यक न बोले, आवश्यक होने पर भी सत्य ही बोले, अधिकाधिक मौन भाव रखे तो उसे 12 वर्ष मे वचन-सिद्धि प्राप्त हो जायेगी और फिर वह जो बोलेगा वह सत्य घटित होगा। व्याकरण मे एक सूत्र आया है—'आर्षम्'। 'ऋषीणा इद आर्षम्।' ऋषियो के द्वारा जो शब्द आया उसे 'आर्ष' कहते है। ऋषियो के मुख से स्वाभाविक रूप से जो शब्द निकल गया वह फिर व्याकरण की दृष्टि से घटित हो या न हो, उस पर फिर तर्क को अवकाश नही। जरा सोचे कि उस प्रकार के शब्द को महत्त्व क्यो दिया गया है ? इसलिए कि वह ऋषियों के हृदय से निकला होता है और जिस अर्थ मे उच्चरित हुआ होता है उसी रूप मे प्रयुक्त होगा। ऋषियो की साधना के कारण वह शब्द सार्थक होगा ही।

इस सदर्भ मे एक यथार्थ प्रसग की ओर ध्यान जाता है। जलगॉव चातुर्मास मे प्रवेश से पूर्व की सध्या को आचार्यदेव श्री ईश्वरचदजी ललवानी की फैक्ट्री के विश्रामगृह मे विराजे हुए थे। श्री ईश्वरचदजी के पिताजी श्रीमान शकरलालजी ललवानी आये और वन्दन करने के बाद कुछ कहने लगे। मै भी पास मे खड़ा था। उन्होने कहा—'मै पूना जा रहा हूँ, प्रवेश मे शामिल नहीं हो सकूँगा।' उनकी पुत्री अचलादेवी पूना मे तालेरा परिवार मे ब्याही हुई थी। 'वहॉ से समाचार आये है कि उसे हार्ट की तकलीफ होने से अस्पताल मे भरती कराया गया है।' आचार्यदेव ने कहा कि उन्हे हार्ट की तकलीफ तो नहीं होनी चाहिए। शकरलालजी विचारमग्न हो गये। समाचार आये है पर आचार्यदेव ऐसा फरमा रहे है। क्या करूँ, कैसे करूँ ? घटे-दो घटे वाद उन्होने वापस विचार किया, फोन से एक बार फिर समाचार पूछ लूँ। काले घोड़े जल्दी दौड़ते है। उन्होने फोन पर पूछा—क्या स्थिति है ? उधर से समाचार मिले—'चिन्ता जैसी बात नहीं है। डाक्टरो ने अच्छी तरह निदान कर लिया है हार्ट की तकलीफ

नही है किन्तु कुछ वायु का प्रकोप है।' उस समय आचार्यदेव ने जो उदगार व्यक्त किये थे वे क्या चिन्तन करके व्यक्त किये होगे ? नही। महान साधको के मुख से स्वाभाविक रूप से जो बात निकल जाती है वह यथार्थ मे घट भी जाती है। ऐसी अनेक घटनाएँ है। पर वचन इस प्रकार फलित हो सके इसके लिए वचन की साधना करनी होती है और साधना कथ्य अथवा शब्द को ही नही अक्षर तक को मत्र बना देती है। कहा भी गया है—

अमत्रमक्षर नास्ति नास्ति मूलमनौषधम्।
अयोग्य पुरुषेनास्ति योजकस्तत्र दुर्लभ ।।

अर्थात् ऐसा कोई अक्षर नही जो मत्र न हो, ऐसा कोई मूल (जड़) नही जो औषधि न हो, ऐसा कोई मनुष्य नही, जो योग्य न हो, योजना करने वाला दुर्लभ है। इस प्रकार मुख्य बात योजना की है—शब्द योजना की, वचन-व्यवहार की। इस वचन व्यवहार की कितनी महिमा है, इसी का सकेत देने के लिए ही प्रभु ने कहा है—'बहुय मा य आलवे'—ज्यादा न बोले। ज्यादा बोलने से शक्ति का ह्रास होता है। निरन्तर प्रवाह चलता रहा तो वचन-योग क्षीण होगा। प्रभु ने बोलने का निषेध नही किया है पर जितना बोलने से हमारा कार्य चल जाए उतना ही बोलने का निर्देश दिया है।

भाषा समिति का निर्देश करते हुए कहा गया है कि कर्कशकारी, कठोरकारी, हिसाकारी, निश्चयकारी, छेदकारी, भेदकारी, परजीवपीड़ाकारी, सावद्य—सपापकारी भाषा नही बोले। क्रोध और अह के वशीभूत होकर न बोले, क्योकि क्रोध और अह से जो उच्चरित होगा वह सत्य नही होगा। भाषा चार प्रकार की कही गई है—सत्य, असत्य, मिश्र और व्यवहार। इनमे से सत्य और व्यवहार भाषा का प्रयोग करता हुआ साधक अपनी साधना से च्युत नही होता और एक सद्गृहस्थ भी अपनी सद्भावना से विचलित नही होता। आज व्यक्ति मानता है कि सत्य से काम नही चल सकता, लेकिन यथार्थ यह है कि सत्य के बिना काम नही चल सकता। पूज्य गुरुदेव प्रवचन मे फरमा रहे थे—यदि असत्य के बिना काम नही चल सकता तो आप एक दिन दिनभर सत्य बोलने की सौगध ले लीजिए। आप घर पहुँचेगे। श्रीमतीजी कहेगी—'भूख लगी है तो भोजन परोस दूँ ?' और आप असत्य कह दे कि भूख नही लगी है तो आपका काम नही चलेगा। सत्य के आधार पर ही असत्य टिक सकता है। असत्य स्वतत्र रूप से टिक नही पायेगा। बोलने के सबध मे कहा गया है—

बोली तो अमोल है, जो कोइ बोले जान।

बोली का मूल्य नही, वह अमोल है। पर कैसे बोले—यह जानना होगा। एक वचन से कलेजा ठडा हो जाता है तो एक से जल-भुन जाता है। एक वचन भीतर से खून खौला देता है, एक निढाल कर देता है। मत्रो का प्रयोग किया जाता है पर मत्र है क्या ? वे भी वचन का ही एक रूप है। एक मत्र जीवन को सरसब्ज करता है तो एक मत्र मारक भी होता है। ध्वनि से आज अनेक रोगों की चिकित्सा भी की जा रही है परन्तु जिन विविध रूपो मे और जिस व्यापक स्तर पर ध्वनि का उपयोग हो रहा है वह सामान्य जनो के लिये ही नहीं, वैज्ञानिको एवं पर्यावरणविदो के लिये भी चिन्ता का विषय वन गया है। अव तो प्रदूषण के रूप मे यह ध्वनि सिरदर्द बन गयी है। भारतीय आयुर्वेद शोध सस्थान ने एक रिपोर्ट प्रस्तुत की है जिसमे बताया गया है कि जिस डेसीवेल के स्तर पर ध्वनि बढती जा रही है यदि उसी रूप मे बढ़ती रही तो मनुष्य का जीवन खतरे मे पड जाएगा।

47 डेसीबेल पर व्यक्ति की श्रवण शक्ति सुनने मे सहज तत्पर हो जाती है पर कल-कारखानो, फैक्ट्रियो, मशीनों, वाहनो, यत्रो, प्लेन आदि की आवाजे इस स्तर मे भीषण रूप से वृद्धि कर देती है। आचार्यदेव (श्री नानेश) जव शांताक्रुज (मुम्बई) मे विराजे हुए थे तब वहा लगभग हर 10/15 मिनट के अन्तराल से वायुयानो के गमनागमन की तीव्र ध्वनि आती थी। उस भयकर गूज मे धीरे-से बोली गई बात तो कान सुनने को तैयार ही नहीं होते थे। क्योकि उनकी श्रवण क्षमता पूरी तरह से नष्ट हो जाती थी। शोध संस्थानो का निष्कर्ष है कि यदि समय रहते इस भीषण ध्वनि-प्रदूषण पर रोक न लगाई गई तो अनेक बीमारियॉ फैलेगी क्योकि ध्वनि का सबसे पहले मन पर प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति का स्वभाव चिडचिडा हो जाता है। उसे चैन नहीं पड़ती। वेचैनी वढने से वह उच्च रक्तचाप का शिकार हो जाता है। यह रक्तचाप आगे वढकर हृदय पर आघात करता है। इस स्थिति पर शोध कर निष्कर्ष निकाला गया है कि यदि शोर बढने की यही रफ्तार रही तो आने वाली सातवीं पीढी वहरी हो जाएगी। व्यक्ति की श्रवण शक्ति वैसे ही औसतन कम होती जा रही है। धीमी आवाज वह सुन नही पाता। वात-चीत के रूप मे ध्वनि मनुष्य के जीवन को यदि खतरे मे डाल सकती है तो उसे उवार भी सकती है। महाभारत वचन के अविवेकपूर्ण प्रयोग का परिणाम वना था। द्रौपदी के शव्द 'अंधे के पुत्र अधे ही होते है'—दुर्योधन को तीर की भॉति चुभ गये थे। उसने मन में सकल्प ले लिया कि इस अपमान का वदला लेकर दिखाना है कि अधे के पुत्र अधे कैसे होते है।

दुर्योधन ने चालवश जुआ खेला। धर्मराज ने सारी सम्पत्ति दॉव पर लगा दी। यही नही, पॉच भाइयो सहित द्रौपदी को भी दॉव पर लगाने मे नहीं झिझके। अव शकुनि ने अपना रग दिखाया, पासे ऐसे पड़े कि धर्मराज हारते गये। दुर्योधन आनद मनाने लगा। द्रौपदी को चोटी से पकड़ कर घसीटते हुए राजसभा मे लाया गया। दुर्योधन ने अपनी जघा अनावृत कर दी और कहा—इस पर बैठो। द्रौपदी के तन-बदन मे आग लग गई—दुष्ट, क्या बोल रहा है ? इतने सारे बुजुर्ग उपस्थित है, बोलने की तमीज है या नही ? द्रौपदी को तो विदित नही था परन्तु दुर्योधन को साबित करना था कि ये अधे के पुत्र अधे नही, बहरे भी है। बहरे कैसे ? ये सारी बात धृतराष्ट्र आदि सुन रहे थे इसके बावजूद वे कुछ नही कर सके। उन्होने अपने मुॅह ढॅक लिये, पर प्रतिकार नही किया। भीम गदा घुमाते हुए उठे और प्रतिज्ञा की कि दुर्योधन के इस अपमानजनक व्यवहार का बदला दुर्योधन की जघा को इस गदा से तोड़कर लूॅगा। इस प्रकार वचनो की शृखला से ही वैर बढ गया था, वैर का अनुवध पड गया था जो अतत महाभारत मे परिणत हुआ। इसीलिए प्रभु कह रहे है--यतना से बोलो—सत्य बोले, प्रिय बोले। कहा जाता है कि सत्य कड़वा होता है पर याद रखिये सत्य कडुवा नही होता हमे कडुवा लगता है। मलेरिया है तो गेहू की रोटी कड़वी लगेगी। कफ प्रकृति है तो पानी मे कड़वाहट लगेगी जबकि रोटी और पानी कड़वे नही होते। कड़वापन तो हमारे भीतर होता है। इसी प्रकार सत्य भी कटु नही होता। सती राजमती के शब्द—

धीरत्थु तेऽजसोकामी जो त जीवियकारणा।।
वत इच्छसि आवेउ, सेय ते मरण भवे।। दशवै 1/6

आप कहेगे ये कठोर है, पर कठोर नही सूक्ति वचन है। शास्त्रकार राजमती के इन वाक्यो को 'सुभाषिय' कहते है। अर्थात् सुभाषित वचन। भावो मे छल, प्रपच नही है। सत्य के पीछे यदि छल, प्रपच है तो वह सत्य नही रहेगा। क्रोध के नशे मे क्या बोला जाता है इसका भान नही रहता। यह शराब का नशा नही है। हमारे भीतर की रासायनिक प्रक्रिया है। स्थानाग सूत्र मे आत्मा को 'अनात्मा' कहा गया है जब वह कषायो के अर्थात् पौद्गलिक प्रभाव मे होती है। एक व्यक्ति यक्षाधिष्ठित हो जाता है तो यक्ष के प्रभाव से भाषा उसी के अनुरूप हो जाती है। उत्तराध्ययन सूत्र मे हरिकेशी मुनि का ब्राह्मण के प्रति कथन इसका प्रमाण है। मुनि ने कहा—यह मै नही कह रहा हूॅ मेरी वैयावच्च करने वाला तिदुक वृक्षवासी यक्ष कह रहा है। मुनि मौन थे, वह बोल

रहा था। कषायो के आवेग मे आत्मा सुप्त हो जाती है। जो कटु अथवा कर्कश वचन निकलते है वे सत्य नही होते और यतना-युक्त भी नही होते। भाषा समिति मे समित वचन ही यतनायुक्त होते है। साधु को कर्कश, कठोर आदि आठ प्रकार के वचन नही बोलना चाहिये। आचाराग सूत्र मे कहा गया है—जगल मे मुनि विहार करते हुए यह न कहे कि यह विशाल वृक्ष है—इसकी लकडी से पाटे, दरवाजे, तख्ते, बन सकते है। आप पूछेगे—वनस्पति के कान होते है क्या ? हम ऊपर से नही देख रहे है पर उसमे भी पॉच भावेन्द्रियॉ है और वैज्ञानिको ने सिद्ध भी किया है कि उनमे इन्द्रियॉ है। अपनी प्रशसा से वनस्पति प्रफुल्लित होती है, निन्दा से सिकुड़ जाती है। प्रयोग किया गया। छ व्यक्तियो को कागज का टुकडा देकर कमरे मे भेजा गया। सब एक चिट खोलते और कमरे से बाहर निकल जाते। एक व्यक्ति की चिट पर लिखा था—'इन पौधो मे से एक को तोडो-मरोड़ो, नष्ट-भ्रष्ट कर दो।' उसने वैसा ही किया। बाद मे वैज्ञानिक बेक्सटन स्वय उस कमरे मे गये तथा सुरक्षित पौधे के एक यत्र लगा दिया। फिर एक-एक व्यक्ति को कमरे मे बुलाया गया। जैसे ही एक पौधे को नष्ट-भ्रष्ट करने वाला व्यक्ति कमरे मे घुसा, दूसरे पौधे मे कम्पन होने लगा जो यत्र पर उभरने लगा। इस प्रयोग से उस वैज्ञानिक ने ज्ञात कर लिया कि छ व्यक्तियो मे से किसके पास वह चिट पहुॅची थी जिस पर पौधे को नष्ट-भ्रष्ट करने का निर्देश था। इस प्रकार यह प्रमाणित होता है कि वनस्पतियो मे सवेदनशीलता होती है। प्रभु भी कह रहे है—वचन सम्प्रेषण से भावेन्द्रिय के कारण उसमे सक्लेश होता है। सावद्य सपापकारी भाषा वर्जित है। साधु के लिये कहा गया है—साधु सोहता अमृत वाणी।

और जब भाषा विवेक जुड़ जाता है तब वचन मे गहराई आ जाती है। ऐसा प्रवचन पूरी मानवता और साधुता का रस बन जाता है। अत इस एक सूत्र को हृदय मे बैठा ले—

एक वचन श्री सतगुरु केरो, जो पैठे दिल मांय रे प्राणी।
नरक निगोद मॉ ते नहीं जावे, एम कहे जिनराय रे प्राणी।।

हमारे सामने प्रश्न आ सकता है कि 11 अग कैसे पढ़े, पढ़ेगा कौन ? व्यासजी ने भी 18 पुराण रचे और राजा के सामने रख दिये। राजा ने भी कहा—पढेगा कौन ? सक्षिप्त करो। उन्होने 8 पुराण कर दिये। आदेश हुआ और सक्षिप्त करो। तो एक पुराण रख दिया। फिर एक अध्याय और अत मे एक श्लोक मे सार भर दिया—

अप्टादश पुराणेपु, व्यासस्य वचन द्वय
परोपकार पुण्याय पापाय परपीडनम्।

पाप-पुण्य को समझने का सरलतम, सक्षिप्ततम मार्ग बता दिया। फिर कोई समस्या नही, उलझन नही। अत यह समझ ले कि जो भाषा विवेकयुक्त है, सीधी-सरल है—जिस भाषा के पीछे प्रपच नही, बुरे भाव नहीं, वही भाषा उपयुक्त है। इस्लाम मे भी कहा गया है—भाषा को बाहर निकालना है तो उसे 3 दरवाजो से गुजारो। तीन पहरेदार बयान ले, तभी वह बाहर आये। पहला दरबान पूछे—'क्या यह सत्य है ?' यदि हॉ, तो उसे आगे बढ़ाये। दूसरा दरबान पूछे—'क्या बोलना आवश्यक है ?' और तीसरा दरबान पूछे—'क्या बोली जाने वाली भाषा नेक है ?' सत्य, आवश्यक और नेक भाषा को ही बाहर जाने की इजाजत दे। इस रूपक को भी समझ ले। कठ, तालु और होठ—ये तीन दरबान है जिन से पूछकर ही सभाषण के भवन मे प्रवेश करे। इस आवश्यकता की पूर्ति के बाद यदि आप सभाषण-भवन मे प्रविष्ट होगे तो आपका समुचित सत्कार किया जायेगा परन्तु यदि आप ने पहरेदारो के आदेश की अवहेलना की तो आप सभाषणकर्ताओ के बीच उपेक्षा उपहास और अपमान का पात्र ही बनेगे। आप व्यवहार मे शिष्टाचार और भाषा मे माधुर्य का समावेश करेगे तो आप की उपस्थिति अमृत-रस का वर्षण करेगी और वह प्रत्येक के जीवन को प्रफुल्लित करेगी। इस स्वरूप को समझकर हम अपनी साधना को आगे बढाये तो जीवन भी मगलमय होगा। ❖

भाद्रपद कृष्णा 7
4-9-96

ज्ञान ज्योति को प्रज्वलित करने की आवश्यकता

श्री सुपार्श्वजिन वंदीए, सुख सम्पत्ति नो हेतु, ललना।
शात सुधारस जलनिधि, भवसागर मा सेतु। ललना।।

मनुष्य का मन सुख की कामना मे प्रवर्धमान रहता है। सुख की उसकी लालसा एव अभिलाषा सदा बनी रहती है लेकिन सुख कहॉ है ? सुख किसमे उपलब्ध हो सकता है ? आज का मानव सम्पत्ति को सुख का हेतु समझता है और उसकी चाह करते हुए उसे पाने के लिए न जाने कहॉ-कहॉ भटकता रहता है। कवि ने प्रार्थना मे सकेत दिया है—

श्री सुपार्श्व जिन वंदिए सुख सम्पत्ति नो हेतु ललना।।

यहॉ जिस सुख-सम्पत्ति का सकेत है वह इधर-इधर कही नही मिलेगी। इधर-उधर घूमते रहे तो ठोकरे तो खानी ही पड़ेगी, सही ठिकाना भी नही मिल पायेगा। ठिकाना सदा विस्मृत रहेगा। हम जानते है कि ठिकाना भूलने के कारण ही इधर-उधर की ठोकरे खानी पड़ती है। पर यह ठिकाना है कौन-सा ? परमात्मा ने, तीर्थकरो ने कहा है, ठिकाना है—धर्मरूप द्वीप। द्वीप के चारो ओर जल है, जलाकार समुद्र है। वैसे हम कहते है जम्बू द्वीप भी है, यह जम्बूद्वीप भी समुद्रो के बीच मे है इसलिए इसे द्वीप कहते है। वैसे प्रभु ने धर्म को द्वीप कहा है

जरामरणवेगेणं, वुज्झमाणाण पाणिण।
धम्मो दीवो पइट्ठा य, गई सरणमुत्तमं।। उत्तरा 23/68

जरा और मरण के प्रवाह मे डूबते प्राणियो के लिए धर्म ही द्वीप है, आधार है, गति है और उत्तम शरण है। यदि इस कथन का आश्रय ही ग्रहण कर ले तो हम पानी मे डूबेगे नही, सुरक्षित रह सकेगे। आप प्रवुद्ध है और आपने अनेक वार सुना होगा कि यह जो भवोदधि (ससार सागर) है इसमे विषय-वासना का कीचड एव दूषित जल भरा हुआ है। एक वार व्यक्ति यदि उसमे फॅस जाता है

तो जब वह एक पैर उठाता है तो दूसरा पैर धँसता चला जाता है। निश्चित मृत्यु के ऐसे समय मे धर्मरूप द्वीप हमारी रक्षा कर सकता है, हमे उबार सकता है। कवि ने कहा है—उस धर्म के श्रुत और चारित्र रूप चरण युगल मे वदन कर। वदन से तात्पर्य उस नौका से है जो द्वीप तक पहुँचा सकती है। उस नौका को ग्रहण कर। चरण के प्रति यदि आकर्षण बढा तो धर्म द्वीप मे प्रवेश होगा।

श्रीसुपार्श्व जिन वदिए प्रार्थना मे एक बात विचित्र दिखाई दे रही है—'सुख सम्पत्ति नो हेतु ।' क्या तीर्थकर की वदना सुख-सम्पत्ति देने वाली है? आगमो मे बतलाया गया है कि तीर्थकर की सेवा, भक्ति, उपासना से आत्मा निर्मल होती है, कर्म दूर होते है। फिर यहाँ उसे सुख-सम्पत्ति का हेतु कैसे निरूपित किया गया है? व्यक्ति ने जो सुख मान लिया है, यथार्थ मे वह सुख नही है। यहाँ जिस सुख का सदर्भ है उसके पीछे दु ख की कालिख नही है। किसान वर्षा की प्रतीक्षा करता है, वर्षा होने पर खुश होता है और मनुष्य की खुशहाली मनाता है। पर्याप्त वर्षा न हो तो पानी की कमी से चारो ओर त्राहि-त्राहि मच जाती है। परन्तु यदि यही वर्षा भी लगातार 8-10 दिन चलती रहे तो लोग ऊब जाते है और चाहते है कि अब थोड़ा उघाड़ हो, कडक धूप निकले तो वस्त्र, अन्न, भोज्य पदार्थ, जो सीले-सीले लग रहे है उनकी सीलन दूर हो। वर्षा नही हुई तो वर्षा की चाह थी, वर्षा हो गई तो अब उघाड़ होने की भावना बनने लगी। वस्तुत ससार मे जिसे सुख माना गया है, वह एकान्त सुख नही है। एकान्त सुख तो 'एगत सोक्ख समुवेई मोक्ख' मोक्ष मे ही मिल सकता है क्योकि जिन अवस्थाओ मे सुख माना जाता है उनके हटते ही यदि दु ख होने लगे तो माना जायेगा कि वे अवस्थाएँ सुख की नही थी। और सपत्ति? हमारी दृष्टि बाह्य, भौतिक सम्पत्ति, पुद्गल और पैसे पर ही टिकती है। अमरकोष मे 'भग्' धातु से तात्पर्य है—ऐश्वर्य, सम्पन्न, उसे भगवान कहा गया है। ऐश्वर्य 'श्री' का ही द्योतन करता है। 'श्री' का अर्थ लक्ष्मी है। तीर्थकरो के साथ अथवा धर्म पुरुषो के साथ हम श्री का प्रयोग करते है—श्री हुक्मीचदजी म सा । बीच मे यह 'श्री' क्यो आ गई? क्या वे लक्ष्मीवान थे? उनके पास सम्पत्ति थी? नही, मात्र बाह्य पौद्गलिक लक्ष्मी ही लक्ष्मी नही है। ज्ञान, दर्शन, चरित्र आदि की सम्पन्नता भी भाव-लक्ष्मी है। इसलिये जो उस भाव-लक्ष्मी-रूप ऐश्वर्य से सम्पन्न है उनके साथ भी श्री शब्द का प्रयोग किया जाता है। ऐश्वर्य की दृष्टि से चिन्तन करे तो अरिहन्त से बढकर कोई ऐश्वर्य-सम्पन्न नही है क्योकि वे अन्तराय कर्म क्षय कर चुके होते है इसलिए उनकी अनन्त शक्ति व अनन्त

ऐश्वर्य-सम्पन्नता मे न्यूनता नही आ सकती। यदि भाव-लक्ष्मी प्राप्त कर ली जाती है तो बाहर की लक्ष्मी अपने आप दौडी आती है। जब तीर्थंकर राज्य-लक्ष्मी का त्याग करते है तो अनेक राज्य उनके चरणो मे लोटने लगते है। क्यो ? इसलिए कि उन्होने त्याग किया होता है। दिव्यलोक के देव अपने आनन्द मे निमग्न साता का अनुभव करते है। वे मृत्युलोक मे आना नही चाहते, उसकी गध से भी दूर रहना चाहते है। पर जब इस धरा पर तीर्थंकर अवतरित होते है, विचरण करते है तब वे देव भी यहाँ आने को लालायित होने लगते है। क्या मिलता है उन्हे उन चरणो मे ? जो मिलता है वह देवलोक मे उपलब्ध नही होता इसलिए वे उन चरणो मे पहुँचते है। सतो के लिए कहा जाता है कि धन्य है वे ग्राम, नगर, क्षेत्र जहाँ भावितात्मा अणगार विचरण करते है एव विराजते है। उन्हे धन्य क्यो कहा है ? इसलिए कि वे आभ्यतर लक्ष्मी से सयुक्त हो जाते है।

आज जन्माष्टमी है। इस दिवस का सबध भी इसी प्रकार की सम्पन्नता की महिमा से जुडता है। इस सम्पन्नता के केन्द्र अथवा आधार है कृष्ण। तनिक चिन्तन करे कि कृष्ण कौन है ? मात्र देवकी के लाल नही है। उनकी महिमा भिन्न कारण से है—आतक, अत्याचार, शोषण, पीड़न, दासता आदि के विरुद्ध सफल सघर्ष करने के कारण। वह भी आज जैसा समय था। आज भी आतकवाद के नाम से व्यक्ति थर्रा जाता है। हम ने गुलामी को सहन किया है। हम जानते है कि गुलामी क्या होती है ? शासको के कैसे-कैसे जुल्म झेलने होते है और व्यक्ति प्रतिकार नही कर सकता। क्योकि प्रतिवाद करने पर कोड़े लगाये जा सकते है, यहा तक कि खुले फॉसी पर लटकाया भी जा सकता है। ऐसी ही भयकर स्थिति थी जब कृष्ण का जन्म हुआ था। जनता त्राहिमाम् त्राहिमाम् पुकार रही थी—कोई हमारा रक्षण करे। आज भी स्थिति वदली नहीं है रक्षक भी शोषण, उत्पीड़न मे आनद मान रहे है। नारकीय दृश्य आगमो मे हमे पढ़ने को मिलते है जिनसे ज्ञात होता है कि परमाधामी देव नारकियो को कैसे-कैसे कष्ट देते है ? उत्तराध्ययन सूत्र के 19वे अध्ययन में भी इस सबध में विस्तृत कथन हुआ है। मृगापुत्र कहता है—मैने अनेक वार वहाँ दारुण दु ख अनुभूत किये है। कितनी वेदना। खौलते तेल के कड़ाह मे वे नेरिये उछल-कूद करते है और परमाधामी देव उसमे आनद मानते है। कस भी इसी प्रकार के दारुण दु ख प्रजा को दे रहा था और हुकार लगा रहा था—मै ईश्वर का अश हूँ, मेरे माध्यम से ईश्वर अवतरित हुआ है। मै जो कहता हूँ वही नीति है, वही धर्म

है। जरासध, दुर्योधन आदि भी जनता को विविध प्रकार से उत्पीडित कर रहे थे। कृष्ण तो पहुँचे थे दुर्योधन के पास सधि का प्रस्ताव लेकर और पाण्डवो के लिए पॉच गॉव मागे थे। पर दुर्योधन पॉच गॉव तो क्या, सुई की नोक के बराबर भूमि देने को भी तैयार नही था। मै वे सारे दृश्य उपस्थित नही कर रहा हूॅ सिर्फ उनका सकेत दे रहा हूॅ। कथा हमने सुनी है पर कथा सुनने से गर्ज नही सरेगी, कथा के हार्द को समझना होगा। अन्याय, अनीति और अत्याचार के रूपो को समझना होगा तभी हमे पता चलेगा कि कृष्ण का जन्म कैसी स्थिति मे हुआ था ? उसका भी कारण था। कस ने अपने पिता उग्रसेन को कैद कर लिया था और स्वय राजसिहासन पर आसीन हो गया था। इस बुद्धि-कौशल पर मुग्ध होकर जरासध ने अपनी पुत्री जीवयशा का कस के साथ विवाह कर दिया था। हम जानते है कि जो दुरात्मा होते है वे ऐसे ही सहयोगियो के साथ गठबधन करके दुनिया मे त्रास फैलाते है। कस, जरासध, दुर्योधन, शिशुपाल, रुक्मकुमार आदि ऐसे व्यक्तियो से पृथ्वी भारी हो रही थी और चाह रही थी कि उसका भार हल्का हो। कस के इस भीषण अत्याचार को देखकर छोटे भ्राता ने विचार किया कि ऐसे अन्यायी के साथ रहकर उसकी अनीति मे सहभागी बनना पड़ेगा और मै अपना कल्याण नही कर पाऊँगा। वे साधु बन गये। परिभ्रमण करते हुए एकदा मथुरा मे आये और राजमहलो की ओर भिक्षार्थ चले गये। महलो मे जीवयशा ने उपहास किया—'देवरजी। आप तो साधु बनकर निर्लज्ज हो गए पर हमे लज्जा आती है। राजघराने मे जन्म लेकर दर-दर भिक्षा के लिए घूम रहे है। एक भाई तो सम्राट है और दूसरे की यह दशा कि वह टुकड़ो के लिए घर-घर फिर रहा है। वेष छोडिए। आपके लिए अलग भवन की व्यवस्था कर दी जायेगी। देवरानी भी मै ला दूॅगी। नौकर-चाकर सेवा मे घूमेगे।' एक कथा यह भी है कि तपस्वी मुनि बन कर वे भिक्षार्थ गये तो गाय से टक्कर हो गई और वे गिर पड़े। जीवयशा ने यह देखा तो कहा—एक समय था जब आप अपनी भुजाओ का बल दिखाने मे समर्थ थे। आज साधु बन गये तो कायर हो गये। गाय से टकरा कर भूमि पर गिर पड़े। आओ, राजमहलो मे सुखोपभोग करो। यह सुन कर मुनि अतिमुक्तककुमार को आवेश आ गया—नही आना चाहिए था। साधु को क्रोध, मान, माया और लोभ मे भी नही आना चाहिए। उसे विवेक बरतना चाहिए, पर आवेश आ गया। कभी-कभी भवितव्यता का योग होता है, टल नही पाता। प्रभु महावीर ने अपने शिष्यो से कहा—'गोशालक आयेगा और मेरे विषय मे अनर्गल प्रलाप करेगा। तुम सभी सावधान रहना। कोई भी प्रतिकार या वाद-विवाद मत करना।' सभी ने मौन धारण कर

लिया। गोशालक आया और प्रभु पर गालियो की बौछार करने लगा, पर मुनि चुप थे। कहा भी है—

देता गाली एक है, पलट्यां होत अनेक।
जो गाली पलटे नहीं तो रहे एक की एक।।

गोशालक का जोश ठडा पडने लगा। पर दो मुनि सुनक्षत्र और सर्वानुभूति चुप नही रह सके। उन्होने गोशालक का प्रतिकार किया। गोशालक तो यही चाहता था। तेजोलेश्या भभकी और गोशालक ने मुनि द्वय को भस्मीभूत कर दिया। हम सुनते आये है कि तीर्थकर के समवसरण मे पच्चीस योजन तक दुर्घटना नही होती, ईति-भीति का प्रकोप नही होता पर भगवान के सामने ही यह घटित हो गया। कोई कहे अनुकम्पा मे धर्म होता तो प्रभु ने रक्षा क्यो नही की ? अनुकम्पा की बात जाने दे, विहार कराने मे तो दोष नही था। भगवान ने उन्हे विहार क्यो नही करा दिया ? भगवान जानते थे, इनकी ऐसे ही आराधना होने वाली है। भवितव्यता टल नही पाती। अघटित घट जाता है। ऐसा ही मुनि अतिमुक्तक के साथ भी हुआ। उन्हे क्रोध नही आना चाहिए था, पर आ गया। उन्होने कहा—हे जीवयशे। आज तू बड़ी-बड़ी बाते बना रही है, जिस देवकी के तू बाल सवार रही है उसी देवकी का लाल तुझे वैधव्य दु ख देगा, और तेरे पति और पिता के वश का नाश करेगा। तू सोच क्या रही है ? जीवयशा घबरा गई। ये क्या सुन रही हूँ ? वह उदासी मे घिर गई। कस आये। उन्होने उसे उदास देखा तो पूछा—'क्या बात है प्रिये, उदास क्यो हो ?' जीवयशा ने कहा—'मेरी व्यथा भीतर ही रहने दो।' कस ने कहा—'अरे भीतर रखोगी तो दूर कैसे होगी ?' जीवयशा ने उत्तर दिया—'मै ही जान रही हूँ पर कहते हृदय मुँह को आता है, कहा नही जाता।' कस ने सिर पर हाथ फेरते हुए कहा—'घबराओ मत, अपनी व्यथा कहो।' जीवयशा ने अपने मन की पीड़ा व्यक्त कर दी—'आपके भाई, मेरे देवर आज भिक्षार्थ आये, मैने उनका उपहास कर दिया।' तदुपरान्त उसने बता दिया कि उन्होने क्या कहा था। कस ठहाका मार कर हसे—'अरे, इन साधु-सन्यासियो की बात जाने दो। ये दुनिया को ठगते रहते है। यदि कहा भी है तो मै देवकी को ही समाप्त कर देता हूँ। यह अपना सौभाग्य है कि आगे होने वाली घटना की भनक मिल गई। देवकी का काम ही तमाम कर दूँगा बस, ना रहेगा बॉस न बजेगी बॉसुरी।'

कस राज्यसभा मे पहुँचा उस समय ज्योतिषी आया हुआ था। यद्यपि कंस को ज्योतिष पर विश्वास नहीं था पर फिर भी उसने सोचा, पूछ तो लू।

ज्योतिषी ने जब अपने ज्ञान का प्रदर्शन किया तो कस ने प्रश्न किया—'बताओ मेरी मृत्यु कहाँ, किसके हाथ होगी?' ज्योतिषी ने अपना गणित लगाया और उत्तर दिया—'आपके ही घर मे जन्म लेने वाला दिव्य पुरुष आपका घातक है। वह गोकुल मे पलेगा। उसे मारने के प्रयास विफल होगे और उसकी शक्ति को ही बढायेगे।' कस ने कहा—'मुझे कोई नही मार सकता। आज ही तुम्हे जेल मे डालता हूँ और जो मुझे मारेगा, वही तुम्हे मुक्त करेगा।' पौराणिक कथा मे कहा गया है—यह सवाद कस और नारद ऋषि के बीच हुआ था। कस क्रोधित हुए तो नारद ने कहा—'क्रोध क्यो करते हो, क्रोध से सफलता नही मिलेगी। मै तो चेताने आया हूँ कि अनैतिकता का त्याग कर दो, पाप का घडा फूटने वाला है।' कस ने कहा—'जाइये, जाइये। अपनी भविष्यवाणी अपने ही पास रखिये।' परन्तु कस डर गया था अत देवकी को समाप्त करने की योजना बनाने लगा। उसने मत्रिमडल के सदस्यो से परामर्श भी किया। मत्रियो एव मित्रो ने परामर्श दिया कि इस प्रकार अबला पर हाथ उठाने से जग मे आपकी अपकीर्ति होगी और लोग कहेगे कि बच्चे के भय से बहन को मार दिया। बच्चे की क्या ताकत? परन्तु कस बच्चे की शक्ति से डर गया था। कस की समझ मे बात आ गई। नीति और धर्म की बात जमती या नही जमती पर अपयश के भय से बात जम गई। कस ने विचार किया और देवकी के विवाह के लिए वसुदेव का चयन किया। वसुदेव से उसकी घनिष्ठता थी। एक बार सेवा प्रसग से कस ने वसुदेव को खुश कर दिया। वसुदेव ने कहा—क्या चाहते हो? कस ने प्रस्ताव रखा—मेरी इच्छा है कि मेरी बहन का प्रसव मेरे घर मथुरा मे हो। सतान अपने ननिहाल मे ही जन्मे। वसुदेव ने यह सोच कर कि इनका बहिन के प्रति अनुराग भाव है, स्वीकृति दे दी। नेक व्यक्ति नेक ही सोचते है। वे क्या जाने कि किसके भीतर क्या है? देवकी के छ पुत्रो के जन्म विवरण आप अतगड़ दशाग सूत्र के माध्यम से सुनते है कि कैसे वे सुलसा के घर पहुँच गये। कस ने सोचा—मै ज्योतिषी और देवकी से भयभीत था पर ये मृत शिशु मेरा क्या बिगाड़ सकते थे? उसे नही मालूम था कि 'मारने वाले से बचाने वाला बड़ा होता है।' हरिणेगमेषी देव देवकी के बालको को सुलसा के पास पहुँचा देता था। जब सातवी सतान गर्भ मे आई तब देवकी ने एक शुभ स्वप्न देखा और वसुदेव से कहने लगी—स्वामी इस बार जो सतान गर्भ मे आई है वह दिव्य सतान है। मुझे शुभ स्वप्न आया है। इस महापुरुष की रक्षा करनी है। वसुदेव बोले—देवकी तुम पतिव्रता सन्नारी हो। मेरे वचन निभाने के लिए छ पुत्रो का बलिदान कर दिया, अपने मातृत्व का बलिदान किया। कोई भी माता अपनी

कोख सूनी नही देखना चाहती पर तुमने बच्चो का मुख भी नही देखा. कस के हवाले कर दिया सिर्फ मेरे वचनो की खातिर. फिर मै सत्य कैसे त्याग सकता हूँ ? कस ने कहा है, प्रसव मथुरा मे होगा। यद्यपि मै चाहूँ तो कस की उपेक्षा कर सकता हूँ पर मै वचनबद्ध हूँ। अब जो स्थिति बने. वह स्वीकार करनी होगी। कस ने कहा—मुनि ने भी और ज्योतिषी ने भी कहा था—सातवी सतान घातक होगी अत उसने चारो ओर पहरा तैनात कर दिया। देवकी-वसुदेव को हथकडी-बेडी पहना दी गई। नगर द्वार बद कर दिए गये किन्तु अष्टमी की रात्रि को आकाश मे एक नक्षत्र चमका. बिजली चमकने लगी. बादलो की गडगडाहट तेज हुई. मानो जन्म से पूर्व इन्द्र नगाड़े बजाकर स्वागत कर रहा हो। प्रकृति भी चचल बन थिरकने लगी। आकाश के नक्षत्रो की तरह शुभ घडी. पल मे पृथ्वी पर भी एक नक्षत्र उदित हुआ। देवकी ने कहा—'बालक का जन्म हो गया है। अत उसकी सुरक्षा का अब उपाय करो।' वसुदेव ने कहा—'देवकी, चारो ओर घेराबदी है. वह (कस) आयेगा और कहेगा—संतान दो तब क्या दोगी उसे ?' देवकी ने उत्तर दिया—'स्वामी, मैने यशोदा को सखी बनाया है, वह भी अभी प्रसव करेगी। उसकी सतान ले आना और इसे वहाँ पहुँचा दो।' और उसी समय घटित घटना घटी। उनकी हथकड़िया-बेडियां स्वत ही टूट पड़ीं और द्वार खुल गये। जैन कथाओ के अनुसार शिशु को हाथो मे लेने का और पौराणिक आख्यानो के अनुसार सुपड़े मे लेने का प्रसग है। जब कृष्ण का जन्म हुआ था तब पहरेदार भी सो गए थे। यह घटना बतलाती है कि क्या घटित हो रहा था ? कौन है देवकी और कौन है वसुदेव ? विचार करे, यह एक रूपक भी है।

हमारी आत्मा देवकी है, वसुदेव सत्य स्वरूप है। 'त सच्च खु भगव' सत्य ही भगवान है। सत्य के लगाव से जिसने सत्य की आराधना की उसके भीतर कृष्ण-रूप-ज्ञान का जन्म हुआ और जब ज्ञान का आलोक फैला तब कस जैसे अहकारी. जरासध जैसे रूप-मोहग्रस्त राजा और काम-क्रोध-ईर्ष्या-मद-रूपी पहरेदार—सभी के पैर उखड़ने लगे. वे निष्क्रिय हो गये। ज्ञान का आलोक जग जाये तो फिर ये प्रहरी सो जाते है, खर्राटे भरने लगते है। कृष्ण रूप ज्ञान को सत्य रूप वसुदेव ले जा रहे है। मार्ग मे द्वार पर नजर गई। बड़ा ताला लटक रहा था, ऊपरी भाग में उग्रसेन बदी थे।

उग्रसेन कहे कोई, तुझ बधन काटे सोइ
ये वचन सुन उग्रसेन कहे, वेगा पधारो भाई।

ज्ञान के अगूठे से स्पर्श हुआ, ज्ञान की शक्ति से ताला खुल गया। आत्म शक्ति प्रबल हो तो बेडी-ताले क्या चीज है ? मानतुगाचार्य भगवान आदिनाथ की भक्ति मे रम गये तो ताले टूट गये, वे कक्ष से बाहर आ गये। हम कहते है चमत्कार को नमस्कार है पर हमे उस शक्ति को जाग्रत करना नही आया है जो चमत्कार को जन्म देती है। इसीलिये तो काम-क्रोध-ईर्ष्या रूपी पहरेदारो से घिर कर देवकी (आत्मा) सिकुड़ गई है, उनके शिकजे मे कैद है। यदि वह जाग्रत हो जाये तो फिर इनकी क्या बिसात जो हमारी वृत्तियो को प्रभावित कर सके ? पूज्य गुरुदेव (नानेश) जन्माष्टमी मे एक कविता का उच्चारण करते है। यद्यपि कविता पुरानी है परन्तु है अर्थपूर्ण—

हरि के गुण गाऊँ, हरिलीला कहिए सुनाऊँ,
ओ हरिजी! हरि के गुण गाऊँ।

इस लबी कविता मे आगे कहा गया है—

हरि भोगी मै बड भोगी, हरि योगी मै बड योगी जी।

उन्हे भोगी भी और योगी भी माना गया है, क्यो ? हमे देखना है कि वे कैसे भोगी है और कैसे योगी है ? वसुदेव आगे पहुँचे। यमुना का पानी उछाले मार रहा था। हमारे भीतर भी विषय-वासना का पानी उछाले भर रहा है। व्यक्ति सोच नही पाता। पर यह पानी तब तक उछलता है जब तक ज्ञान का स्पर्श नही होता। ज्योही कृष्ण-रूप ज्ञान ने स्पर्श किया, वह उछाल बद हो गई। कवि कहता है—

पाप पराल को पुज बन्यो अति, मानो मेरु आकारो।
सो तुम नाम हुताशन सेती सहजे प्रजलत सारो।।

ज्योही प्रभु के नाम की चिनगारी लगी, वह पाप पराल, जो विस्तृत रूप धारण किये हुए था, पल भर मे ही भस्म हो गया। यमुना की अथाह जल राशि ज्ञान के स्पर्श से छिछली हो गई। यमुना ने मार्ग दे दिया। वसुदेव यशोदा के पास पहुँचे। कृष्ण को वहाँ छोड़ दिया और यशोदा की कन्या लेकर आने लगे। इस प्रसग पर कही धीरे-धीरे मधुर स्वर लहरी गूज रही थी—

आओ आओ नी सखी री धीमी-धीमी गावाँ,
कि जनम्यो-जनम्यो रे, गोकुल में कान्हो वशी वालो।।

यशोदा कहती है—जोर से गावे तो कस सुन लेगा। वह काल शत्रु है पर बालक के जन्मोत्सव पर, वे हर्षोल्लास रोक नही पा रही है अत धीमे-धीमे

स्वर मे गा रही है। कृष्ण बडे हो गये। उनकी सीधी-सादी वेश-भूषा थी। कवि बिहारीलाल ने उनका रूप चित्रित किया है—

मोर मुकुट, कटि काछनी, गल-गुजन की माल।
वे मेरे उर मे वसो, सदा विहारी लाल।।

माथे पर मोर के पखो का मुकुट है, गले मे चिरमियो की माला है, लगोटी पहने है, ऐसे मुरारी मेरे हृदय मे बस रहे है।

बात चल रही थी—कृष्ण योगी भी और भोगी भी, कैसे? व्यक्ति कथा मे सुन लेता है और अपने चिन्तन के अनुरूप अर्थ ग्रहण कर लेता है। एक बार महाभारत का वाचन हो रहा था। सुनते-सुनते एक पटेल के नेत्र अश्रुपूरित हो गये। ब्राह्मण देवता ने पूछा—'भाई ऑखो मे ऑसू कैसे?' उत्तर मिला—'क्या बताऊँ, आपने सुनाने मे देर कर दी। मै यदि महाभारत पहले सुन लेता तो बरबाद नही होता, आबाद हो जाता। आज तो धर्म के ठेकेदार कहते है कि औरत को दॉव पर नही लगाना चाहिये। मै सब-कुछ हार गया। यदि मै पहले सुन लेता कि धर्मराज ने द्रौपदी को दॉव पर लगाया था तो मैने, जिसने पूरी सम्पत्ति दॉव पर लगा दी थी, पत्नी को भी दॉव पर लगाता और शायद खोया हुआ पा लेता।' पटेल की बात पूरी हुई तो पटेल की पत्नी ने कहा—'आपने सुनाने मे देर कर दी नही तो मै निहाल हो जाती। आज तक मै सुनती आई हू कि एक पुरुष अनेक पत्नियॉ रखता है पर द्रौपदी ने तो पॉच पतियो का वरण किया था। अब तो मै बूढ़ी हो गई हूँ, यदि पहले वह कथा सुन लेती तो मै भी पॉच पतियो का वरण करती।' अव सोचिये, महाभारत मे क्या अर्थ निकाला। सुनने वाला अपना इच्छित अर्थ ग्रहण कर लेता है। आज व्यक्ति कहते है कि कृष्ण गोपियो के साथ रहे और भ्रष्ट नही हुए, हम भी रहे तो क्या एतराज है? कैसी-कैसी कल्पनाऍ की जाती है? पर कृष्ण की जो लीला थी, उसे समझिये। पुराण उठाकर देखिये, वे वताते है कि गोपियॉ शुद्ध भक्ति से नृत्य करती थी। एक बार गोपियो के मन मे विषय-वासना जागी तो उन्होंने देखा कि कृष्ण तो अदृश्य हो गए थे। यदि वे भोगी होते तो विषय-वासना भड़कने पर लुप्त नही होते। कृष्ण योगी थे, सारी वहिनो के वीच उनके प्रेम व भक्ति के कारण रहते थे। योगी और भोगी की दोनो अवस्थाए साथ-साथ नही रह सकतीं, एक म्यान मे दो तलवारे नही रह सकतीं। जहॉ भक्ति है वहॉ विषय-वासना नही टिक सकती। जहॉ हम परमात्मा के प्रति समर्पित होते है वहां क्रोध, मान, मत्सर

ईर्ष्या नही रह सकते। काम, क्रोध शमित नही तो परमात्मा के प्रति वदन/समर्पण विधिवत् नही हो सकेगा।

एक वात और है, कृष्ण के हाथो मे वशी रहती थी। वे जब चाहते तब मुँह से लगा लेते और मधुर राग से लोगो को आकर्षित करने लगते। बाल गोपाल 'कृष्ण भैया', कृष्ण भैया' कहते हुए आनदित होते। पर गोपियो को वशी से चिढ थी। वह बशी उनकी ईर्ष्या का कारण बन गई और उन्होने कहा—ऐ बासुरी तू निरी ठोठ, लकडी की बनी हुई है पर कृष्ण के मुँह पर चढी रहती है और हम कृष्ण की भक्ति करती है पर कभी कृष्ण के मुँह पर नही चढी। उन्होने कृष्ण से भी शिकायत कर दी। कृष्ण मद-मद मुस्कराये-बासुरी उनके आगे कर दी और समाधान दिया कि बासुरी भीतर से सरल है, इसके भीतर ऑटियाँ नही है, गॉठे नही है। तुम भी अपने आप को निर्ग्रन्थ बना लो। सीधी-सादी बशी मुझे प्रिय है। जो व्यक्ति इस बशी की भॉति सरलता अपना ले, वह मेरे मुँह पर चढ सकता है। गॉठ है तो समाधान नही होगा। अपने आप को बशी जैसा खोखला, निर्बल बना लो। काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष, डाह आदि है तो कृष्ण तत्काल लुप्त हो जाएँगे। जहाँ अहकार और ममकार है वहाँ सुलझन नहीं होगी। सुलझन तभी होगी जब सब ग्रथियाँ दूर हो जायेगी। ग्रथियाँ उलझाती रहे तो सुलझने की बात कैसे बनेगी ? तर्क एक हो तो कोई बात बने पर तर्क अनेक हो जाये तो समाधान कैसे हो ? शास्त्रकार कह रहे है—'तक्का तत्थ न विज्जई।' वशी की भॉति सीधे बन जाएँ, समाधान हो जायेगा। गोपियाँ समझ गई। यदि भीतर माया, छल, प्रपच है, भीतर कुछ है और बाहर कुछ और तो जजाल फैलेगे। महात्मा बुद्ध के सामने प्रसग आया—उन्होने खुले रूमाल मे एक गॉठ लगा दी और शिष्यो से पूछा—इसमे क्या परिवर्तन हुआ है ? शिष्य कहने लगे—पहले इसमे विस्तार था अब यह सिकुड़ गया। बुद्ध ने पूछा—यदि इसके दोनो छोर पकड कर खीचे तो क्या होगा ? शिष्य ने कहा—ग्रथि घनीभूत हो जायेगी और गॉठ अधिक सख्त हो जायेगी। बुद्ध ने खोलने का उपक्रम किया। यह क्या दर्शाता है ? शिष्यो ने कहा—अब हाथो को शिथिल छोड़ना होगा। दोनो हाथ ढीले छोड दिये जाये तो गॉठ खुल सकती है। खीचने से ग्रथि नही सुलझेगी। सुलझाने के लिए दोनो हाथो को आगे आना होगा, निकट आना होगा। दूरियाँ बढ़ाने से गॉठ कसती जायेगी। बुद्ध महात्मा ने जो बात कही, प्रकारान्तर से वही बात कृष्ण से हमे मिल रही है। कृष्ण ज्ञान रूप है, जब वह आत्मा मे प्रादुर्भूत हो जायेगे तो विषय-वासना हममे टिक नही पायेगी। पूज्य

गुरुदेव (नानेश) कृष्ण को पूरे भारत का शरीर रूप कहते हुए निम्न काव्य पक्तियॉ उच्चरित किया करते है—

देह भारत भाग्य बचाओ रे, जरा सुन के अरदास।
शिशुपाल काम सरदारा, आत्म लक्ष्मी हरनारा,
प्रभु आकर सहाय कराओ रे, जरा सुनके अरदास।।

शिशुपाल काम का प्रतीक है, रुक्मकुमार क्रोध का, कस अह का, जरासध मोह का और पूतना तृष्णा रूपी भुआ है।

कृष्ण ने गोकुल के निकट मरी हुई गाये देखकर पूछा—यह कैसे हुआ? लोगो ने बताया—इस दह मे कालिया नाग है और उसकी विषैली फुफकार की वजह से दह का पानी विषाक्त हो गया है। जो भी प्राणी इसका जल पीते है उनकी यही दशा होती है। कृष्ण ने कुछ नहीं देखा, उठाई वशी और दह की गहराई मे उतर गये, वहॉ की रचना भी विचित्र थी। नागराज सोये हुए थे, नागिन चरण उपासना कर रही थी, पैर दबा रही थी। ज्योही उसने इस प्रिय मनोरम बालक को देखा तो वह कहने लगी—

कणी दिशा सूं आयो रे वाला, कांई तुम्हारो नाम छे।
कौना सखी नो नंद कहीजे, काई तुम्हारो धाम छे।।
दक्षिण सुं आयो रे नागिन, कृष्ण हमारो नाम छे।
नद यशोदा रो लाल कहिजे, गोकुल हमारो धाम छे।।

नागिन ने कहा मेरे—पति चाण्डाल है, खूॅखार है, तुम भाग जाओ। यदि जाग गये तो तुम्हारी खैर नहीं। ये लो, मै पति से छिपकर तुम्हे हिये का हार देती हूॅ, लगता है तुम मार्ग भटक गए हो पर अव हार लेकर चले जाओ। कृष्ण ने कहा—नागिन, मुझे हार नहीं चाहिए। चोरी करके देने की जरूरत नहीं। मै रिश्वत लेने वाला नहीं हूॅ। मै तो अपना कार्य करने आया हूॅ। इस कालिया नाग के विष से प्राणियो का हनन हो रहा है अत. मै तो इसे नाथने के लिए आया हूॅ। अह रूप इस नाग-नागन को परास्त करना चाहता हूॅ। मै मार्ग भूलकर नहीं आया हूॅ। अपने उद्देश्य को पूरा करूॅगा और रिश्वतखोरी नहीं करूॅगा। तत्पश्चात उन्होने नाग को जगाने के लिए उसका स्पर्श किया। फुफकार मारता हुआ कालिया नाग उठ वैठा। कृष्ण ने लीला दिखाई, नाग को चारों ओर घुमाने लगे। घूमते-घूमते मौका पाकर वशी से फन पर प्रहार किया नाग क्री

ढेर हो गया। कालकुमार नामक सेनापति के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ। उसे कोई परास्त नही कर सकता था। उसे भी कृष्ण ने महाकाल दिखा दिया। जरासध ने कई बार पूतना दासी के माध्यम से कृष्ण को हानि पहुॅचाने के प्रयास किये पर सफलता नही मिली। मनोविनोद के निमित्त कस ने मल्लयुद्ध आयोजित किया। कृष्ण जाने लगे तो माता ने कहा—बेटा, मथुरा मत जाना। कृष्ण ने कहा—मॉ, मै भी देखूॅ तो सही। उठाई मुरली और चल पडे। मैदान मे दो मल्ल खडे थे। एक चुनौती दे रहा था—कोई है तो आ जाओ अखाड़े मे। सारे चुप बैठे थे, हिम्मत नही थी। इतने मे बाल कृष्ण कूद पडा। जनता हाहाकार कर उठी। इतने बडे पहलवान से यह बालक क्या युद्ध करेगा। पहलवान ने कहा—बच्चे, अभी उमर के कच्चे हो, चले जाओ। कृष्ण ने कहा—खबरदार। बहादुर बात नही करते, कायर बाते बनाते है। वीर हो तो उतर पड़ो मैदान मे। दो झपाटो मे तो उस बालक ने पहलवान को पछाड़ दिया। अब कस को विश्वास होने लगा कि मल्लयुद्ध मे पहलवान को मारने वाला ही मेरा शत्रु है। यह भविष्यवाणी भी हो चुकी है। आज शत्रु मिल गया है, उसे जीवित नही छोड़ना चाहिये। बस म्यान से तलवार निकाली और आ गये सामने। कृष्ण के पास शस्त्र था नही, निकाली बासुरी, उसी से प्रहार करते हुए कस की चोटी पकड़ी और माथा घुमा दिया, हाथ भी घूम गया, तलवार पीछे चली गई। कृष्ण ने मुरली की मार से कस को वही ढेर कर दिया।

हम विश्वास विकसित करे कि हमारे भीतर भी कृष्ण है जो देवकी रूप आत्मा से उत्पन्न होगा। और जब ज्ञान (कृष्ण) का जन्म हो जायेगा तब कस रूपी हिसक टिक नही पायेगा। चोट पडते ही कस भाग गया। वशी के सारल्य के सामने अह (कस) के शस्त्र, तलवार आदि टिक नही पाये, सभी निरर्थक हो गये। जीवयशा (दर्शन मोहनीय) रोने लगी। मेरा अह रूप पालक चला गया, अब किसके सहारे रहूॅगी? वह भागती हुई मोह रूप पिता जरासध की शरण मे गई। उठो मोहराज। जागो। नही तो यह बढती हुई आग (ज्ञान) तुम्हारे घर को भी नष्ट कर देगी। मोह को समझ जाना चाहिए था कि वशी के प्रहार से ही कस ढेर हो गया तो मै किस खेत की मूली हूॅ। पर कहा है—विनाशकाले विपरीत बुद्धि । और ऐसी अवस्था मे हित ही बात नही सुहाती। कृष्ण ने उसे भी मौत के घाट उतार दिया और शाति का वातावरण निर्मित किया। कस को मारकर उन्होने राजगद्दी नही ली, अपितु उस पर जिसका अधिकार था उस उग्रसेन को प्रदान की। कृष्ण ने कहा—मेरा कर्तव्य अनीति का विनाश करना

है, राज्य हडपने की उच्छृखलता प्रदर्शित करने पर मै स्वय नीतिवान नहीं रह पाऊँगा। उन्होने उग्रसेन के साथ वसुदेव, देवकी और ज्योतिषी को भी कारागार से मुक्त किया। चारो ओर कृष्ण की जयकार होने लगी। वह निर्मोही व्यक्तित्व पूरे भूमण्डल पर छा गया, उन्होने कर्म की महिमा प्रतिपादित की। दुर्मति सभी युगो मे रहते है, उस युग मे भी थे। वे कृष्ण पर सशय करने लगे। कृष्ण भोगी है, दुश्चरित्र है, इतनी औरतों के बीच रहता है—दबी जबान से ऐसी चर्चा चलने लगी। अश्वत्थामा के प्रसग से उत्तरा की कुक्षि का बालक गर्भ मे भी स्वर्गस्थ हो गया। कृष्ण ने कहा—जो भी अपने जीवन मे सत्य, नीति और धर्म पर केन्द्रित रहा हो वह आज आजमाईश कर ले। जिसने किसी का माल हडप नही किया हो, हिसा नही की हो वह प्रयास करे, बालक जीवित हो जायेगा। जनता चुपचाप सुनती रही। सोचने लगी, हमारे भीतर काम, क्रोध, ईर्ष्या, तृष्णा, लालसा, भरी है, कितनी बार हमने कितनो का गला घोटा है। सत्य का गला घोटा है। कैसे सत्य की दुहाई दे ? और क्या हमारी दुहाई से उत्तरा का बालक जी उठेगा ? आप सोचेगे, क्या ऐसी घटना घट सकती है ? हॉ घट सकती है। सुभद्रा ने सतीत्व के बल पर चपा नगरी के चार द्वारो मे से तीन द्वार उद्घाटित किये थे, एक द्वार बहुत समय तक बन्द था (अभी मालूम नही)। कृष्ण ने कहा—यदि मैने जीवन मे सत्य, धर्म और नीति का पालन किया हो तो हे उत्तरा के पुत्र, तुम जीवित हो जाओ। बालक सचमुच उठ वैठा। घटना घट गई। इसमें कुछ अतिरंजित तथ्य भी हो सकते है पर इससे कृष्ण का योगनिष्ठ जीवन तो सामने आ ही जाता है। कृष्ण के विस्तृत चरित्र की सीमित समय मे विवेचना नही की जा सकती। पर उनका चरित्र परम्परा से हम सुनते आ रहे है। हमे उनके जीवन का एक-एक पहलू सामने रखकर उनके जीवन की समरसता पर चिन्तन करना चाहिए। आज की स्थिति कैसी है, इस विपप मे कवि कह रहा है—

समय के फेर से जी-2, भारत दशा और की और
कहॉ गये गोपाल कृष्ण जो गऊ को लाड लडाते,
आज अधर्मी वहू-वेटी को वेच-वेचकर खाते।। समय के फेर .

कृष्ण गऊ को कैसा लाड़ लडाते थे। त्रिखण्डाधिपति गायो को जगल मे चराने ले जाते थे। आज तो महाजनो की बात क्या पूछना ? यदि मुस्लिम मिल गया तो कह देगे-सलाम, अस्लामालेकुल सलाम। किसी से कहा—'जय गोपालजी की' तो किसी से 'जय जिनेन्द्र'। जैसा रंग सामने आया वैसे रग मे रग

जायेगे क्योकि हमे भीतर घुसना है, भीतर घुसे बिना माल कैसे लेगे ? रग बदलने से ही काम होगा। याद रखिये, रग कितने ही बदलो पर यदि मूल रग लुप्त हो गया तो फिर स्थिति विकट हो जायेगी। आज चारो तरफ आवाज उठ रही है--'गऊ हत्या हो रही है', पर क्या विचार करूँ, किसे सुनाऊँ, कान खुले हो तो सुनाऊँ, पर हमने तो कान मे डुच्चे भर रखे है, कितने भी विस्फोट, धमाके क्यो न हो हमे सुनाई नही देते, हमारे कान तो पक गये है। इस नगाडे की चोट से क्या होना-जाना है। कहते है, ये अधर्मी कसाई लोग गऊ के गले पर छुरी चला रहे है पर जरा अपनी छाती पर हाथ रख कर देखिये कि कही आप भी इसमे सहभागी तो नही बन रहे है ? आप तो इसके विरोध मे पच्चीस पैसे का पोस्ट कार्ड भी नही डाल सकते, इतनी अल्प राशि बचाने के फेर मे हम कर्तव्य-पालन से विमुख होते है। छपे हुए पोस्टकार्ड पर हस्ताक्षर करने मे भी जब आपको जोर आता है तब गऊ रक्षा के लिए आपने कितना पुरुषार्थ किया, यह समझ मे आ जाता है। तब आप कही-न-कही किसी-न-किसी रूप मे गौ-हत्या के पाप से जुड़ रहे है या नही, सोच कर देखिये। बूचड़खानो के शेयर बिकते है तो आप खरीदते है या नही ? घर मे यदि गाय माता बुड्ढी हो जाये तो उसे आप बेच देते है या नही ? आप कहेगे हमने कसाई को नही बेची। पर घूमती हुई, आज नही तो कल, वह कहॉ पहुँचेगी ? महाशतक का दृष्टात आपने सुना होगा। रेवती गाथा पत्नी मासाहारी थी। महाशतक 12 व्रतधारी और पत्नी मासाहारी ? श्रावक के घर पशुवध हो तो कहिए, महाराज को गोचरी हेतु वहॉ जाना चाहिये या नही ? आप कहेगे उस घर का बहिष्कार कर देना चाहिये। बाते हम जल्दी कर लेते है, उनकी क्रियान्विति की चिन्ता नही करते। महाशतक ने ऐसा नही किया। उसने सोचा, यदि इसे बाहर कर दिया होता तो यह ना जाने कितनो का शील भग करती, नगरवधू बन जाती और कितने ही घरो मे आग लगाती। समझदार व्यक्ति सदा आग से बचाने की कोशिश करता है फिर भी यदि कोई अपने आप आग मे कूद पड़े तो क्या किया जा सकता है ? यदि विवेक हो तो ही बचाव सभव है। विवेक जाग्रत नही तो गर्त मे गिरना आसान हो जाता है। उस जमाने मे गऊ और बेटी पैसे से बिकते थे। साठ वर्ष का बूढ़ा यदि थैलियॉ भेज दे तो बीस वर्ष की कन्या से विवाह हो सकता था। आचार्य जवाहर ने इस व्यवस्था के प्रति जमकर सघर्ष किया। आप भी सोचिये कि साठ वर्ष वाले के साथ किसी कन्या को जोड़कर घर जोडा या उसके जीवन के साथ खेल खेला ? उस जमाने मे तो बेटियॉ बिकती थी पर आज तो बेटे बिकते है। बाजार मे नही, ग्राहक घर बैठे आते है। पूज्य गुरुदेव (नानेश)

प्रभावकारी शब्दो मे कहते है—आज व्यक्ति सीधे तो इस बिक्री की बात नहीं कहते पर घुमा-फिरा कर कहते है—काई करा सा, आप जैसा सुशील समधी, सगाजी बनालां पण लडका शादी वास्ते राजी नही। हालाकि उससे पूछा नहीं गया। पूछा भी क्या जाये? मोल-भाव तय हो तो बिक जायेगा। विना माल सौदा तय नही होता। आगे कहेगे—इदौर वाले आये थे, एक लाख रुपये नगद, मारुती, टी वी , फ्रीज सब देने के लिए तैयार थे पर कवर सा तैयार ही नहीं हुए। इस प्रकार परोक्षत आपने कह दिया कि लाख रुपए, मारुती मे तो सौदा पटेगा नही। ज्यादा हो तो बात करो। और यदि उसके पास ज्यादा होगा तो लडका तैयार हो जायेगा। साथ मे यह और कहेगे—मेरे तो दहेज लेने की सौगन्ध है पर पुत्री आपकी है, उसे आप देते है तो मेरे को क्या एतराज। यह तो वही बात हुई—'रोटी खाना शक्कर से, दुनिया ठगना मक्कर से।' सीधी बात नहीं की जाती। बातो के पीछे चालाकी रहती है, प्रपच रहते है। कृष्ण को तो गऊ चराने मे शर्म नही आई पर हमे तो चारा-पानी डालने मे भी शर्म आती है। नौकर से यह कार्य करवा लेगे। आप यह भूल जाते है कि अपने-आपके परिश्रम का रग अलग होता है। हम कामना करते है कि हमारे भीतर कृष्ण-रूप ज्ञान की ज्योति प्रज्वलित हो, पर समझ लीजिये कि वह होगी अपनी ही देवकी के उदर से। वह ज्ञान यदि जन्म जाय तो फिर दु ख का सदा के लिए विनाश हो जायेगा और हम सुखी हो जायेगे। जो आत्मा की सतान है, वह माता को सतान नहीं देगी। मॉ को सताप दे जो ज्ञान वह ज्ञान किस काम का? सच्ची सतान जन्म दात्री को कभी दु ख नही दे सकती। हमारे भीतर ज्ञान सतान पैदा हो जो हमे कर्तव्य पथ पर आगे बढावे, मंगलकारिणी बने और जीवन के चरम लक्ष्य को प्राप्त करने मे हमारी सहायता करे, यही अभिलाषा है। कृष्ण जन्माष्टमी के पर्व से यह प्रेरणा तो लेनी ही चाहिये। ❖

जन्माष्टमी
5-9-96

परमात्मस्वरूप की प्राप्ति का मार्ग

परमात्मा को किया गया वदन आत्मा के लिए कितना उपादेय है, मान्य है, उपयोगी है, यह विचारणीय है। प्रार्थना सद्‌भूत गुणो की हुआ करती है। जिन तीर्थकर देवो की, आराध्य देवो की उपासना-प्रार्थना की जाती है उनके बारे मे हमे ज्ञात होता है कि कितने और कैसे गुणो से वे युक्त थे क्योकि बिना यह ज्ञान हुए श्रद्धा नही हो सकती। उस स्थिति मे पूज्य भाव भी उत्पन्न नही हो सकता जो प्रार्थना के लिये आवश्यक होता है। इस प्रकार श्रद्धा भाव के साथ प्रार्थना करने पर, जिसकी प्रार्थना की जाती है उसकी विशेषताओ की समझ भी जुड़ी होती है।

किसी से सबध स्थापित करने के लिए पहले उससे परिचय करना होता है। प्रभु महावीर ने ऐसा परिचय देते हुए एक वाक्य कहा—'अप्पा सो परमप्पा' अर्थात् जो आत्मा है वही परमात्मा है। तब प्रश्न उत्पन्न होता है कि यदि सभी आत्माएँ परमात्मा है तो फिर परमात्मा की स्तुति क्यो की जाये, आत्मा की स्तुति ही क्यो नही कर ली जाये? समाधान यह है कि यद्यपि आत्मा के अदर परमात्मा भाव होता है किन्तु वह सोया हुआ परम तत्त्व होता है और जब तक वह जग नही जाता तब तक उसे परमात्मा नही कहा जा सकता, उसे आत्मा ही कहा जाता है। उसके शुद्ध स्वरूप को प्राप्त किए बिना परमात्मा शक्ति का सचार आत्मा मे नही हो सकता। एक दृष्टांत ले। अरणि की लकड़ी मे आग होती है और दो टुकड़ो को रगड़ने से उनमे आग लग जाती है। लकड़ी मे आग है पर वह दिखायी नही देती। यदि आग लकड़ी मे है तो आग स्वय प्रकट क्यो नही हो पाती? उसके पीछे कारण है। आपस मे सघर्ष जरूरी है तभी आग प्रकट हो सकती है, उसके लिए वैसा पुरुषार्थ अपेक्षित है।

एक व्यक्ति को घी की आवश्यकता है, दूसरा व्यक्ति उसे दूध देता है। कहा—भाई, मुझे घी चाहिये। दूसरे ने कहा—इसमे घी समाविष्ट है। हम जानते है कि दूध मे घी होता है? आज का दूध जिसमे से घी पहले ही निकाल लिया जाता है, वह मात्र नाम का दूध है, यह अलग है। यहाँ यथार्थ दूध की बात है। घी उसमे दिखता तो नही है पर उस दूध मे घी है जरूर। उसे प्रक्रिया से

प्राप्त किया जा सकता है। उसकी प्रक्रिया है दूध को तपाकर दही जमाना, दही का बिलोना कर मक्खन निकालना, फिर उसे तपाकर घी प्राप्त कर लेना। यदि घी कम तपा हुआ है तो कुछ समय बाद उसमे दुर्गन्ध आ सकती है पर अच्छी तरह तपाए गए घी मे सहसा दुर्गन्ध आ नही सकती। पूरी तरह नही तपने से उसमे छाछ का अश रह जाता है जिससे वह थोडे समय बाद बदबू मारने लगता है। जैसे दूध मे घी होते हुए भी दिखाई नही देता पर चतुर व्यक्ति दूध मे से घी निकाल लेते है, उसी तरह ज्ञानवान व्यक्ति शरीरस्थ आत्मा मे छिपे परमात्म भाव को प्रकट कर लेते है। उसे प्रकट करने के लिए तप की आवश्यकता होती है। मोटे रूप मे हम उपवास, बेला, तेला आदि को ही तप मान लेते है पर तप इतना ही नही है, यह तो तप का मात्र एक भेद है। अनशन, अवमौदर्य, वृत्ति सक्षेप, रस परित्याग, काय क्लेश, प्रतिसलीनता, प्रायश्चित्त, विनय, वैयावच्च, स्वाध्याय, ध्यान और कायोत्सर्ग—तप के बारह प्रकार है। एक वाक्य मे कहे तो 'इच्छा निरोध तप ' अर्थात् इच्छाओ का निरोध ही तप है।

इच्छाओ का निरोध होने पर ही तप हो सकता है। तप करने के बाद कुछ पाने की लालसा यदि रहती है, मान प्रतिष्ठा के भाव यदि बनते है तो वह तप नही है, निर्जरा का कारण नही है।

जब तक छाछ रूप तत्त्व घी मे रहेगा वह निखालिस रूप को प्राप्त नही कर पायेगा, उसमे परम तत्त्व नही निखरेगा। कही-कही तपस्याओ के साथ भी इच्छाएं जुड़ जाती है। इधर मेवाड का तो नही मालूम लेकिन मारवाड़ मे बहने धमक तेला करती है। तेले की पूर्णाहूति पर सास-ससुर के अंग पूजन की परम्परा है, केसर से अग पूजे जाते है और पैर पकडे जाते है। ससुरजी नोट की थैली पकडा देते है, सतोष नही होता है, तो और रकम आदि थमा देते है, फिर परिजनो के कहने पर पैर छोड दिया जाता है। धमक का अर्थ धमकाना।

ऐसी तपस्या मे पारिवारिक आत्मीयता भले हो पर ऐसी तपस्याए परमात्मा भाव की प्राप्ति मे सहायक नही होती। कई बार व्यक्ति सोचता है कि तपस्या कर लूँ, मुझे कुछ सहयोग मिल जायेगा, लाभ मिल जायेगा तो उसका लाभ वही तक सीमित हो जाता है। सामायिक करने के पीछे यदि भावना यह बनती है कि सामाजिक प्रतिष्ठा बढ जायेगी, व्यापार मे लाभ होगा, किसी से भाग्य की प्राप्ति होगी, अथवा ऐसी ही कोई भावना होती है तो सामायिक का अपेक्षित लाभ नही मिलता। जिन अनुष्ठानो के साथ भावनाएँ अथवा कामनाएँ जुड जाती है वे अनुष्ठान परमात्म भाव को पैदा करने मे समर्थ नही हो सकते।

एक कथा है। राजा भोज सभा मे बैठे थे। एक कृशकाय व्यक्ति, जिसके कपड़े जगह-जगह से फटे थे, जिसके पैरो के जूते घिसे हुए थे परन्तु जिसके माथे पर तिलक छपे हुए थे, द्वार पर पहुँचा और द्वारपाल से कहने लगा—'मैं राजा भोज से मिलना चाहता हूँ।' उत्तर मिला—'चल भाई, कई आते है ऐसे।' उस दरिद्र ने पुन कहा—'मै राजा भोज का पारिवारिक जन हूँ, मुझे जाने दो, कही ऐसा न हो कि तुम्हे इसकी सजा भुगतनी पडे। मै राजा की मौसी का लड़का—भाई हूँ।' द्वारपाल को विश्वास नही हो रहा था। राजा को सूचना दी, कहा कि एक दरिद्र-सा दिखने वाला व्यक्ति अपना परिचय आपके भाई के रूप मे दे रहा है।

राजा ने कहा—'उसे ससम्मान अन्दर ले आओ।' किसी प्रकार का अन्यथा चिन्तन नही किया राजा ने। आज तो गृहस्वामी घर मे होते हुए भी मनाकर देते है कि कह दो, अन्दर नही है। अस्तु, अतिथि आया। दोनो गले मिले। राजा ने उसे अपने पास सिहासन पर बैठाया और उलाहना भरे स्वर मे कहा—बहुत दिनो मे मिले। ऐसी स्थिति थी तो पहले क्यो नही वताया ?

श्रीकृष्ण के पास सुदामा गए तो श्रीकृष्ण ने उनके पैर धोकर अन्दर बुलाया, पास बैठाया, पूछा—भाभी ने मेरे लिए क्या भेजा है ?

मित्र-भाव कैसा होना चाहिये—यह महान आत्माओ के आचरण से जाना जा सकता है।

जब हमारी आत्मा उस परम तत्त्व को जान लेती है तब ही ऐसी भावनाएँ जाग्रत होती है। श्रीकृष्ण गुणग्राही थे।

राज भोज ने भी उससे पूछा—'मौसी के क्या हाल-चाल है ?' आगन्तुक ने कहा—'अब तक तो ठीक थी परन्तु आपके दर्शन के बाद उनका निधन हो गया है।' राजा भोज ने पूछा—'दाह सस्कार किया या नही ?' आगन्तुक ने कहा—'करना है'। राजा ने खजाची को एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ देने का आदेश दिया। उसे एक हजार स्वर्ण मोहरे दे दी गई।

ब्राह्मण चला गया। भोज से उसके मत्रियो ने प्रश्न किया—'महाराज, आप किस-किस को इस तरह भडार से देते रहेगे ? ऐसे तो भडार खाली हो जायेगा ? कितने आएगे ? हर कोई आएगा और स्वय को मौसी का लड़का भाई या रिश्तेदार बतायेगा।' राजा भोज ने सरलता से उत्तर दिया—'आप ऊपरी तौर पर सब-कुछ देख रहे है। किंचित् गहराई से विचार करे। दो दहने है—सम्पत्ति

और विपत्ति। एक सम्पन्नता है और एक निर्धनता। मै सम्पन्नता का पुत्र हूँ और वह निर्धनता अथवा विपत्ति का पुत्र था और इस तरह हम मौसेरे भाई हुए। फिर मैने भी उसकी विद्वत्ता की जानकारी प्राप्त करने के लिए मौसी का हाल पूछा। मै जान रहा था कि यह दरिद्र नारायण है और उसे भी पता था कि मै किसी को खाली हाथ नही भेजता। तो मुझे भी उसकी बात रखनी थी। उसने भी कहा कि मुझे देखने से अब उसकी माता अर्थात् मेरी मौसी का निधन हो गया अर्थात् मेरे पास आने से उसकी दरिद्रता दूर हो गई। और जब बात इस तरह की थी तो मुझे भी उसके सम्मान की रक्षा करनी ही थी। मेरी मौसी का सस्कार भी ठाठ-बाट से होना चाहिये था। जिससे वह भूत बनकर वापस नही आ जाये और आकर परिवार मे कोई उत्पात नही मचा दे। ऐसी व्यवस्था करनी आवश्यक थी जो मैने कर दी।'

बधुओ। जो राजा भोज के पास चला गया, उसकी विपत्ति दूर हो गयी। ऐसे ही श्रद्धा लेकर जो परमात्मा के चरणो मे पहुँचता है और चरणो मे बैठकर आराधना, उपासना करता है तो क्या उसके पास विपत्ति टिक सकती है? उसके पास भौतिक सम्पत्ति भले ही आए या नही आए, परन्तु परमात्म-भाव-स्वरूप आत्मा की शक्तिरूप सम्पत्ति प्रकट हो जायेगी। प्रभु के समक्ष जो प्रार्थना के स्वर उच्चरित किये जाते है उन्हे सुख-सम्पत्ति का हेतु माना जाता है। पर वह उपलब्धि कब और कैसे हो, इसके लिए विवेकपूर्वक विचार करना नितान्त आवश्यक है। इसके लिये प्रभु के प्रति समर्पणभाव जगाना जरूरी है। समर्पणभाव जगने पर हमारी आत्मा मे शक्ति और सामर्थ्य पैदा हो जायेगी और इस प्रकार जो शक्ति और सामर्थ्य प्राप्त किया जायेगा वह स्थायी होगा। हम भी तो परमात्मस्वरूप की स्थायी प्राप्ति चाहते है। अत· श्रद्धा और विश्वासपूर्वक उसके चरणो मे समर्पण करे। ❖

भाद्रपद कृष्णा 9
6-9-96

संयोगों से मुक्ति : आत्मबल की सिद्धि

प्रभु महावीर ने जो अपुट्ठ वागरणा का प्रारभ किया है—उसमे सवसे पहले विनय का स्वरूप दर्शाया है। एक गाथा है—

संजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
विणय पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे।। उत्तरा 1/1

इस गाथा मे विनय की बात कहने की प्रतिज्ञा की जा रही है। यह अधिकार गाथा है अर्थात् मै क्या कहना चाहता हूँ—इसका निर्देश इसमे स्पष्ट किया गया है। सजोगा विप्पमुक्कस्स, अर्थात् सयोग से मुक्त हो। सयोग क्या है? सयोग से व्यक्ति प्रफुल्लित होता है और इसी कारण वह सयोग जुटाता है। सयोग अनेक प्रकार के है। यदि व्यक्ति परिवार मे अकेला है तो ऊबने लगता है। विचार करता है—ऑगन मे एक बालक की किलकारी भी नही, आगन सूना-सूना लगता है। यदि आगन मे बालक की किलकारी गूँजे तो चहल-पहल हो जाये, आगन का सूनापन मिट जाये। इस प्रकार सयोग की चाह बनती है। पर प्रभु 'विप्पमुक्कस्स' अर्थात् सयोग छोड़ने की बात कह रहे है। जब सयोग प्रिय है तो उसे क्यो छोड़े, यह समझने के लिये हम सयोग का स्वरूप जान ले।

योग युज् धातु से बना है। योग का अर्थ है—जोड़ना। उसमे सम् उपसर्ग लगा हुआ है। सम् उपसर्ग के भी अनेक अर्थ है जैसे-सम्यक्, सम्मिश्रण, सभव आदि। एक क्रिया मे जितने उपसर्ग जुडते है उतने ही भिन्न-भिन्न अर्थ हो जाते है। यदि सयोग का अर्थ—सम्यक् रूप से जोड़ने वाला किया जाये, तो सम्यक् का अर्थ शुभ या प्रशस्त योग होता है और यदि ऐसे योग है तो जुड़ाव या लगाव अच्छा है। उसे क्यो छोड़ा जाये? ऐसा लगाव तो होना चाहिये। योग के 3 भेद है—मन, वचन, काया। योग अर्थात् प्रवृत्ति। यदि प्रवृत्ति का निरोध कर दिया जाये तो वह अयोग हो जायेगा। योग यदि प्रवृत्ति है तो निश्चित रूप से उसमे क्रिया भी होगी और क्रिया होगी तो उस क्रिया का परिणाम भी होगा।

सयोग का तात्पर्य यदि सम्मिश्रण ले तो समझ ले कि आत्मा के साथ कर्मो का सम्मिश्रण हुआ है। यह सम्मिश्रण सिर्फ जुडा हुआ ही नही वल्कि लोहे

मे आग और दूध मे पानी की भॉति एकमेक स्वरूप है। यदि दो कागज के टुकडे पास-पास रख दिये जाये तो यह सयोग तो होगा पर इसमे सम्मिश्रण नही होगा। दूध मे पानी का सम्मिश्रण है, उसे मिश्रण रूप योग से अलग किया जाय। जो आत्मा कर्मो से विप्रमुक्त है तो उसके लिए विनय का कथन करने की आवश्यकता नही क्योकि कर्मो से अलग तो सिद्ध है, उनके लिए विनय की जरूरत ही नही है। फिर यहॉ क्या अर्थ लिया जाय ? यहॉ शब्द महत्त्वपूर्ण है क्योकि गणधर भगवन्तो ने प्रभु की वाणी को गुम्फित किया है। उन्होने जो शब्द-चयन किया, वह गहराई लिये हुए है। सामान्य व्यक्ति जैसे-तैसे शब्द जोड लेते है। आज भी व्यक्ति शब्दो का चयन करते है। कवि आनन्दघनजी को ही ले—उनकी शब्द सयोजना का एक-एक शब्द महत्त्वपूर्ण है। जब ऐसे अध्यात्म पुरुष ऐसी शब्द सयोजना कर सकते है तो गणधरो का शब्द चयन, सयोजन निस्सार या असार नही बल्कि सारपूर्ण ही है। सम्मिश्रण वाले अयोगोलक (लोहे के गोले) को आग मे डालने पर थोड़ी दर मे ही गोला लाल सुर्ख हो जायेगा। दूर से देखने वाला समझ नही पाता कि वह लोहे का गोला है। वह उसे अगारा समझता है। वैसे ही आत्मा के साथ कर्मो का सबध है तो उसके लिए विनय की बात नही। किन्तु यहॉ अभिप्रेत कुछ अलग ही है। सम्यक् का अर्थ सम्मिश्रण-रूप मे ही महत्त्वपूर्ण है। वह इस प्रकार समझा जा सकता है कि आत्मा मे भावरूप से लेश्याओ का सबध जुड़ता है। वह सम्मिश्रण आत्म प्रदेशो मे गहराई तक चिपक जाता है। हम जानते है कि जिस क्षण भाव-धारा का प्रवाह चलता है उसी क्षण शुभाशुभ कर्म सलग्न हो जाते है। उसमे जो सयोग/योग का प्रसग बन जाता है वह चाहे परिवार के, धन के पदार्थो के किसी भी रूप से जुडा हो, वह आसक्ति का ही रूप है। ऐसा लगाव गहरा होता चला जाता है।

सामान्य रूप से साधु भी संयोग से अलग नही है। गुरु-शिष्य, साधु-साधु और स्वधर्मी का सयोग उससे भी जुडा हुआ है। वह भी ससार मे रह रहा है—तीर्थ की स्थापना है तो परस्पर सयोग होगा ही। यदि पारस्परिक सयोग का सर्वथा विच्छेद कर दे तो स्थविरकल्पी, चतुर्विध सघ की रचना चल नही पायेगी। इसलिए उस सयोग मे जो बात कही है वह यह है कि जो हमारी भावधारा को कलुषित करता है और उससे जो कर्म का आदान होता है उस मूल जड़ को ही काट देना है जिससे वृक्ष हरा-भरा नही हो। यदि उसका सिचन करते रहे तो सयोग जकडता चला जायेगा। ऐसे सयोग से आत्मा को अलग करना है।

एक परिवार मे माता-पिता दीक्षा के लिए तैयार हुए तो पुत्र ने भी उनका अनुसरण करना चाहा। माता-पिता ने पुत्र को समझाने का प्रयास किया तो उसने कहा—यदि दीक्षा अच्छी है तो मै ससार मे रहकर क्या करूगा और यदि ससार अच्छा है तो आप दीक्षा क्यो ले रहे है ? आप निश्चय ही अच्छे मार्ग पर बढ रहे है इसलिये मै भी आपके साथ दीक्षा लूँगा। पिता उसके तर्क का कोई सतोषजनक उत्तर नही दे सका अत तीनो दीक्षित हो गये। पिता का सहज ही कुछ ममत्व भाव रहा था। विचार किया—बालक है, अभी वह अध्ययन-अध्यापन कर ले तो अच्छा रहे। इसलिये वे स्वय गोचरी और सेवाकार्य कर लेते। बालक मुनि ज्ञानार्जन मे लग गया। 'सयोग हटा'—पिता-मुनि स्वर्गस्थ हुए। अब उनका दायित्व सहयोगी मुनियो ने सभाला। एक दिन पुत्र-मुनि भी भिक्षा के निमित्त बाहर निकला। प्रथम बार ही यह प्रसग आया था। अव पुत्र-मुनि को मालूम हुआ कि यह भिक्षाचर्या कितना कठिन तप है, नीचे तप्त धरती और ऊपर सूर्य का ताप। मुनिजी गरमी मे थोड़ी दूर चले तो व्याकुल हो गये। पसीना चूने लगा। चेहरा लाल-लाल हो गया। गति मे अतर आ गया। विचार करने लगे कि कही छाया हो तो विश्राम कर ले। दो मिनट रुककर विश्राम भी लिया। फिर सोचा—आखिर तो जाना पड़ेगा। थोड़ा आगे बढ़े। मन मजबूत किया, पर पैर जलने लगे, फिर छाया की आकाक्षा जागी। एक मकान की छाया मे खड़े हो गये। सोचने लगे, धन्य है वे महात्मा जो इस तप की आराधना करते है। कितना भयकर परीषह है, कितनी साधना करनी होती है। वे गरमी मे कैसे विचरण करते होगे। अनेक विचार उठने लगे। अपने-आप के लिए भी विचार किया। मै कैसा कायर हूँ, गरमी मेरे लिए असह्य है। कैसा जीवन है मेरा ? इधर वे विचारो के झूले मे झूल रहे थे उधर ऊपर गवाक्ष मे बैठी बहिन ने उनके विचार पढ लिये। दासी को भेजा—मुनि को अन्दर बुला लो। दासी पहुँची, निवेदन किया—पधारिये, पधारिये भिक्षा के लिये। मुनि ने देखा, पुण्य योग है। मुझे भिक्षा चाहिए और आमत्रण मिल रहा है। यदि धर्म-स्थान मे आमत्रण दिया जाता तो मुनि का कल्प नही रहता। यदि कोई धर्म-स्थान मे आकर कहे कि आज चलना होगा या 'काले म्हारे पारणो है, ध्यान राख जो।' तो इस सबध मे प्रभु कहते है कि ऐसे अवसर पर साधु विराम ले। कोई कहे, अमुक तारीख को मेरा ध्यान रखना, तो साधु वहाँ नही जाये। यदि वह जाता है तो सयमी जीवन मे दोष लगता है। उस स्थिति मे वह सयोग से मुक्त नही रह पायेगा, जुडता चला जायेगा। किन्तु यदि साधु भिक्षा के लिए बाहर निकल गया है तो मार्ग मे निवेदन किया जा सकता है। मुनि ने विचार किया और बहन के निवेदन पर भीतर चले

गये। बहिन ने बडी भक्ति से, मनोज्ञ सरस आहार बहराया। पर्याप्त आहार लेकर मुनि जाने लगे तो बहन सामने खडी हो गई—'ऐसी गरमी, लाय पड रही है, कहाँ पधारोगे ? यही स्वतत्र कमरे मे विराजकर आहार से निवृत्त हो जाइये।' मुनि ने विचार किया—वस्तुत पहुँच पाना कठिन है। बहिन कह रही है तो क्यो नही यही भोजन कर लूँ ? वे बाहर के कमरे मे भोजन कर निवृत हुए और जाने के लिये उद्यत हुए। बहन पुन सामने खडी हो गई। मधुर शब्दो मे कहने लगी—'क्या कर रहे है ? आयुर्वेद और नीतिशास्त्री कहते है कि भोजन के बाद तत्काल परिश्रम नही, विश्राम करना चाहिये।' मुनि ने सोचा, बहिन भावना वाली है, कुछ आकर्षण बढा अत रुक गये। मादक पदार्थो का सेवन किया था। निद्रा आ गई, चित्त-इन्द्रियाँ चचल हो गईं। फिर भी मुनि अभी सारे योगो से जुड़े नही थे। निद्रा पूर्ण होने पर उठकर रवाना होने लगे कि बहिन ने आकर हाथ पकड लिया और कहने लगी—'क्या यह जीवन गरमी मे झुलसाने के लिए है ? तपस्या करना सरल नही है। अभी आप मेरे साथ सुख भोगो, परिपक्व वय हो जाये तब साधु बन जाना। मुनि चचल हो ही रहे थे, और अब तो 'ऊघती को बिछौना' वाली कहावत चरितार्थ हो गई। आसन मिल गया। हाथ पकड़ने से विजातीय स्पर्श का सयोग हुआ। भीतर करन्ट लगा। यह स्पर्श सुखद था, अच्छा लग रहा था। अपने-आप को स्पर्श से अलग नहीं कर पाये। परिणति क्या होनी थी, यह स्पष्ट ही है। पोशाक, ओगे, पात्रे धरे रह गये।

उधर बहुत समय तक मुनि नहीं लौटे तो मुनियो ने खोज प्रारभ की, पर वे सडको पर तो थे नही जो मिल जाते। बन्द कमरे मे थे तो कैसे मिलते ? कुछ अता-पता नही, क्या किया जाये, सभी चिन्तित थे परन्तु पुत्र-मुनि तो आमोद-प्रमोद मे घुल गये थे और भूल गये थे सत जीवन का अनुशासन और गुरु चरणो का प्रताप। सयोग से जुडकर आत्मा अपने को भी विस्मृत कर चुकी थी। सयोग ही उभरकर आत्मा के सामने आने लगे थे और आत्मा उन्हीं मे भ्रमित हो गई थी।

परीषह से विचारधारा टूटी थी, चंचलता बनी थी और फिर सयोग को आगे खिसकते देर नही लगी थी। इसीलिए प्रभु कह रहे है—हे साधक। ऐसे सयोगो मे अपने आप को रमाना मत, यदि तूने तनिक-सी दुर्बलता भी दिखाई तो फिर ये सयोग के कीटाणु तुझे नष्ट करके ही छोडेगे। कैसर के कीटाणु का तो फिर भी इलाज है पर ये कीटाणु अडे देकर इतना फैलाव कर लेते है कि जीवन पूर्णत जर्जरित हो जाता है।

प्रभु ने सकेत दिया है कि अणगार कैसा हो, भिक्षु का स्वरूप कैसा हो और उसकी मानसिकता कैसी हो। पहले हम सयोग को जान ले जो आत्म-पतन का कारण है और जिससे रहित होने पर ही शाति मिलती है। उस माता ने, जो साध्वी बन चुकी थी पर जिसका सहज ममत्वभाव अभी भी मुनि के प्रति था, जब सुना कि पुत्र लापता हो गया है, खोज-खबर से भी नही मिला है तो साध्वी होने के बावजूद ममत्व का जो अश उसमे था वह चिन्तन और चिन्ता से गहरा होता चला गया। स्थिति यह बनी कि मस्तिष्क का नियत्रण भी उसके वश मे नही रहा। इधर से उधर पुकार लगाती दौड रही थी—अरणक, तुम कहॉ हो। अरणक, तुम कहॉ हो। अरणक अरणक । सयोग से वह उसी मकान के पास से गुजरी जिसमे वह मुनि आमोद-प्रमोद मे रत था। मुनिजी के कानो मे जब वह करुण पुकार पड़ी तब वह सोचने लगे—अरे, यह आवाज तो परिचित लगती है। अरे, ये तो माता के शब्द है। उसने खिड़की खोली, देखा—माता बेतहाशा दौड़ रही थी और विलाप कर रही थी। अरणक अभी सयोगो से गहरा नही जुड़ा था। अत मुनि-स्वभाव अगड़ाई लेने लगा—ओह, मेरे कारण माता को इतनी तकलीफ। आह, धिक्कार है मुझ पर जो मैने साधुत्व स्वीकार किया, पर पतित हो गया। वह मकान से उतर कर माता के चरणो मे गिर पड़ा—'मातेश्वरी, क्षमा कर दो। यह पुत्र थोड़ा भटक गया था।' माता ने देखा पर उसे सहसा विश्वास नही हुआ। गौर से देखा। पुत्र को पहचाना और धीरे-धीरे सहज होने लगी। फिर आश्चर्य से बोली—'बेटा अरणक।' अरणक ने भी विषादपूर्ण स्वर मे उत्तर दिया—'मातेश्वरी ।' साध्वी मॉ ने प्रश्न किया—'ये क्या दशा हो गई है तेरी?' अरणक की ऑखे झुक गई, हाथ जुड़ गए, अविरल अश्रुधार बहने लगी। माता ने उलाहना दी, तुमने उच्च खानदान मे जन्म लिया था। अरणक ने बिलखते हुए कहा—'मॉ क्षमा करो, सुबह का भूला शाम को घर आ जाये तो भूला नही कहलाता। मै भूल गया था। परीषह से घबरा गया था। आत्मा की अतल गहराई मे नही पहुॅच पाया था। मै प्रतिज्ञा करता हूॅ कि जिस गरमी से घबराया था अब उसी गरमी को अपना वही शरीर सुपुर्द करता हूॅ जिसे बचाने की मैने कोशिश की थी और जिसकी सुख-सुविधा की चाह ने मुझे भटका दिया था।' पहुॅचे मुनि गुरु चरणो मे। आलोचना की, गुरु ने पुन नई दीक्षा दी। दीक्षोपरान्त गुरु आज्ञा से सथारा ग्रहणकर तप्त शिला पर लेट गये। देह मानो मक्खन की भॉति पिघलने लग लगी पर वे महामुनि समता के झूले मे झूलते रहे। देह से पूर्ण अनासक्त। सयोग-भाव से सर्वथा मुक्त। भोग के

दलदल मे जाती हुई आत्मा को साधना के शिखर पर आरूढ कर दिया। प्रभु ने कहा है—

आयावयाही चयसोगमल्ल, कामे कमाहि कमिय खु दुक्ख। दशवै 2/5

यदि चित्त चचल होकर सयोग की ओर दौड रहा है और अकुश भी नहीं है तो वैसी स्थिति मे सुकुमारता का त्याग कर, आतापना लो। आतापना से मनोबल दृढ होगा। मनोबल की दृढता से परीषहो के उपस्थित होने पर भी व्यक्ति घबराता नही है। सयोग से जुडना और रहित होना केवल मुनि के लिए ही नही कहा जा रहा है, जहाँ-जहाँ भी सयोग का प्रसग है उन सभी स्थितियो के सदर्भ मे कहा जा रहा है। गृहस्थ दशा मे रहते हुए सम्यक् दृष्टि के लिए कहा गया है—

अहो समदृष्टि जीवडा, करे कुटुंब प्रतिपाल।
अन्तर्गत न्यारो रहे, ज्युं धाय खिलावे बाल।।

परिवार मे रहते हुए भी उससे जुडे नही। कमल कीचड़ मे पैदा होकर भी निर्लिप्त रहता है लेकिन उसके डठल की जड़े बहुत गहराई तक पहुँच जाती है। जिन लोगो ने थोकडो का अध्ययन किया होगा वे जानते होगे कि वनस्पति की अवगाहना एक हजार योजन झाझेरी है। चार कोस का एक योजन होता है। यह अवगाहना कमल नाल की अपेक्षा से बताई गई है। उस गहराई मे खिलकर भी कमल निर्लिप्त है पर उसकी जडो के रेशे आगे फैलते जाते है। इसी तरह व्यक्ति सयोगो मे उलझकर मकडी की भॉति उलझ जाता है। इसलिए प्रभु कह रहे है—एगो मे सासओ अप्पा, णाण दसण सजुत्तो। सेसा मे बाहिरा भावा, सव्वे सजोग लक्खणा।।

आत्मा ही शाश्वत है परन्तु यहॉ भी उसके हाथ ज्ञान-दर्शन का सयोग बताया है। उसके अतिरिक्त जो जुडने वाली दशाएँ है वे सयोग लक्षण है कर्मो से, भावलेश्याओ से। वस्तुत वे सयोग-भाव आत्मा के नही है। योग-प्रवृत्ति होने पर यदि भावलेश्या विशुद्ध है तो सबध गहरे नही होगे अन्यथा कर्म कीटाणुओ का निष्कासन कठिन हो जायेगा। प्रभु ने कहा है—अरणक मुनि के जीवन को देखे, वे सयोग से जुडे पर अलग भी हो गए तथा तपश्चरण से परीषहो के सहने की क्षमता अर्जित कर ली। वह क्षमता हमारे भीतर भी है पर जब तक ममत्व का सयोग गहरा है तब तक आत्मबल और मनोबल दृढ नहीं

होगा और हम छोटी-छोटी-सी बात पर घबरा जाएगे। कवि आनदघनजी ने कहा है—'सात महाभय टालतो, सप्तम जिनवर सेव।' साधना के लिए उद्यत हो तो भय को दूर करो। इस प्रकार भिक्षु के विनय का स्वरूप तथा अणगार का स्वरूप, हमे एक-एक कर समझना होगा क्योकि केवल पोशाक साधुता नहीं है। साधुता को भाव-धारा मे ढाले तथा आत्मा मे ज्ञान, दर्शन और चरित्र का पुट हो तो ही कर्म-कीटाणुओ का निरोध हो सकेगा। तभी साधुता टिक पायेगी। परभाव से हटना होगा। साधु के लिए 26 गुण बताये गये है उनमे 'भाव सच्चे' कहा गया है। गहराई से चितन करे कि कारण सच्चे, योग सच्चे और भाव सच्चे होने क्यो जरूरी है। इन सभी को समझने पर और इस प्रकार भिक्षु का स्वरूप समझने पर ही विनय का स्वरूप समझा जा सकेगा। पहले सयोग को जान ले, फिर इससे अलग होने की विधि और निषेध-मार्ग को जानकर आगे बढे तो हमारे भीतर आनद के स्रोत प्रवाहित होगे। भावधारा निर्मल होगी तो उसमे कर्म-कीटाणु नही रह पायेगे और हम प्रभु सुपार्श्वनाथ की श्रेणी मे पहुँच जायेगे। ❖

भाद्रपद कृष्णा 10
7-9-96

वन्दन की सही विधि और उसकी महिमा

श्री सुपार्श्व जिन वदीए, सुख संपत्तिनो हेतु, ललना।
शांत सुधारस जलनिधि, भवसागरमां सेतु ललना।।

सुपार्श्वनाथ भगवान् के चरणो मे वदन करने की बात कविता की उपर्युक्त कडियो मे कही गयी है। पर प्रश्न है कि वदन क्यो किया जाये ? वदन किस अवस्था मे लाभदायक बनता है, यह भी विचारणीय है। हम नमस्कार मत्र का प्रतिदिन उच्चारण करते है क्योकि उस प्रकार वंदन को मगलकारी मानते है।

निर्युक्ति गाथा मे भी कहा गया है कि ये पॉच नमस्कार सभी पापो का नाश करने वाले है। लेकिन केवल कथन कर देने से बात नही बनती। देखना यह होता है कि हमारा अनुभव भी वैसा बनता है या नही। तोता पिजरे मे बैठकर सुन्दर सूक्तियॉ उच्चरित कर लेता है पर उन सूक्तियो के अर्थ के अनुरूप अनुभूति उसके अतर मे घटित नही होती। यदि हम भी प्रतिदिन नमस्कार मत्र के अनुरूप अरिहन्त, सिद्ध आदि को नमस्कार करते है पर वह अनुभूति मे घटित नही होता तो फिर वह नमस्कार सब पापो का नाश कैसे करेगा ? फिर भी हम श्रद्धा से उसे सर्वपापहारी एव मगलकारी मानते है।

आज तर्क-प्रधान युग है, वैज्ञानिक युग है अत प्रश्न होगा कि पाप का नाश होता है यह अनुभव कैसे करे ? कवि विनयचदजी भी सुविधिनाथ भगवान की प्रार्थना करते हुए कहते है—

श्री सुविधि जिनेश्वर वंदिए हो, वंदत पाप पोलाय...।

'वंदन से पाप पोलाय' अर्थात् दूर हो जायेगे पर पहले यह तो ज्ञात हो कि वदन अथवा नमस्कार कैसे किया जाय। आगम वचन निरर्थक नही होते है और यदि नमस्कार करने के बावजूद हमारे पापो का नाश नहीं होता है तो हमे खोज करनी चाहिए कि आखिर गलती कहॉ रही जो सभी तो क्या, एक भी पाप का नाश नही हो पा रहा है।

अरिहन्त को नमस्कार करने से क्या मिलने वाला है ? उन्हे क्यो वदन किया जाय ? फल जाने बिना, बिना प्रयोजन तो मदबुद्धि व्यक्ति भी प्रवृत्ति नही करते। फिर जो व्यक्ति जाग्रत है, प्रबुद्ध है, हिताहित जानकर कदम रखता है वह क्या नमस्कार के प्रयोजन को जाने बिना नमस्कार करेगा ? तर्कशील होकर भी यदि हम ऐसा कर रहे है तो कही न कही हम भूल कर रहे है। तब यह समझ ले कि यह नमस्कार अरिहन्त भगवान को नही है। यह तो नमन की महिमा के प्रतिपादन की एक विधि है क्योकि नमन ऊँचाई की ओर ले जाता है। कहा है—

नर की और नल नीर की, एकै गति है जोइ।
जेतो नीचो है चलै, तेतो ऊँचो होइ।।

साथ ही निर्वाण की बात भी इससे जुड़ती है। जो नमता है वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

लघुता से प्रभुता मिले, प्रभुता से प्रभु दूर।

लघुता हमारे भीतर आती है तो निर्वाण मिलता है। हम कहते है—सामने वालो के लिए नमन किया जाता है तो उनको क्या मिलेगा ? नमन करके हम उनके लिये व्यवधान ही उत्पन्न करेगे, उनका उपकार नहीं करेगे। शास्त्रकार कह रहे है—

जे न वदे न से कुप्पे, वदिओ न समुक्कसे। दशवै 5/2/30

कोई वदन न करे तो साधु नाराज न हो और यदि करे तो उत्कर्ष, गौरव, मान न करे। इस कथन मे गभीर अर्थ छिपा हुआ है। 'नमो अरिहताण' मे 'नमो' पद नमन का सूचक है, अरिहताण मे चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग है अर्थात् अरिहन्तो के लिए नमस्कार। तब पूछे कि उनको क्या आवश्यकता पड़ गई कि उनके लिए नमस्कार किया जाय ? यथार्थ मे यह नमस्कार हमारे लिये है न कि उनके लिये। आप कहेगे कैसे ? नमस्कार अरिहन्त की तरफ है परन्तु है अपने स्वय के लिए। आपको बात अटपटी लगेगी। आप उलझन मे पड जायेगे, क्योकि बात प्रतिदिन के सस्कारो से हटकर है। लेकिन इसके पीछे गहन चिन्तन और गभीर मनोवैज्ञानिक सत्य छिपा हुआ है। नमस्कार से अरिहन्त पर प्रभाव नही पड़ता बल्कि उसका परिणमन हम पर ही होता है। व्यक्ति यदि दूध, अन्न आदि ग्रहण करता है तो परिणमन दूध-अन्न पर नही ग्रहणकर्ता पर ही होता है। इसी प्रकार नमन का परिणमन भी नमन करने वाले के ऊपर ही

होता है। जिस प्रकार कुएँ से पानी निकालने के लिए रस्सी द्वारा जब बाल्टी को उतारा जाता है, तब बाल्टी सतह पर तैरती रहती है परन्तु जब रस्सी को हिलाकर बाल्टी को नमाया जाता है, तब बाल्टी मे पानी भर जाता है। व्यापारी तोलने के लिए तराजू के पलडे को अन्न की ओर नमाता है तो उस पलडे मे अन्न भर जाता है। मजदूर मिट्टी के ढेर की ओर कढाई को नमाता है। यह मिट्टी के लिए नमन नही, मिट्टी की तरफ नमना है ताकि उसकी कढाई भर जाये। इसी प्रकार अरिहन्तो की तरफ नमन से हमारे भीतर पात्रता आती है। अरिहन्तो की ओर झुकने से अरिहन्त की अर्हता के गुण हमारे भीतर आते है। बाल्टी झुकती है तो भीतर की वायु बाहर निकलती है और पानी भर जाता है। उसी प्रकार जब हम मन, वचन और काया के योग को और भावो को जोड़कर अपने जीवन-पात्र को झुकाते है तो अर्हता हमारे भीतर समाविष्ट हो जाती है, विषय वासना की वायु भीतर से रवाना हो जाती है। हमारा मनोबल बढ जाता है, हमारी विल पावर स्ट्राग हो जाती है। फिर हमारे भीतर कच्चापन नहीं रह पाता। पहले के श्रावक आस्थावान होते थे। चाहे जैसी परिस्थिति हो पर शासन से विमुख नही होते थे। उनके लिए सत्य यह था—

चइत्तु देहं न तु धम्म सासणं।

देह त्यागना मजूर है पर धर्म-शासन का त्याग नही। उनमे ऐसी दृढ़ता इसलिये आती थी क्योकि उन्होने अरिहन्त की तरफ नमन किया होता था। अरिहन्त का अर्थ शत्रु का हनन करने वाला लिया जाता है किन्तु यह वहुत सकुचित और छोटा अर्थ है। अरिहन्त का अर्थ है—'अर्हतता' यानी ऐसी सामर्थ्य प्राप्त करना, जिसके पाने के बाद कुछ पाना शेष न रहे। वह सर्वशक्तिमान अवस्था है, उसके बाद शत्रु-हनन की बात तो निरर्थक ही हो जाती है। अति व्यापक विशाल अर्थ को छोड़ हम ओने-कोने मे न जाएँ। यह विशालता उन्हे मिली है अन्तराय कर्म के क्षय से और इसी के वल पर वे वदनीय, पूजनीय, नमनीय बने है। हम नमते है ताकि उनकी अर्हतता, उनके गुण हमारे भीतर भी प्रविष्ट हो जाये। प्रश्न होगा कि वे प्रविष्ट कैसे होगे ? यह बहुत आसान बात है। इस सिद्धात का एक प्रयोग किया जा सकता है। एक प्रयोग किया भी गया। एक चुहिया को ऊपर रखा गया और उसके छ वच्चों को पनडुब्बी मे डालकर एक वैज्ञानिक समुद्र की हजार किलोमीटर की गहराई मे नीचे पहुँच गया। उसे बतला दिया गया था कि इतने समय वाद इन्हे समाप्त करना है। निश्चित समय का उल्लेख तो नही किया गया था परन्तु निर्देश दे

दिया गया कि आठ घटे के बाद इन्हे समाप्त करना है एव जिस समय समाप्त किया जाय वह समय नोट कर लेना है। पनडुब्वी मे इसलिए ले गये क्योकि उसमे रेडियो किरणे प्रविष्ट नही होती। पनडुब्बी नीचे उतारी गई। ऊपर रखी चुहिया के E E G का यत्र लगा हुआ था। इस यत्र मे भावो के ग्राफ अकित हो जाते है और अध्ययन करने वाला इन ग्राफो के माध्यम से जान सकता है कि उसके भीतर क्या भाव चल रहे है उसी प्रकार जिस प्रकार E C G की रेखाओ से डाक्टर हृदय गति का निर्धारण कर लेता है। चुहिया के ऊपर लगे यन्त्र पर भी ग्राफ उभरने लगे। उस ग्राफ का अध्ययन किया गया तो ज्ञात हुआ कि जब-जब नीचे उन बच्चो को क्रम से मारा गया तो चुहिया के मस्तिष्क मे प्रकम्पन होने लगा, छ बार मारने पर, छ बार ही धक्के लगे जैसे गाड़ी का *ब्रेक लगाने पर धक्का लगता है। जब पनडुब्बी से ऊपर आकर समय का* मिलान किया गया तो ज्ञात हुआ जिस समय बच्चे मारे गए ठीक उसी समय धक्का लगा था। आत्मा का रिश्ता कितना गहरा होता है यह टेलीपैथी के सिद्धातो से सिद्ध किया जाता है। इसी तरह अरिहत की अर्हता की दिशा मे भावधारा झुकाने पर अर्हता प्रविष्ट हो जाती है। यदि भावधारा विषय-वासना की ओर झुके तो उसके भीतर वही प्रविष्ट होगी। घड़ा झुकता है तो वायु बाहर निकलती है, उसी प्रकार व्यक्ति अरिहन्त के प्रति झुकता है तो विजातीय तत्त्व, विषय वासना आदि बाहर निकल जाते है।

अर्हन्त तो निमित्त रूप है। हमारा प्रयोजन उनके गुणो को प्राप्त करना है। प्रभु ने कहा है साधु को कोई नमस्कार नही करे तो वह क्रोध नही करे। नही किया तो उसका क्या बिगड़ा ? और कोई करे तो हर्ष, उत्कर्ष, अभिमान भी नही करे क्योकि अभिमान से आत्मा नीचे गिरती है। नमन करने वाला अपनी सामर्थ्य को जाग्रत कर लेता है। सेठ माणकचद नमस्कार महामंत्र के प्रति अनन्य आस्थावान था। वह श्रावकोचित गुणो से सम्पन्न भी था। प्राचीन काल मे आज की तरह यातायात के साधन नही थे। सार्थ चलता था अर्थात् एक मुखिया और साथ मे अन्य व्यापारी चलते थे। सेठ ने कहा—रास्ते की सारी व्यवस्था अर्थात् खाने-पीने आदि का खर्च मै वहन करूँगा। तुम साथ मे चलो, व्यापार करने। यदि मुनाफा हो तो बारह वर्ष मे दुगुना लौटा देना। मुनाफा न हो तो मूल पूजी लौटा देना और यदि घाटा लग गया तो उसकी पूर्ति की जिम्मेदारी मेरी है। घाटा मेरा, मुनाफा आपका। और जब कोई पुण्य पुरुष का आधार लेकर व्यापार करता है तो नुकसान लगभग नही होता क्योकि सामने वाले का पुण्य जुड जाता है। रास्ते मे पड़ाव लेता हुआ सार्थ आगे बढा। एक दिन बीहड़ जगल मे पड़ाव था। सेठ ने

कहा—आप सभी सो जाओ। व्यापारियो ने कहा—'जगल बीहड है, लुटेरो का भय है, धन-माल की रक्षा कैसे होगी ?' सेठ ने कहा—'आप सभी निश्चिन्त रहिये, मै रक्षा करूँगा।' सभी सो गए। सेठ महामत्र के स्मरण मे लीन हो गया। अपने-आपको झुका लिया। उसकी रग-रग मे श्रद्धा परिव्याप्त हो गई। ध्यान पूर्ण हुआ। सेठ ने भी आसन बिछाया, सो गया। लुटेरो ने देखा कि सब सो गए है अब लूट-पाट के लिये चलना चाहिये। पर यह क्या ? उन्होने देखा—सार्थ के चारो ओर पैतीस घुड़सवार सशस्त्र पहरा दे रहे थे। चौतीस घुडसवार तो सर्वांग उपस्थित थे पर एक के गर्दन नही थी, सिर्फ धड था। लुटेरे विचार मे पड गये। ये सब दिन मे तो नही थे ? अभी कहाँ से आ गए ? लुटेरे मन मसोसकर रह गये। उषाकाल मे जब सार्थ के व्यक्ति जागे तब वे पहरेदार जाने कहाँ चले गये थे। दूसरे दिन सार्थ रवाना हुआ, लुटेरो ने पीछा किया, पर सेठ की सशस्त्र सेना कही नजर नही आई। रात्रि मे पुन सेठ की वही प्रक्रिया रही। परिणाम भी पूर्ववत रहा। लुटेरे विस्मित हो गये। दिन मे उपस्थित होकर लुटेरो ने सेठ से पूछा कि यह क्या चमत्कार है और रात्रि का दृश्य कह सुनाया। सेठ ने कहा—'मुझे नही मालूम कि कौन सैनिक रक्षा करते है। अच्छा एक दिन और देखना।' अब सेठ ने विचार किया कि महामत्र मे पैतीस अक्षर है और एक-एक अक्षर का एक-एक अधिष्ठाता देव है। सभव है जब मै तन्मयता से समर्पित होता हूँ, अरिहत के चरणो मे सर्वस्व सौप देता हूँ तब अरिहन्त की सेवा मे रहने वाले देव अर्थात् अरिहन्त के भक्तो की सेवा करने वाले देव उपस्थित हो जाते हो। क्योकि अरिहन्त स्वय तो कोई सेवा लेते नही और हो सकता है मेरी कही त्रुटि होने की वजह से एक सैनिक की गर्दन गायब रहती हो अत· मुझे सावधानी रखनी चाहिये। उस रात्रि उसने बहुत सावधानी से ध्यान किया और लुटेरो ने देखा कि पैतीस ही व्यक्ति सर्वांग उपस्थित थे।

आज व्यक्ति सोचता है कि चमत्कार कैसे हो जाते है ? व्यक्ति जब श्रद्धाभिभूत होकर अर्हतता के लिए तन्मय हो जाता है तव वह अवस्था अनिर्वचनीय होती है। लेकिन 'सद्धा परम दुल्लहा' अर्थात श्रद्धा परम दुर्लभ है। आज यह बात ग्राफ से सिद्ध की गई है। एक व्यक्ति घोर निद्रा मे है, एक ध्यान मे और एक अन्य श्रद्धाभिभूत है। E E G मे जो ग्राफ अकित हुए उनका अध्ययन करने पर ज्ञात हुआ कि स्वप्न से रहित अवस्था मे ही गहरी नींद आ सकती है। वह शात अवस्था होती है, ध्यान मे व्यक्ति की वासनाएँ शात और मन तनाव से रहित शात अवस्था मे होता है, भावधारा निर्मल होती है तथा शुभ लेश्या की अवस्था ध्यान मे ही वनती है। श्रद्धावान भी उतना ही शातचित्त पाया

जाता है। आज मनोविज्ञान और विज्ञान ने जैन सिद्धान्तो को सिद्ध कर के दिखा दिया है जबकि हम आज तक सत्य खोज नही पाये है। कहा जाता है कि जब व्यक्ति श्रद्धाभिभूत हो जाता है तो उसमे अल्फा किरणो का सचार होने लगता है। वायुमडल, मस्तिष्क सब शात हो जाते है। कही भी दु ख-दर्द का लेश भी नही रहता पर श्रद्धा परम दुर्लभ है। अवस्थाओ के आधार पर निर्मित श्रद्धा प्रतिकूलता मे टिक नही पाती। विचार बन जाते है कि हम दर्शन के लिए आये पर दर्शन नही हुए, मागलिक नही मिली तो श्रद्धा हवा मे उड जाती है। आपने सतो को वदन किया, सतो ने जवाब नही दिया। उस स्थिति मे श्रद्धा घटेगी या बढेगी, यह तो परीक्षण करने पर ही मालूम होगा। कही यह न कहने लगे जैसे नाथद्वारा के पट बद रहते है वैसे ही वहाँ जाओ (सत दर्शन के लिए) तो पट बद मिलते है। सतो ने 'दया पालो' नही कहा तो कही भावनाओ पर चोट तो नही लगी ? सभव है सत अध्ययन, अध्यापन या अन्य सयमी चर्या मे व्यस्त हो अत ध्यान न दे पाये हो इसलिये उनके व्यवहार पर विचार नही करना चाहिये। ऐसा होने पर ही ज्ञात होगा कि आपकी श्रद्धा की क्या-कुछ अवस्था है। एक दृष्टात ले। प्रभु अरिष्टनेमि द्वारिका मे विराजमान थे तभी श्रीकृष्ण के दो पुत्रो मे परस्पर मात्सर्य उत्पन्न हो गया। एक सोचता था कि पिताजी मुझे नही दूसरे को ज्यादा चाहते है और दूसरा सोचता है कि मुझ पर पिता का कोई स्नेह भाव नही है, हालाकि श्रीकृष्ण के मन मे ऐसा कुछ नही था। लेकिन जब उन्होने उनकी भावना जानी तो कहा—भगवान उद्यान मे विराजित है। जो प्रात काल पहले जाकर उन्हे नमस्कार करेगा उसे पुरस्कृत करके अमुक क्षेत्र का राज्य दे दिया जायेगा। दोनो सो गये। एक ने अर्धरात्रि के बाद उठकर विचार किया—यदि मै जल्दी वहाँ पहुँच जाऊँ तो सूर्योदय के साथ ही मै प्रथम वदन कर सकूगा और पिताजी द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार का अधिकारी बन जाऊँगा। वह शीघ्र ही वहाँ पहुँच गया और वदन करते हुए प्रभु के पैरो को हिला-हिला कर कहने लगा—'भगवन् मै वदन कर रहा हूँ, भगवन् मै वदन कर रहा हूँ।' तीन बार पैरो को झझोड़कर वदन किया। दूसरे ने सोचा—भगवान् अरिष्टनेमि सर्वज्ञ है। कही से भी वदन किया जाय, उन्हे परिज्ञान हो ही जायेगा। उसने प्रभु की दिशा मे अपने-आपको नियोजित कर लिया और पूर्ण श्रद्धाभाव तथा मन, वचन और काया की तन्मयता के साथ वदन किया। प्रथम पुत्र पहुँचा पिता के चरणो मे। कहने लगा—'मै विजयी हुआ हूँ अत मुझे पुरस्कार दीजिये।' श्रीकृष्ण ने कहा—'इसका निर्णय मै नही, भगवान ही करेगे। चलो प्रभु के चरणो मे।' वे पहुँच गये और प्रभु के सम्मुख अपनी

जिज्ञासा व्यक्त की। प्रभु ने फरमाया— 'जिस व्यक्ति ने घर पर बैठकर अपने पात्र को अरिहन्त की तरफ झुकाया, अपने भीतर सामर्थ्य पैदा की, उसका ही वदन फलीभूत होगा और जो यहाँ आया उसने मात्र कायक्लेश किया, उसके भावो मे पुरस्कार और राज्य समाया हुआ था।' देखिये, स्वय त्रिलोकीनाथ कह रहे है कि साक्षात् वदन करने वाले ने कायक्लेश किया। घर से ही वदन करने वाले ने टेलीपैथी सिद्धात के अनुसार अपने भीतर किरणे प्राप्त कर ली।

ऐसे भाव-वदन से ही पापो का नाश हो सकता है। सेठ माणकचद ने श्रद्धाभिभूत होकर वदन किया तो वह यथार्थ मे फलदायी बना। नमन से निर्वाण की भी समझ ली जानी चाहिये। निर्वाण कब होगा ? जब निर्वाण के प्रति अपने पात्र को झुकाया जायेगा। यदि हमारे भीतर काम, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि के भाव है तो वे सुविधिनाथ भगवान् की वदना से बाहर निकलेगे और उनके स्थान पर गुणो का प्रवेश होगा। सोच्चा जाणइ कल्लाण, सोच्चा जाणइ पावग—हम सुनकर ही कल्याण और पाप को जानते है, अब निर्णय आपको करना है कि हम पात्र किधर झुकाये। हम जानते है कि व्यापारी की ओर झुकने वाला व्यापार के गुर प्राप्त कर लेता है। एक पहलवान के प्रति नमने वाले मे वे गुण समाविष्ट हो जाते है जो पहलवान मे होते है। और शिष्य यदि गुरु के प्रति समर्पित हे तो उसके लिये उत्तराध्ययन सूत्र के ग्यारहवे अध्ययन मे कहा गया है—'वसे गुरुकुले निच्च। बारह वर्ष तक गुरु के सान्निध्य मे निवास करने से, गुरु की उपसम्पदा स्वीकारने से, गुरु के गुण शिष्य मे समाविष्ट हो जाते है। हम यह भी जानते है कि जिसका रुझान जुआ, शराब आदि व्यसनो के प्रति होगा तो उसमें उन्ही की प्रतिक्रिया फलित होगी। इन बातो को समझकर अपने हिताहित का विवेक करे।

एक और दृष्टात ले। दशार्णभद्र राजा प्रभु के दर्शनार्थ आडम्बर के साथ जाने लगे। विचार किया—मै इस प्रकार जाऊँगा जैसे कोई भी नहीं गया होगा। उसने विशाल चतुरगिणी सैना तैयार करवाई। उधर शक्रेन्द्र भी तैयारी मे लगे। उन्होने देखा जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे राजा दशार्णभद्र को। अरे। ये दूध के भीतर खून की वूदे क्यो ? इस प्रकार की स्थिति से वह प्रभु के प्रति झुक नही पायेगा। शक्रेन्द्र ने चौसठ हजार हाथियो की रचना की। हाथी भी ऐसे, जिनके पॉच-पॉच सौ मुख थे। एक-एक मुख पर आठ-आठ दॉत थे और एक-एक दॉत पर आठ-आठ बावडियॉ थी। एक-एक वावड़ी मे हजारो-हजार कमल के फूल खिले थे। प्रत्येक कमल के एक-एक लाख पखुड़ियॉ थीं और प्रत्येक पखुडी पर बत्तीस-बत्तीस सौ नाटक चल रहे थे। उस नाटक को शक्रेन्द्र कमल-कर्णिका पर स्थित सिहासन पर आरूढ होकर देख रहा था। शक्रेन्द्र अकेला ही

कमल-कर्णिका पर नही बैठा था वरन् उसका सम्पूर्ण परिवार भी कमल-कर्णिका पर बैठ कर नाटक देख रहा था। इस प्रकार की विशाल गज-सेना के साथ शक्रेन्द्र आकाश मार्ग से नीचे उतरा।

उधर दशार्णभद्र राजा की सवारी और इधर शक्रेन्द्र की सवारी। दशार्णभद्र राजा ने सोचा—अरे! यह कैसी अद्‌भुत रचना है! मेरा तो अवमूल्यन हो गया। मै शक्रेन्द्र की बराबरी नही कर सकता किन्तु अपयशमय जीवन भी नही जी सकता। तब मै अपने जीवन को कैसे यशस्वी बनाऊँ? प्रभु की देशना सुनी, वैराग्यरजित हुए, साधु बन गये और समवसरण मे नवदीक्षितो की श्रेणी मे जाकर बैठ गये। शक्रेन्द्र ने वदन करते हुए कहा—'यह क्षमता मुझमे नही है। भौतिक सम्पत्ति मे मैने बराबरी कर ली पर मुनि जीवन की सामर्थ्य मुझमे नही है।' प्रभु की एक देशना मे उस सम्राट् ने अपना पात्र मोड़ दिया। हम भी सुनते है पर परिणमन क्यो नही होता? हम तर्क मे उलझ जाते है। जहॉ हमारे मन मे उलझन होगी वहॉ हम श्रद्धाभिभूत नही हो पायेगे। नमस्कार मत्र मे हम किसी व्यक्ति विशेष के प्रति नही, वरन गुणो के प्रति झुकते है जिससे वे गुण हममे भी समाविष्ट हो जाये। गुण किसी की बपौती नही। गहरी श्रद्धा के साथ वदन मे लीन हो जाये तो फिर 'सव्व पावप्पणासणो' की स्थिति यथार्थ मे बन जायेगी और वह हमारी अनुभूति मे गुणोत्कर्ष करने वाली होगी। अत हमे अपनी भावधाराओ को मोडना होगा। आज व्यक्ति तर्क करता है कि पर-दर्शनी को क्यो वदन नही करना? जो गच्छ से बाहर किया गया है उसके प्रति श्रद्धा, वदन क्यो नही? आनद श्रावक ने प्रभु से प्रतिज्ञा ली थी—'मुझे पर-दर्शनी से परिचय वदन, वार्तालाप करने का त्याग है।' प्रश्न हो सकता है कि भगवान ने अपने श्रावको को इतना सकीर्ण क्यो बना दिया? समाधान है—यह सकीर्णता नही है अपितु यह निर्देश है क्योकि जिस ओर पात्र झुकेगा तदनुरूप गुणो की अवाप्ति होगी। इसीलिए प्रभु ने कहा है—परमार्थ को जानने वालो की सेवा-भक्ति करो ताकि परम अर्थ—मोक्ष—निर्वाण की प्राप्ति हो। यदि घड़ी के पैण्डुलम की भॉति अस्थिर बने रहे तो इधर-उधर कही के भी नही रहोगे। एकनिष्ठ श्रद्धा के साथ वदन विधि के सही स्वरूप को समझे। गीताजी मे ऐसे व्यक्ति को श्रद्धामय पुरुष कहा गया है। ऐसे ही श्रद्धा से पूरित हृदय मे आनद का निर्झर प्रवाहित होता है। फिर कोई अवसाद भाव नही, कोई तनाव शेष नही रहता। यदि हम ऐसी श्रद्धा विकसित कर पाये तो सत्-चित्-आनदमय अवस्था के साथ मगलमय दिशा मे प्रयाण कर पायेगे। ❖

भाद्रपद कृष्ण [illegible]

६-९-९८

संयोगों की माया

शास्त्रो मे कहा गया है—

सजोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।

इन सयोगो की माया विचित्र है। ये शुभ और अशुभ दोनो प्रकार के होते है। सयोग जब भावधाराओ मे गहराई से सयुक्त होते है तब प्रसग उस स्थिति मे पहुँच जाते है कि आत्मा बेभान हो जाती है। हम जानते है कि भावधारा की स्थिति आत्मा के लिए बहुत महत्त्वपूर्ण है। भावधारा जिस दिशा मे प्रवाहित होती है मन भी उस ओर मुड़ जाता है। अनेक बार ऐसे प्रसग देखे-सुने जाते है कि शात-प्रशात व्यक्ति सहसा उद्विग्न हो जाता है, आवेश मे आ जाता है। उसका भी कोई कारण होता है। मुख्य कारण तो भावधारा ही होती है परन्तु उसके साथ मन, वचन और काया जुड जाते है जबकि हम केवल मन को दोष देते है। चूल्हे पर रखी बटलोई मे नीचे आग होने से उसके पानी मे उफान आता है, चचलता आती है। यही दशा मन की है।

एक दृष्टात से इसे समझे। राजा भर्तृहरि बैठे हुए थे। एक व्यक्ति अमरफल लेकर पहुँचा और राजा को भेट किया। उसने बताया कि उस फल को ग्रहण करने वाला अमर हो जाता है। राजा के चित्त मे विचारो का प्रवाह चला—यह फल मै किसे दूँ? रानी पिगला मुझे बहुत प्रिय है। यदि उसे यह सौप दूँ तो उसका सौदर्य और रूप-लावण्य अमर हो जायेगा। राजा को यही उचित लगा और उसने पिगला को फल दे दिया। रानी चिन्ता मे पड़ गई। इस फल का मै क्या उपयोग करूँ? यदि मै अपने प्रेमी को अमर कर दूँ तो मेरे मनोरथ फलीभूत होगे। रानी स्वय हाथियो को वश मे करने वाले एक महावत पर मोहित थी। उसने फल अपने प्रेमी को सौपकर उसके गुण भी बता दिये। वह महावत एक वेश्या पर अनुरक्त था। उसने वेश्या से कहा—'प्रिये, तुम्हारे लिए अमरफल लाया हूँ। इससे तुम्हारा रूप, यौवन अमर हो जायेगा।' वेश्या ने फल को देखा और चिन्तन किया कि यदि मैने फल को खा लिया तो ससार मे अपनी अमरता से पापाचार ही बढाऊँगी। मेरी तो जिदगी पाप मे ही बीत रही है, इसे क्यो बढाऊँ। अच्छा तो यह होगा कि यह फल मै किसी सत अथवा

श्रेष्ठ व्यक्ति को सौप दूँ ताकि वह अमर होकर इस धरा पर सत भाव का प्रचार करे और नैतिकता का वातावरण बनाये। वह विचार करने लगी कि ऐसा नीतिवान सत पुरुष कौन हो सकता है। उसे ध्यान आया—हॉ, राजा भर्तृहरि नीतिवान है और प्रजावत्सल भी है। क्यो न यह फल उन्ही के सुपुर्द कर दूँ। और वह पहुँच गई राजा के पास। राजा ने ज्योही वह फल देखा तो सोचने लगे कि अरे। यह फल तो कुछ समय पहले मेरे पास था। इसके पास कैसे पहुँच गया ? मैने तो रानी को सौपा था। राजा ने वेश्या से पूछा 'तुम्हे यह फल कैसे मिला ? सत्य-सत्य कहना अन्यथा भारी दड दिया जायेगा।' वेश्या प्रकम्पित होने लगी। यह क्या बात है ? उसने कहा—'यह फल तो मुझे महावत से प्राप्त हुआ है।' वेश्या को एक ओर बैठने का निर्देश देकर राजा ने महावत को बुलाया। अमरफल राजा के सामने पड़ा था। महावत उपस्थित हुआ। राजा ने सकेत करते हुए पूछा, 'यह फल कहॉ से लाये ?' पहले तो उसने बताने मे आनाकानी की पर मार के डर के सामने भूत भी भागते है।

भूतो की बात पर पूज्य गुरुदेव द्वारा वर्णित एक कथा याद आ गई। एक सेठानी पर अक्सर भूत आ जाता था। वह दॉत बद कर लेती और शरीर कड़ा करके गिर जाती। परिवार वाले परेशान होते, पता नही क्या बीमारी है ? डॉक्टर से भी इलाज करवाया पर भूत तो ऊपर से आता था। उसका इलाज कैसे होता ? भूत निकालने का उपचार एक नायन जानती थी। जब भी प्रसग पड़ता उसे बुलाया जाता। वह कमरा बद करके उपचार करती और हर बार पॉच रुपये की भेट प्राप्त करती। एक दिन सेठ ने विचार किया—यह भूत सिर्फ नायन ही निकालना क्यो जानती है ? यह कला हमे भी सीख लेनी चाहिए, कदाचित् नायन न रहे तो उपचार तो हम कर ले और व्यर्थ मे पॉच रुपये का खर्च भी न हो। उन्होने नायन से पूछा तो उसने कहा—आपके सीखने का फल नही होगा। सेठजी उस समय तो चुप हो गये पर सीखने के अवसर की प्रतीक्षा करने लगे। एक दिन सेठानी के पुन तकलीफ हुई। नायन को बुलाया गया। सेठजी ने कमरे के द्वार पर छिद्र बना लिया था। नायन ने कमरा बद किया। सेठजी उस छिद्र मे से देखने लगे कि यह क्या प्रयोग करती है। नायन ने सेठानी का नाक पकड़ा, हाथ मे एक बड़ा पत्थर लिया और कहने लगी, 'दॉत खोलती है या नही वरना तोड़ू तेरी बत्तीसी।' और सेठानी का भूत उतर गया। सेठजी भी जान गए कि डर के सामने भूत भागते है। अस्तु राजा ने भी महावत को भय दिखाया। उसने बात उगल दी—'यह मुझे महारानी से मिला है। राजा को भयकर क्रोध आया। मैने रानी को फल दिया था तो क्या ? लेकिन राजा

तुरत ही सभल गया। चिन्तन का प्रवाह उमडा। राजा को सयोग की दुर्बलता समझ मे आ गई कि भावधारा मे बैठकर मैने रानी से सयोग कर रखा है। दूसरे ही क्षण क्रोध बोध मे परिणत हो गया। त्रुटि मेरी है, मैने भावधारा मे पिगला को जोडा है अन्यथा मुझे क्यो पीडा होती ?

हम जानते है कि दुर्घटनाएँ होती है और कई व्यक्ति बुरी तरह से घायल हो जाते है पर यदि उनसे हमारा पारिवारिक सबध होता है अथवा वे हमारे आत्मीय होते है तो ही हमे व्यथा होती है क्योकि भावधारा मे उनके प्रति हमारा सयोग होता है। कभी-कभी व्यक्ति भान भूल जाता है। जब कृष्ण की आत्मा देह से रवाना हो गई तब बलदेव, जो कृष्ण के बडे भ्राता थे तथा कृष्ण से अनन्य रूप से जुडे हुए थे, को भीषण व्यथा हुई। कथा भाग मे आता है कि वे उस निर्जीव शरीर को लेकर घूमते रहे। वे मानने को ही तैयार नही थे कि कृष्ण उस शरीर मे नही रहे थे। लेकिन जब उन्हे बोध हुआ तो वे समझ गये कि भावधारा के सयोग से ही उन्हे दु ख हुआ था। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि सबध गहराता जाता है तो मुक्ति की स्थितियॉ भी दूर होती जाती है। प्रभु भी यह कह रहे है। राजा भर्तृहरि को भी बोध हो गया—यदि सयोग नहीं जोडू तो दु ख भी नही होगा। यह सयोग ही सासारिकता है। कभी-कभी सत कहते है—

दुनिया दु:खकारी, तू छोड सके तो छोड, दुनिया दु:खकारी।

क्या करना पड़ता है दुनिया मे ? अठारह पापो का व्यापार। यदि सम्यक्त्वी है तो मिथ्यात्व टल जायेगा। केवल ससार बसाने के चक्कर में व्यक्ति न जाने क्या-क्या करता है ? पहले वह ससार का नक्शा भावधारा में बनाता है फिर आगे महल-निर्माण मे जुट जाता है। सयोग जुड़ने पर ही द्वद्व की अवस्था बनती है। क्योकि ज्यो-ज्यो धन, भोग आदि बढते है त्यो-ही-त्यो उनकी लालसा भी बढती जाती है। कहा भी है—जिमि प्रतिलोभ लोभ अधिकाई। सयोग की इस महिमा को राजा ने समझ लिया और उसका क्रोध हवा हो गया। मानो सुलगती आग पर बर्फ की शिला आ गिरी, आवेग शान्त हो गया। भावधारा का प्रवाह दूसरी ओर मुड़ गया और उन्होने एक निर्णय किया। यह सब तो मेरे द्वारा ही किया गया है, मेरे ही कार्यो का परिणाम है—'कडाण कम्माण न मोक्ख अत्थि' कृत कर्मो के भुगतान विना मुक्ति नहीं हो सकती। राजा ने सत्य की अनुभूति कर ली और इसके वाद उनके जीवन का प्रवाह ही बदल गया। उनकी कथा से हम सभी भलीभॉति परिचित है।

पातजल योग दर्शन मे कहा गया है—

चित्त नदि उभयतो वहती, वहती पापाय च पुण्याय च।

अर्थात् यह चित्त रूपी नदी पुण्य और पाप दोनो ओर बहती है। राजा ने भावधारा पर सयोग की जो रेखाएँ थी उन्हे मिटाने का उपक्रम किया था। प्रभु ने उसे निर्जरा की सज्ञा दी है। राजा उठे और चल दिये। वैराग्य भाव उदित हुआ और उन्होने अलख जगा ली। आज भी भर्तृहरि की कीर्ति उनके तीन शतको के कारण अक्षुण्ण है। ये शतक है—(1) नीतिशतक-नीति सबधी चर्चा (2) सौदर्यशतक—सौदर्य सबधी श्लोक और (3) वैराग्यशतक-विराग की चर्चा। इस प्रकार उन्होने प्रत्येक शतक के सौ-सौ श्लोक रचे।

यह तो एक दृष्टात था, मुख्य बात सयोगो की है जो एक भावधारा का निर्माण करते है और मन को अपनी ओर मोड़ लेते है। कामनाओ को इसीलिये मनोगत कह देते है हालॉकि मन कामनारूप नही होता। कामना तो आगन्तुक की तरह मन मे आती-जाती रहती है, मन मे हरदम नही रहती। लोग कहते है कि कामना मिटती नही पर सत्य यह है कि कामना टिकती नही। कामना निरन्तर नही रहती। वह तो छूट जाती है परन्तु मनुष्य दूसरी कामना पकड़ लेता है। यदि चित्त अथवा मन को वश मे कर लिया जाय तो कामनाओ के उत्पन्न होने और विलीन होने का क्रम भी टूट जाये। उस स्थिति मे मनुष्य अपने स्वरूप मे स्थित हो जाता है और स्वय सम्पूर्ण पदार्थो से निस्पृह हो जाता है। ऐसा मनुष्य योगी कहा जाता है, क्योकि जड़ पदार्थो से उसका सयोग टूट जाता है जैसा राजा भर्तृहरि के साथ हुआ।

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिये। सयोग न बने ऐसा तो मुश्किल है क्योकि दुर्बल मन के लिये सासारिकता से पूरी तरह विमुख हो जाना कठिन है। इस स्थिति से बचाव का अथवा इसके निराकरण का एक उपाय है—सयोग बने तो बनने दे पर सयोगजन्य सुख न ले और इस हेतु दृढ रहे। सुख लेगे तो नया सस्कार पड़ेगा। कोई कह सकता है कि एक बार सुख लेने मे क्या हर्ज है, बाद मे छोड़ दूँगा। बस, यह बाद मे होने वाला काम नही होता है—मोह उत्पन्न हो जाता है क्योकि सुख का अनुभव उसे त्यागने की मानसिकता बनने देने मे बाधा उत्पन्न करता रहता है। फिर एक बार का अनुभव आदत, प्रकृति या व्यसन बन जाता है जिसे प्रयास करके भी छोडना कठिन होता है। इसीलिये उद्देश्य यह रखना चाहिये कि हमे तो निर्वाण सुख ही लेना है, नया सुख नही लेना है। सुख-दु ख तो जीवन के क्रम मे आते रहेगे, पर उन्हे भोगो मत, उनके

प्रति उदासीन हो जाओ। अगर सुख-दु ख भोगते रहोगे तो इनका सस्कार भीतर बैठ जायेगा, फिर उसको दूर करने मे देर लगेगी।

आप सोचेगे—यह कार्य तो बहुत कठिन है। सयोगो से अपने-आप को अलग करे भी तो कैसे, वे तो बिना बुलाये आते है। आते है तो आने दो। बस, अपने चित्त को दृढ रखो। दृढता से मानो, विश्वास करो कि यह जो-कुछ आ रहा है, मेरा नही है, मेरे लिये नही है। जितना दृढ आपका चित्त होगा उतनी ही विलक्षणता आप मे आयेगी और काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य आदि को जीतने की ताकत आ जायेगी। यह ताकत लेने के लिये प्रयास भी नही करने पडेगे, केवल चितिशक्ति मे स्वय को स्थित करना होगा। सासारिक आकर्षणो और विकर्षणो को जीतने का इससे सरल कोई अन्य उपाय नही है। सयोगो की विचित्र माया से छुटकारा पाने का भी यही सरलतम मार्ग है। ❖

भाद्रपद कृष्णा 12
9-9-96

पर्युषण पर्व का संदेश

मन की दो अवस्थाएँ है—एक है उपाधि, दूसरी समाधि। जहाँ उपाधि का सबध जुड़ता है वहाँ आधि-व्याधि भी सयुक्त हो जाती है। उपाधि मनोरम, मनोहर, मनोज्ञ लगती है तभी यदि उपाधि का सूचन हो तो व्यक्ति का मन प्रफुल्लित हो जाता है। पर जो उपाधि एक क्षण के लिये प्रफुल्लता देती है वही कालान्तर मे व्यक्ति के मानसिक रोग का कारण और शारीरिक व्याधियो का उद्गम स्थल बन जाती है। उपाधिजन्य अवस्थाएँ एक नही, अनेक प्रकार की होती है। वे पद, साधना, धन आदि किसी भी रूप मे हो सकती है पर यदि व्यक्ति उपाधि के साथ जुड़ता है तो उसका प्रभाव पड़ता है। यद्यपि ऊपर से कुछ दिखाई नही देता पर वह व्यक्ति तनाव, विषाद, शारीरिक बीमारियो आदि से घिर जाता है। गहराई से अध्ययन किया जाय तो अनेक बार ज्ञात होता है कि व्यक्ति स्वस्थ तो है पर उसे भूख कम लगती है, तबियत गिरी-गिरी-सी रहती है और उसका शरीर कृश होता जाता है। कारण क्या है? डॉक्टर आते है और परामर्श देते है। पास मे पैसा है और डाक्टरो से सतोष नही तो किसी बड़े अस्पताल मे भी रोगी को ले जाया जाता है। डाक्टर ब्लड प्रेशर, स्टूल, यूरिन, फेफड़ो आदि की कुछ जॉचे कर लेता है लेकिन रिपोर्ट मे तो कुछ नही आता। कही विकार नही। डाक्टर सात दिन की दवा दे देता है या कुछ टॉनिक आदि लिख देता है। पर क्या इतने मात्र से वह बीमार ठीक हो जायेगा? मै एक पुस्तक पढ रहा था जिसमे उल्लेख था कि आज से पॉच हजार वर्ष पहले चीन मे डाक्टरो को फीस नही, वेतन दिया जाता था। प्रयोजन था कि कोई व्यक्ति बीमार नही पड़े। डाक्टर अपने कर्तव्य के प्रति जागरूक रहे—यह सुनिश्चित किया जाता था। यदि कोई बीमार पड जाता था तो हरजाना डाक्टर को ही देना पड़ता था। उससे कहा जाता था कि तुम्हे वेतन इसीलिए दिया जाता है कि व्यक्ति बीमार न पड़े। डाक्टर भी अपने कर्तव्य के प्रति सजग व तत्पर रहते थे। हम जानते है कि उपचार बीमारी आने के बाद होता है पर यदि पहले ही सावधानी रखी जाये तो बीमारी आये ही क्यो? आज तो यत्रो के माध्यम से ग्राफ लिए जाते है और अध्ययन करके बताया जाता है कि स्थिति कैसी है, वह स्वस्थ जीवन जी पायेगा या नही? आज रोग-विज्ञान का क्षेत्र बहुत विकसित

हो गया है। इस दृष्टि से आयुर्वेद विज्ञान का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह बात अलग है कि आज उस चिकित्सा पद्धति को समुचित स्थान नही मिल रहा है। वैद्य तो नाडी पर हाथ रखकर ही नही किन्तु केवल केश देखकर भी निदान कर सकता है। पर आज मशीनो के माध्यम से होने वाले अनुसधान जनता को विस्मित कर देते है। फिर भी कुछ रोग ऐसे है जिनका इलाज डाक्टर कर नही पाता क्योकि वे भौतिक पकड से बाहर के होते है। कभी-कभी रोग तन-मन तक ही नही, सूक्ष्म शरीर तक पहुॅच जाता है और आगे बढकर भावधारा से भी जुड जाता है।

मानसिक बीमारी मन तक सीमित होती है उसे आधि कहते है। पर जब उपाधि भावधारा के साथ गहनता से जुडती है तब वह व्याधि का रूप ले लेती है। इसीलिए ऐसे सयोग आत्मसाधना हेतु तत्पर साधक के लिए उपयुक्त नही है क्योकि उसे तो सयोग से ऊपर उठकर 'विप्पमुक्स्स' पर आना होता है। 'विप्पमुक्कस्स' शब्द अपने-आप मे महत्त्वपूर्ण है। मोट तौर पर 'विप्पमुक्कस्स' का अर्थ होता है 'रहित होना' पर रहितता भी अनेक प्रकार की होती है। अडतालीस मिनट के लिए आप भी रहित होते है जब आप सामायिक स्वीकार करते है पर साधु के लिए इस प्रकार की रहितता नही कही गई है। सिर्फ 'रहित' या 'मुक्त' (मुक्कस्स) से काम चल जाता तो शास्त्रकार 'वि' और 'प्र' उपसर्ग का प्रयोग क्यो करते? सूत्र मे प्रत्येक अक्षर, प्रत्येक पद और प्रत्येक मात्रा का महत्त्व होता है और अल्प शब्दो मे विस्तृत बात गुम्फित होती है। सूत्रकृताग सूत्र मे साधक के लिए कहा गया है—'निरुद्धग वावि न दीहइज्जा' अर्थात् अल्प शब्दो मे कही जाने वाली बात को व्यर्थ ही दीर्घ न करे। जितना हो, कम से कम वाक्यो मे विस्तृत बात कहने का प्रयास करना चाहिए। शास्त्र का यह आदेश है तो गणधर इस आदेश का उल्लघन कैसे कर सकते है? गणधर भगवन्तो ने एक भी अक्षर या मात्रा का निरर्थक प्रयोग नहीं किया। 'संयोग से मुक्त' की ही बात पर्याप्त थी फिर भी उन्होने 'वि' और 'प्र' का प्रयोग किया। इस प्रयोग के पीछे निहित उद्देश्य को समझ ले।

'वि' का अर्थ है—विशेष, विशेष रूप से। सामान्य रूप से आप यदि कहे कि 'म्हारे तो राग-द्वेष काई कोनी' तो क्या आपको वीतराग मानकर वदन कर ले? पर राग-द्वेष न होने का मतलब या भाव भी क्या आप जानते है? यहाँ 'राग-द्वेष' का प्रयोग सामान्य अर्थ मे किया गया है जिसमे तात्पर्य यह है कि आप अपनी प्रकृति की सरलता का बोध कराना चाहते है, अपने 'वीतराग' होने

की घोषणा नही कर रहे है। यह वैसी ही बात हुई जैसे किसी की विनम्रता पर उसे देवता कह दिया जाये। देवता कह दिये जाने से क्या वह देवता हो जाता है? नही, वह तो दुर्बल मानव प्राणी ही रहता है। इसी प्रकार किसी साहसी व्यक्ति को 'शेर' कह देने से वह पशु शेर नही हो जाता, रहता मनुष्य ही है। साहित्यशास्त्र की दृष्टि से यह अर्थोत्कर्ष का एक उदाहरण ही है। 'वि' उपसर्ग लगाकर 'मुक्त' शब्द को विशेष अर्थ का वाचक बना दिया गया है और साधक को यह गहरा सकेत दिया गया है कि वह ऊपर-ऊपर से ही सयोग-रहित नही हो वरन् भावधारा मे भी सयोग से मुक्त हो जाये। देखना यह होता है कि साधक की भावधारा से मुक्त है या नही। यदि नही है तो वह मन पर आक्रमण करेगी और उपाधि के कारण साधक आधि-व्याधि के चक्कर मे पड जायेगा। इस प्रकार 'वि' उपसर्ग विशेष सकेत का माध्यम बन गया है।

यदि सिर्फ 'वि' का ही प्रयोग होता तो भी काम चल जाता अर्थात् विमुक्कस्स, तब विमोक्ष-विमुक्ति अर्थ हो जाता परन्तु गणधर भगवतो का अभिप्राय इससे भी अधिक विशिष्ट की ओर सकेत करना था इसलिये 'प्र' का प्रयोग भी किया गया है। 'प्र' अर्थात् प्रशस्त। यह प्रकर्ष का द्योतक है। यहाँ यदि प्रकर्षेण अर्थ लिया जाय तो अर्थ ध्वनित होगा कि तुम्हारी सयोग से मुक्ति प्रकर्ष से अर्थात् लम्बे समय तक, जीवनपर्यन्त के लिए हो। साधु अड़तालीस मिनट के लिए नही, जीवनपर्यन्त के लिए मुक्त होता है। स्वाध्याय तो हम कई बार करते है पर यदि उसकी गहराई मे पैठे तो ही 'विशेष' और 'प्रकर्ष' को समझ पायेगे। एक-एक पद मे साधना का निष्कर्ष भरा हुआ है। इसीलिए तीर्थकर की वाचा को 'अतल' कहा गया है। जिसका तल नही है, जो इतनी गहरी—इतनी गहरी है कि उसमे जितने अधिक निमज्जित होते जाओ उतनी ही अधिक साधना की निष्पत्ति होगी और उतना ही अधिक रस प्राप्त होगा। पर आज हमारी मानसिकता ही बिगड गई है। पहले कहते थे—'गुरु बिना ज्ञान नही', पर आज कहा जाता है गुरु होता कौन है? हमारे पास शास्त्र मौजूद है, प्राकृत नही पढना जानते तो क्या हुआ, हिन्दी पढ लेगे। पर पढने मात्र से वह ज्ञान हासिल नही होगा। नन्दीसूत्र साक्षी है, उसमे कहा है कि एक-एक पद के अनत गम, अर्थ होते है। मै तो 'विप्पमुक्कस्स' का एक ही अर्थ कर रहा हूँ पर विशेष क्षयोपशम ज्ञानी इसकी विशेष व्याख्या कर सकते है। विभिन्न तौर-तरीके से उपाध्याय यशोविजयजी ने एक ही गाथा की चार माह तक व्याख्या की तो भी वे सम्पूर्ण अर्थ नही कह सके। चार माह तो क्या चार वर्ष और चालीस वर्ष भी कम है। उसके बाद भी कहना होगा 'नेति-नेति'। नेति अर्थात्

न इति। समुद्र विशाल है, अभी तो हम उसकी सवाल मे बैठे है। भरती को ही नही माप पाये है तो समुद्र-मापना तो दूर की बात है। प्रभु कह रहे है—एक पद के अनत गम अर्थात् अर्थ है पर हम कहाँ जान पायेगे। हम तो कह भी देगे अनत गम कैसे हो सकते है ? परन्तु इसे सिद्ध किया जा सकता है।

बात आज प्रारभ हुए इस पर्युषण पर्व से ही शुरू करे। मै कहूँगा कि आज हमारे पर्व की आराधना नशे से बढकर कुछ नही है। जैसे शराब की दूकान पर पहुचने वाला शराब की ओर आकृष्ट हो जाता है वैसे ही हम भी पर्युषण पर्व पर आ रहे है और जब आ ही गये तो विचार करते है कि आराधना करनी है। इस पर विचार के बाद नवरगी-पचरगी तप-त्याग कर लेते है। पर विचार करिए, पर्युषण पर्व की आराधना करने वाला कौन है—

हूँ कौन छूँ, क्या थी थयो, सु स्वरूप छे म्हारो खरू।
कौना संवंधी वलाना, राखी के ए परिहरू।।

हूँ कौन छूँ को जाना या नही ? यदि नही तो नशा है, बेहाशी है। हम ऊपर से बहुत-कुछ कर लेगे पर आराधना कैसी होनी चाहिए इस ओर ध्यान नही देगे। इसीलिए कह रहा हूँ। हे भव्यात्माओ, प्रभु ने जो सदेश दिया है—सयोग से विशेष रूप से, और प्रकर्ष से मुक्त होना है और दूसरे ही क्षण आपके भीतर पर्युषण घटित हो जायगा। पर्युषण का अर्थ है—परि+वस+अन अर्थात् 'परिसमम्तात' चारो तरफ से आत्मा के समीप बसना। आप कहेगे यह केसी बात हुई, अलग-अलग तरफ से भी जाना होता है क्या ? अवधिज्ञान का क्षयोपशम यदि पार्श्व भाग का है तो वह एक पार्श्व को जानेगा, शेष आगे, पीछे व दूसरे पार्श्व मे अधकार रहेगा। इसी प्रकार जिस ओर का क्षयोपशम होगा उसके अतिरिक्त शेष ओर अधकार की स्थिति रहेगी। पर यदि हम चारो तरफ से आत्मा के समीप आ जाये तो वह स्थिति होगी पर्युषण की। तव आत्मा मे अधेरा ठहर नही पायेगा। महासतीजी ने जो कहा कि जव तक पर्युषण है तभी तक जैन धर्म भी रहेगा पर क्या जैन लोगो ने ही जैन धर्म का ठेका ले रखा है। यदि हम आत्मा के निकट नही तो हम जैनी नही हो सकते। हम नामधारी जैन भले हो जायॅ पर जैनत्व-भाव हम मे नही जग पायेगा। प्रभु ने कहा है—कर्म से ही व्यक्ति व्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य आदि होता है। यदि व्राह्मण के भी कर्म चाण्डाल के है, वह क्रोध से आवेष्ठित है तो वह व्राह्मण नहीं, चाण्डाल है। मौन से मुनि और समता से ही श्रमण होता है। यदि वह वकवाद में पड़ गया, वचन गुप्ति नही रही तो वह मुनि नहीं हो सकता। यदि वह समता से विषमता मे चला

गया तो वह श्रमण नही रह पायेगा। नयो की परिभाषा गहन है। यदि भावो से जैनत्व नही, तो हम केवल लेबल लगा ले, जैन नही बन पायेगे। यह वैसी ही बात होगी जैसे असली घी के लेबल मे, डिब्बे मे वनस्पति भरा हुआ हो। आज का यह प्रचलन है। सोचिये, यह कैसी दशा है। लेवल लगा लिया पर सस्कारो मे जैनत्व के भाव तभी आयेगे जब भावधारा से सयोग को हटा दिया जाय। उस स्थिति मे ही हम जैनत्व के सच्चे अधिकारी बन पायेगे, उसी स्थिति मे ओर सच्चे अर्थो मे पर्युषण हमारे भीतर घटित होगा। ऐसा स्वरूप जानने वाला ही जैनी है, सिर्फ जैन कुल मे जन्म लेने मात्र से जैन कोई नही होगा। हरिकेशी चाण्डाल कुल मे उत्पन्न हुआ, अर्जुनमाली माली कुल मे, पर उन्हे भी प्रभु ने अपने धर्मसघ मे दीक्षित किया, ब्राह्मण आदि उच्च कुल से दीक्षित साधुओ के साथ उन्हे बिठाया। क्यो ? क्योकि उनके भीतर जैनत्व आ चुका था। इसलिए वे धर्मसघ मे शामिल किये गये जबकि अनेक राजे-महाराजे तक धर्मसघ मे शामिल नही किये गये थे।

मुख्य बात है भावधारा की। भावधारा मे यदि सयोगो की धारा प्रवाहित है तो वह 'समयाए समणो होई' नही रह पायेगा। भावधारा मे उफान आया तो समता का ढक्कन उछल जायेगा। आजकल तो नहीं मालूम पर मारवाड मे पुराने जमाने मे मोठ और बाजरी का खीचड़ा बनाया जाता था। जब बर्तन का ढक्कन खोलने की स्थिति आती तब वह इतना उछलता कि यदि चमड़ी पर छीटे पड़ जाते तो चमड़ी ही जल जाती थी। भीतर शक्ति का उभार होने से ढक्कन उछलता है, उसी प्रकार भावधारा मे विरूप विचार हो तो मन पर प्रहार होता है। मन जब प्रभावित होता है अथवा बीमार होता है तब उसके साथ काया भी घिसटती है। काया तो लाश या छाया की भाँति मन के पीछे घसीटी जाती है इसीलिए प्रभु ने सयोग से अलग होने की बात कही है। प्रारभ मे ही नियत्रण आवश्यक है क्योकि यदि तीसरी अवस्था तक बीमारी पहुँच गई तो फिर इलाज की बात नही रह पायेगी। भावधारा को स्वस्थ जाग्रत करने पर्युषण पर्व आता है।

जिन्होने आत्मा विकसाई है, उन्ही के लिये यह पर्व पर्युषण आया है और इसके आने से दुनिया मे आनद छाया है। परन्तु सच्चा आनद कहाँ है ? आनद आता है जब बुखार दूर कर लिया जाता है। बुखार अर्थात् सयोगो के योग का बुखार आया था उसे ही दूर किया गया है। पहले ही दवा कर ली यह ठीक रहा अन्यथा पर्युषण निकल जाने के बाद फिर दवा क्या काम आती ? यह आनद

का अवसर है—ऐसा मानेगे तो क्या आनद भाव से अलग हटना अच्छा लगेगा ? व्यक्ति को यदि व्यापार मे लाभ हो रहा है तो क्या वह उसे छोड़ेगा ? यदि यह आपकी अनुभूति है, लाभ है, तो घर-परिवार छूट जायेगे। पहले सामायिक करते थे वह सामायिक छूट जायेगी। कहाँ आया आपको आनद ? वह सम्पत्ति क्या जिसके आने से सामायिक छूट जाये। आनद का स्वरूप आपने क्या समझा है ? सामायिक करनी भी पडी तो मानो बेगार काट ली, मन सामायिक मे रमा नही तो रस भी कहाँ आया। आयेगा भी कैसे, भाव धारा मे तो सयोग बसा है। सयोग पुद्गलो का भी हो सकता है और यदि उसी की वजह से रस आया है तो वह सूख जायेगा।

एक व्यक्ति एक महात्मा के पास गया और बोला—'महात्मन्। मुझे मुक्ति का उपदेश दीजिये।' विचारिये कि मुक्ति क्या उपदेश सुनने मात्र से मिल जाती है ? उसके लिये तो पूरी निर्धारित कठोर प्रक्रिया अपनानी पड़ती है। वैद्यराजजी परपटी का इलाज करना चाह रहे है या आपको सग्रहणी दूर करानी है तो वैद्य के इशारे पर चलना होगा। यदि रोग ऑतो से दूर नही हुआ तो ऊपर से भले गोलियाँ खाते रहे, भीतर कीटाणु पनपते रहेगे। रोग एक बार दब गया, दस-पन्द्रह दिन दवाई लेकर आप रुक गये तो फिर वह पुन उभर सकता है। उससे मुक्ति नही हो पायेगी। इसी प्रकार यदि आपको भी मुक्ति चाहिए तो एक लम्बी कठोर प्रक्रिया अपनानी पड़ेगी। तभी पर्युषण का आपको सच्चा आनद आयेगा। आप कहेगे—अभी बालक छोटा है, क्या करे। बालक तो छोटा ही रहेगा आप भले सौ वर्ष पूरे कर ले, तब भी क्या आप सयोग को नहीं छोडेगे ? यदि नही छोडा और सम्बन्ध जुड़ा रहा तो विस्तार बढ़ता रहेगा। मुक्ति नही हो पायेगी। आप कह रहे है—हमने गुरु चरण ग्रहण कर लिये है। हॉ, कहा भी है—

जीत पकड ले चरण गुरु का, विन तार्‌यां ही तिर जासी।

पर पैर पकडने की तैयारी तो करनी पड़ेगी, कुछ तो करना ही होगा। पैसा प्राप्त करना है तो पुरुषार्थ करना होगा। मुक्ति प्राप्त करनी है तो उनके चरण पकड़ लीजिये। पर बाहर के पैर नहीं, उनकी कृपा के पैर। गुरुदेव की अन्तरात्मा जो-कुछ उचित समझती है, वही वे करते है। गुरुकृपा, गुरु का वरदहस्त हर स्थिति मे मगल करता है, रक्षा करता है। भगवान् पार्श्वनाथ पर कमठ ने उपसर्ग दिए और धरणेन्द्र पद्मावती ने सर्प के रूप में फन फैलाकर उनकी रक्षा की थी। पूज्य गुरुदेव के वरदहस्त के प्रभाव से आने वाले परीषहो

मे भी मार्ग मिल जाता है। यह है गुरु की कृपा, गुरु की महिमा। गुरु के प्रति समर्पित होना ही चाहिये क्योकि कहा गया है—गुरुणाम् आज्ञा अविचारणीया। पर इसके लिये सयोग छूटना आवश्यक है क्योकि सयोग जुडते ही हमारी नीद हराम हो जाती है। लेकिन यदि पर्युषण का सयोग जोड़ ले तो मोह-माया की नीद हराम हो जाये। पर यह बहुत कठिन है। कहा भी है—

एगो मे सासओ अप्पा, णाण दसण सजुत्तो।

यहॉ भी सयोग है, पर ज्ञान दर्शन से है जहॉ मोह-माया की नीद उड जायेगी, गति मे परिवर्तन हो जायेगा। कहा है—'तमसो मा ज्योतिर्गमय' अधकार को छोड, प्रकाश की ओर चलो। पर वह होगा कब ? जब पर्युषण का अर्थ अपने भीतर घटित हो जाये, चारो ओर से ज्ञान, दर्शन, चरित्र हमारी आत्मा मे पहुॅच जाय। पर्युषण यदि भावधारा मे गहरा जाये तो फिर 'एगो मे सासओ अप्पा' फलित हो जायेगा। अन्य बाते छाया लगेगी, जैसे मकान की छाया होती है, जब तक मकान रहता है। शरीर है तब तक छाया है, आत्मा तो शाश्वत है। सिद्ध स्वरूप मे छाया नही सिर्फ आत्म-अवगाहना रह जायेगी। बात तो मुक्ति की चल रही है, मुक्ति चाहिए तो आप दूसरो की तरफ मत देखिए। पहले अपने भीतर देखिए। स्वय को जगाना है—

उठ जाग रे चेतन, निदिया उडा ले मोह राग की।

जगाने के लिए तो सत आये है पर पहले मुॅह तो खोलो, तभी निवाला अन्दर प्रविष्ट होगा। जागने के लिए हृदय के पट खोलो अन्यथा महाराज कितना भी जगाये, आप सोते ही रह जायेगे। चिनगारी हो तो फूक लगाकर आग को बढाया जा सकता है पर चिनगारी हो तभी तो काम होगा। अपने भीतर के कषायो के सयोग को जला दो, फिर आप कभी नही भटकोगे। गुरु राह दिखा रहे है। गुरु कौन ? जो अधकार को रोकने वाला है। गुरु कोई मामूली चीज नही है, वह व्यक्ति नही, ऐसी शक्ति है जो अधकार को दूर करती है।

गुरु के पास पहुॅचा व्यक्ति निवेदन कर रहा है—मुझे मुक्ति का दो। महात्मा ने पूछा—अच्छा बताओ तुम कहॉ से आ रहे हो ? उसने नाम बताया। गुरु ने पूछा—क्यो गये थे ? उत्तर —पोते का सबं प्रश्न हुआ—मेरे पास क्यो आये ? उत्तर का दहुत न सत्सग-उपदेश कराते है, मै भी सत्सग विचार आया। महात्मा ने कहा—उठो, मेरे ने विचार

आया हूँ उपदेश सुनने और ये विहार करा रहे है। पर आया हूँ तो चलूँ तो सही। देखूँ, क्या करते है। सो महात्मा के पीछे-पीछे चलने लगा। महात्मा नदी के किनारे ठिठक गए, आसन पर बैठ गये, वह भी बैठ गया। नदी के परले पार मेला लगा हुआ था। यात्री आ-जा रहे थे। नदी मे एक नाव भी थी। व्यक्ति आते, पर मल्लाह कहता—मै केवल मनुष्यो को ले जा सकता हूँ, सामान को नही ले जाऊँगा। कई व्यक्ति विवशता मे सामान धर्मशाला के सुपुर्द कर बिना सामान जाने को तैयार हो गये। एक किसान ने कहा, भाई मै तुमसे अलग जगह नही मागूगा, पोटली का बोझ भी नाव पर नही डालूँगा, अपनी पोटली सिर पर या गोद पर रख लूँगा। अत इसे साथ तो चलने दो। उसने काफी हो-हुज्जत की, आक्रोश भी दिखाया पर मल्लाह ढीला नही पडा—सामान लेकर नही जाऊँगा, नाव डूब जायेगी। बिना सामान वाले बैठ गए और नाव रवाना हो गई। अब महात्मा ने उस व्यक्ति से कहा—'चलो।' उस व्यक्ति ने कहा—'मै मुक्ति का मार्ग पूछने आया हूँ।' महात्मा ने कहा—'मैने तुम्हे वही तो बताया है, और क्या चाहिए ? माथे पर यदि अतिरिक्त भार ले लिया है, सयोग जोड़ लिये है, गॉठे बॉध रखी है, तो नाव मे बैठकर मुक्ति मे नही जा सकेगे। नाव इस वजन को सहन नही कर सकेगी। गॉठे छोडने का सदेश देने के लिए ही पर्युषण पर्व आये है। सात दिन आराधना करने पर ही अंत मे उसकी निष्पत्ति होगी। मुक्ति के लिए भार को छोडना होगा। बोलो, तैयार हो क्या ?' उसने कहा, 'घरवाली से पूछना पडेगा'। महात्मा ने कहा—'तब तक यदि नौका चली गई तो ?' आप सभी सोचिये कि क्या करना है ? समझ लीजिये जैन समाज और जैन धर्म भावसागर मे पड़ी नैया है, पूज्य गुरुदेव इसके खिवैया है। दूसरे साधन से यात्रा मे खतरा है, दुर्घटना हो सकती है। पर इस नौका के खेवनहार चुस्त है अत इस बेड़े पर खतरा नही है। जो पार होना नही चाहे और बीच मे ही कूद पडे उसकी अपनी मर्जी। बेड़े पर बैठे तो माझी पार लगायेगा परन्तु बैठना है तो संयोगो को छोडना पड़ेगा। ये सयोग बोझ है जिनके लिये नाव मे स्थान नही। ये नाव को डुबो सकते है। चतुर खेवैया इन्हे नाव पर रखने नही देगा। शेप आपकी इच्छा है। बेड़े पर पार नही होना है या बीच मे ही छलॉग लगा दे और तैरना नही आता हो, तो क्या दशा होगी यह आपकी अनुभूति का विषय है। नौका मजबूत है और भवसागर से पार करने वाली है। सयोगो से यदि मुक्त हो गये तो यह बेडा आपको मुक्ति महल के द्वार तक पहुँचाने वाला है।

पर्व का अर्थ गॉठ भी है और महोत्सव भी। गॉठे तोड़कर ज्योति प्रकट की तो मुक्ति निकट होगी। आप कह रहे है मोक्ष दूर है पर मै पूछता हूँ कितनी

दूर है ? अरे आपके निकट ही मोक्ष है। आप पहले यही मुक्त होगे उसके बाद तो 'तत्थ गतूण्ण सिज्झई' अर्थात् वहाँ सिद्ध रूप मे अवस्थान होगा। पर्युषण पर्व यह सब समझ लेने का अवसर है। यह पर्व जगाने आया है, उठो जागो, इसका सदेश सुनो। इसका पहला सदेश है साधु बनो और सयोगो का बोझ त्यागो, जहाज मे बैठो, अपने-आप को तूफानो से बचा लो। यदि अभी नही जागे तो फिर अवसर कभी नही आयेगा। भगवान् ने कहा है—अहासुह। अरे महाव्रत नही तो 12 व्रत ही स्वीकार करो। 12 व्रतो मे भी कहा है कि समुद्र का पाप रूपी पानी, घड़े-भर मे सिमट जाता है। आत्मा को सयोजित करना है तो जीवन रूपान्तरित करना होगा। यह रूपान्तरण करने मे आप सक्षम है और समय भी है।

तावा सोना सुघड नर, टूट जुडे सौ वार।
मूरख हॉडी कुम्हार की, जुडे न दूजी वार।।

अर्थात् स्वर्ण, ताबा और सज्जन पुरुष बार-बार टूट कर भी जुड़ जाते है पर मिट्टी का घडा एक बार टूटने के बाद दुबारा जुड़ने वाला नही है। विचार कीजिये कि आप आखिर कहाँ तक भार उठायेगे ? यदि उन्ही गाँठो को लेकर चलना है तो आपकी मर्जी। लेकिन इससे सुख नही मिलेगा। यदि आपकी समझ मे यह बात आ जाये कि ससार मे वस्तुत सुख नही है तो सयोगो को त्याग देना। यह पर्युषण पर्व इस हेतु अपूर्व अवसर प्रदान करता है—यह आत्म आराधना का पर्व है। आगम कह रहा है—'उवसम्मइ तस्स होइ आराहणा' अर्थात जो उपशम करेगा उसकी आराधना होगी। गाँठे छोड़ो, नाव मे बैठने के लिए तत्पर बनो, फिर तो आत्मा मे स्वत ही आनदधारा प्रवाहित होने लगेगी। कवि कर रहा है—

शात सुधारस जल निधि, भवसागर मा सेतु, ललना

शाति रूपी अमृत की रस-धारा जो अभी सिकुड़ी हुई है यदि वह समुद्र के रूप मे विस्तृत हो जायेगी तो फिर वह कभी खाली नही होगी। तव प्रत्येक प्राणी उस रस से आप्लावित हो सकेगा। उसे प्रवाहित करने के लिए जब पुरुषार्थ जग जायेगा तब फिर श्री सुपार्श्वनाथ भगवान् की स्थिति को उपलब्ध करने मे कोई कठिनाई नही आयेगी। ❖

भाद्रपद कृष्णा 13
10 9-96

भाव-संयोगों के त्याग का मार्ग : शोधन

हम सुपार्श्वनाथ भगवान् की प्रार्थना करते है। प्रार्थना का उद्देश्य यह होता है कि हम भगवान् सुपार्श्वनाथ, जिनेश्वर तीर्थकर के प्रति स्वय को नवा ले ताकि जिनवाणी के उद्गम स्रोत से निकली पावन धारा हमारे भीतर भी व्यवस्थित रूप से प्रवाहित हो सके, उस वीतरागवाणी से विपरीत परिणति नही बने और हमारी श्रद्धा, प्ररूपणा और क्रिया उस वाणी के अनुरूप बने। प्रभु महावीर ने अपनी अतिम देशना मे मोक्ष-गमन से कुछ समय पूर्व, किसी के बिना पूछे ही विनय का कथन करने से पूर्व अपुट्ठ वागरणा प्रवाहित की थी।

सयोगा विप्पमुक्कस्स, अणगारस्स भिक्खुणो।
विणयं पाउकरिस्सामि, आणुपुव्विं सुणेह मे।।

इस अधिकार गाथा द्वारा निर्णय किया, निश्चय किया कि विनय के स्वरूप का कथन करूँगा। भगवान् के इस कथन के स्वरूप और महिमा पर चिन्तन आवश्यक है।

'सयोगा विप्पमुक्कस्स' के आदेश को जब सुनते है या जब उस पर चिन्तन करते है तो विचार बनता है कि क्यो नही सयोग का त्याग कर दिया जाय। शब्दो पर ध्यान दे, यद्यपि शब्द मात्र तो कलेवर है। शब्द तो किसी आशय को व्यक्त करने का माध्यम बनते है। शब्दो मे भाव होते है। एक शब्द उद्वेलित कर सकता है, एक से महाभारत हो सकता है तो एक से जीवन मे रामायण भी घटित हो सकती है। एक शब्द यदि जीवन मे शात सुधारस का झरना प्रवाहित कर सकता है तो एक शब्द बैर और क्षोभ की स्थितियाँ भी निर्मित कर सकता है। महाभाष्यकार पतजलि ने कहा है—एक सुप्रयुक्त और सम्यग्ज्ञात शब्द स्वर्ग तथा लोक मे कामधेनु है—'एक शब्द सुप्रयुक्त सम्यग्ज्ञात स्वर्गेलोके कामधुक् भवित।' इसीलिए कहा गया है—

कागा का को लेते है, कोयल का को देत।
रहिमन मीठे वचन सो जग अपनो करि लेत।।

शब्द-व्यवहार से ही हम किसी को प्रभावित कर सकते है और उसी से नफरत भी पैदा कर सकते है। शब्दो मे भाव छिपे होते है। यदि हम शब्द के रूप मे ही अटक गए तो भाव की गहराई तक नही पहुँच पायेगे। भाव तक पहुँचाने मे शब्द उसी प्रकार माध्यम बनते है जिस प्रकार स्थानक तक पहुँचने मे आप के वाहन अथवा पैर माध्यम बनते है। वाहन भी स्थानक के बाहर तक ही माध्यम रहेगा, अन्दर प्रवेश के लिए तो अन्ततोगत्वा पैरो को ही माध्यम बनाना होगा। इसी प्रकार जब हम विचार के लिए उद्यत होते है तब शब्दो के आधार से ही हम बुद्धि या भावनाओ के भीतर प्रवेश करने का उपक्रम करते है। 'सयोगा विप्पमुक्कस्स' पर चिन्तन करे तो प्रश्न उत्पन्न होता है कि 'सयोग का त्याग' क्यो नही कह दिया प्रभु ने। यदि 'त्याग' शब्द से काम चल जाता तो गणधर विप्पमुक्कस्स का प्रयोग नही करते। वैसे मुक्त होना भी त्याग को ध्वनित करता है पर दोनो शब्दो के भाव मे अतर है। इससे एक निष्कर्ष निकलता है कि सयोग का एकान्त रूप से त्याग नही करना है।

सयोग दो प्रकार के बता दिए गए है—(1) बाह्य सयोग अथवा द्रव्य सयोग—माता-पिता, पुत्र, बधु आदि (2) आभ्यतर सयोग अथवा भाव सयोग—उक्त सबधी जनो के प्रति प्रवाहित हमारी भावधारा जिसके अन्तर्गत विषय-वासना, कषाय, काम, मोह आदि वृत्तियाँ आती है। भाव सयोग एक प्रकार से आध्यात्मिक गुण है आध्यात्मिक याने आत्मा के भीतर के। भौतिक रूप मे प्रकट होते हुए भी ये आत्मा मे उसी प्रकार अवस्थित होते है जैसे लोह पिण्ड मे अग्नि समाविष्ट होती है। ये आत्मा के भाव है, पुद्गलो के नही। यदि पुद्गलो के भाव होते तो बाहर जो कार्मण वर्गणाए लोक-जीवन को आक्रान्त किये रहती है, आत्मा मे सलग्न नही होती, उनमे भी क्रोध, मान, माया आदि के रूप दृष्टिगत होते। पर उनमे ये नही होते। ये तो आत्मा से सयुक्त होने पर, भावधारा से रस पल्लवित होते है। आगमो के अनुसार जब कर्मो का विपाक होता है तभी क्रोध, अहकार आदि की भावना आ जाती है। जो आत्मा मे है उसका त्याग कैसे करे ? माता-पिता, परिवार आदि तो इनसे भिन्न है अर्थात आत्मा मे घुले-मिले नही है। इनके प्रति जो लगाव है वह आत्मा मे घुल-मिल गया है। अत यदि माता-पिता आदि को त्याग दिया तो भाव सयोग का त्याग नही होगा। इसीलिए सूत्र दिए गए है—क्रोध-विवेक मान-विवेक माया-विवेक, लोभ-विवेक। ये साधु के गुण है। इनका विवेक किया जाए। विवेक करने का सुपरिणाम होगा। वह अवस्था आपके जागरण की अवस्था बन जायेगी। यदि मालिक जाग्रत है तो चोर चोरी नही कर सकेगा। मालिक यदि

सुप्त है तो वह तिजोरी से धन ले जा सकता है। ये भीतर के सयोग है जो आत्मा मे घुसे हुए है। आत्मा ने ही इन्हे लिफ्ट दी, वे प्रविष्ट हो गए और आत्मा को कमजोर बना दिया। आत्मा ने ही अपने पैरो पर कुल्हाडी मारी है। लेकिन फिर भी उद्धार का मार्ग है। पर्युषण पर्व का विधान है। अधेरे मे भटकने वाले को अधेरे से उबारने के लिए ही ये पर्वराज आते है—

शुभ पर्व पर्युषण, सुन्दर
त्याग-तपस्या, ज्ञान-ध्यान का अनुपम अवसर,
क्रोधादिक को दूर निवारे, समता को निज उर मे धारे,
जीवन सफल बनाले मिल सब
इस पर अपना तन-मन वारे।
प्रेम शाति की सरिता मे सब मिल अवगाहे,
वैर, द्वेष और व्यसन निवारे
वीतरागता को अपनाकर,
निज को भवनिधि पार उतारे।

पर्युषण की इसीलिये जरूरत है। आचाराग सूत्र मे कहा है—'उद्देसो पासगस्स नत्थि' आत्मा को देखने वालो को उपदेश की जरूरत नही। जो जगा है उसे क्या जगाना। जो सोये है वे जागे।

सयोगा विप्पमुक्कस्स का संदर्भ है। द्रव्य सयोग तो छोड़े जा सकते है पर आत्मा से जुड़े भाव-सयोगो का त्याग कैसे किया जाय? इसके लिए दो अवस्थाएँ है—(1) नियत्रण (2) शोधन। कई बार व्यक्ति विचार करता है, सकल्प लेता है, यह करूँगा, क्रोध नही करूँगा, शराब-बीड़ी का सेवन नही करूँगा पर ज्योही उसके सामने प्रसग आता है, शराबी या बीड़ी पीने वाला दीखता है, उसका भी मन मचल उठता है। मन मे द्वद्व होता है—मैने सकल्प ही लिया है, प्रत्याख्यान तो नही। एक विचार उठता है सकल्प नहीं तोड़ू पर धीरे-धीरे पैर कच्चे पडते है, आगे बढ जाता है। कोई पूछे—क्यो जा रहे हो उधर? तो उत्तर होगा—अरे भाई, जाने से क्या,पी थोडी रहा हूँ। शराव की दूकान पर बैठ गया, प्याली आ गई, भाई सोचता है प्याली हाथ मे ही तो ले रहा हूँ पी थोड़े ही रहा हूँ। परन्तु शीघ्र ही प्याली मुख की ओर बढ जाती है और वह गट भी कर जाता है। इस प्रकार सकल्प छिन्न-भिन्न हो जाते है एव व्यक्ति पतन की ओर

अग्रसर हो जाता है। सकल्प मजबूत नही रह पाता है अत उसे मजबूत करने के लिए ही प्रत्याख्यान सूत्र की बात की जाती है। उसके द्वारा स्थूल जगत् मे हम नियत्रित हो सकते है, लेकिन प्रत्याख्यान से शोधन या रूपान्तरण की प्रक्रिया नही बन पायेगी। यदि रूपान्तरण हो जाये तो फिर शिकायत नही रहेगी कि सामायिक मे मन नही लगता। प्रत्याख्यान स्थूल जगत् के क्रिया-कलाप नियत्रित करके भावधारा पर प्रभाव तो डालते है, पर यदि भावधारा मे सयोग का सबध ज्यादा है तो फिर प्रत्याख्यान ढीले पड जाते है। प्रत्याख्यान नियत्रण कर सकते है। आपने सावद्य योग का प्रत्याख्यान किया पर ऐसे क्षण आपके सामने आ गए जब आप सावद्य प्रवृत्ति मे स्थूल रूप से तो नियोजित हुए पर मन और भावधारा नियत्रित नही हो पाई क्योकि मन और भावधारा का नैकट्य बना रहा। मन को मात्र प्रत्याख्यान से रूपान्तरित नही किया जा सकता और मन की शिकायत बनी रहती है। उसके लिए मार्ग है शोधन का। प्रश्न होगा शोधन कैसे करे ? हमने नियत्रण पर बल दिया है, उपवास, बेला आदि तप करते है। मासखमण भी है पर यदि पारणे का दिन आ गया तो पोरसी भी भारी पड़ जाती है। घड़ी पर कई बार नजर चली जाती है। मन का कॉटा तेजी से घूमने लगता है। इतजार की घड़ियॉ लम्बी लगती है क्योकि पारणे की भावना मन मे आयेगी तो भावधारा पर नियत्रण कठिन हो जायेगा। ऐसा इसलिए होगा क्योकि हमने नियत्रण किया है पर शोधन नही। यदि शोधन की ओर रुझान हो जाय तो ? पर इसमे भी कठिनाई आ सकती है। आपने तो नौकर रख लिया है, वह पानी भर देगा पर यदि पहले घड़े मे रही बदबू को नही निकाला गया तो शोधन सफल कैसे होगा ? एक उदाहरण लीजिये—एक मस्जिद के पास एक हौज बना हुआ था। नमाज पढ़ने से पूर्व हाथ पैर धोये जाते और इस प्रकार सफाई करने के बाद नमाज की क्रियाए की जाती। एक बार उस हौज मे कुत्ता गिर कर मर गया। हौज ज्यादा बड़ा नही था। अब उसके पानी मे बदबू आने लगी। ध्यान रखिये, जब तक शरीर मे चेतना है तभी तक आव है, आदर है। पक्षी उड़ गया तो फिर दुर्गन्ध आने लगेगी। निर्जीव शरीर ज्यादा देर नही रखा जा सकेगा। विचार कीजिये—आत्मा कैसे दुर्गधयुक्त महल मे रहती है। आत्मा का प्रभाव है कि दुर्गध प्रकट नही हो पाती। आपरेशन के वक्त जब भीतर की स्थिति सामने होती है और व्यक्ति उसे देखता है तो चक्कर आने लगते है। डाक्टर भी पहले पढाई करता है, धीरे-धीरे मन को कठोर बनाता है और एक दिन उस स्थिति मे आ जाता है कि मनुष्य की चीर-फाड भी कर दे तो मन हिले नही। यदि कोई पहली बार आपरेशन करते देख ले तो दिल दहल जायेगा। कैसी

रचना है शरीर की ? यदि यह ज्ञान हो जाये तो फिर व्यक्ति इसमे रचेगा नही। बहिने चौबीसी मे कह दिया करती है—

मति राचो रे संसार, सपने री माया, मति राचो रे।
हाडका रो पीजडो ने, चामड़ा सु मढ़ियो
कुभ कलश जैसी काची काया, मति राचो रे।

कुभकलश अर्थात मिट्टी का घडा, कितना कच्चा, हाथ से गिरा तो चकनाचूर ठिकरिया-ठिकरिया हो जायेगा। ऐसी है हमारी काया। अस्तु, उस हौज मे दुर्गन्ध आने लगी। लोगो ने विचार किया—क्या करे ? चले काजी के पास, वे ही कुछ निर्णय करेगे। काजी ने कहा—उसमे स्वच्छ जल लाकर भर दो। लोगो ने बाल्टियो से ला-लाकर साफ पानी उसमे भर दिया। एक-दो दिन बीते, फिर दुर्गंध आने लगी। पुन काजी की शरण मे गये। काजी ने पूछा—'आपने पहले का पानी खाली किया था या नही ? उत्तर मिला—नहीं, आपने तो स्वच्छ पानी भरने का आदेश दिया था। कहा गया—अरे भाई, पुराना पानी नही निकाला, तो स्वच्छ पानी भी उसमे मिलकर बदबू ही देगा।' पुन· आये और पानी बाहर निकाल कर, नया पानी भर दिया। पर यह क्या, दो दिन बीते नही और फिर दुर्गन्ध आने लगी। फिर पहुँच गये अपनी समस्या लेकर। काजी ने सुना तो पूछा—हौज मे से उस मृत कलेवर को निकाला या नही ? उत्तर मिला—नही। यही बात है शोधन की, पूरा शोधन नहीं किया। सोचा, समझ जाओगे। जब तक सारी गदगी बाहर नही निकाली जाती तव तक ऊपर से डाला गया स्वच्छ पानी भी गदा ही होगा। भावधारा को भी सवर द्वारा रोका नही गया तो आश्रव रूप आने वाला पानी गदा होता चला जायेगा। सवर द्वारा रोक कर और निर्जरा से गदा पानी निष्कासित करने पर शोधन होगा, क्योकि कर्मो मे भी सक्रमण क्रिया होती है। पहले तो कर्म वधे है और नये बधने वाले आते है तव भावधारा मे उतार-चढाव आता है और शुभ कर्म भी अशुभ मे परिवर्तित हो जाते है। प्रसन्नचद्र राजर्षि कहाँ खडे थे ? जगल मे पर भावधारा मे परिवर्तन आ गया। यदि आप भी जाग्रत हो, विवेकवान हो तभी भावधारा को देख पाएगे। मालिक सावधान नही है और आपने मुनीम के भरोसे दुकान छोड दी। घटे, दो घटे की बात अलग है। फैक्ट्री की बात नहीं कह रहा हूँ। आपकी दुकान है। पॉच-छ मुनीमो के भरोसे छोड़ दी, फिर पहुँचे तो दुकान का भी पता लगेगा या नही, कहा नही जा सकता। यही हालत

जीवन की है, जागरण नही तो भावधारा मे कषायो से मैत्री हो गई। इस स्थिति मे भीतर ही भीतर से तूफान आत्मा को बेभान कर देगे इसीलिए प्रभु कह रहे है—विवेक को जाग्रत करो, ज्ञ परिज्ञा और विवेक ख्याति को जाग्रत करो, फिर भावधारा को धोखा नही रहेगा। क्रोध आयेगा, छोड नही पायेगे क्योकि पूर्व मे बीज पडे हुए है, पर यदि अकुर पर मिट्टी डाल दी, खाद-पानी बद कर दिया तो फिर वह बढेगा नही। बीज नष्ट हो गए तो फिर पौधे नही पनपेगे। भावधारा को सयोग से रहित करना है। यह प्रत्याख्यान से नही, शोधन प्रक्रिया से होगा। शोधन प्रक्रिया पूरी नही तो भावधारा निर्मल कैसे होगी ? भौतिक जीवन मे भी हम शोधन करते है।

घासलेट का पीपा है तो हम क्षार, गर्म पानी आदि से धोकर उस पीपे को घी भरने के योग्य बना लेते है। आयुर्वेद मे भी यह पद्धति है। आयुर्वेद आध्यात्मिकता के निकट है। वैद्य इलाज करने के लिए पहले जौहरड, जुलाब आदि के प्रयोग से शरीर के मल को साफ करते है। यदि पेट गडबड है तो जुकाम, सिरदर्द, शरीर मे अकडन आदि रोग होगे। पेट शुद्ध है तो बीमारिया नही पनपेगी। पेट बेचारा दुतरफी मार खाता है। लोभ के वश हम ठूसते चले जाते है, पेट बेचारा समभावी क्या करे ? मुख और पेट अलग-अलग है। माल डालते जाओ, तिजोरी बिचारी क्या करेगी। अतिरेक होने पर वमन हो जायेगा या वमन नही हुआ तो ऑते कब्ज से अॅट जायेगी और बीमारी पैदा हो जायेगी। आयुर्वेद का नुस्खा यह बताता है पहले शोधन की प्रक्रिया, फिर आगे की चिकित्सा, तभी स्वास्थ्य सुलभ होगा। इन पर्व के दिनो मे हम शोधन करे और आत्मा की मलिनता दूर हो ताकि पर्व आराधित हो सके।

नियत्रण कहॉ तक हो सकता है, यह भी चिन्तन का विषय है। शास्त्रो मे पॉच प्रकार के व्यवहार बताये गये है। उनमे आगम-व्यवहारी के लिये हमारे नियम आवश्यक नही है। उदाहरण के लिए स्थूलिभद्र ने कोशा की रगशाला मे चातुर्मास किया पर साधु के लिए वेश्या के मोहल्ले मे भी जाने का निषेध है। कोई पूछ सकता है कि आगम-व्यवहारी के लिए नियत्रण क्यो नही है ? उत्तर है—इसलिये क्योकि उन्होने भीतर का शोधन कर लिया होता है अत वे स्व-नियत्रित होते है। लेकिन जिन्होने शोधन नही किया उनके लिए नियत्रण आवश्यक है। शोधन कर लिया, उन्हे प्रभु ने 'अहासुह' कह दिया और जिन्होने नही किया उनके सबध मे प्रभु मौन रह गये। उनके लिए है—'आणाए मामग धम्म।' आगम व्यवहारी शुद्ध है, पासगस्स है, आत्मद्रष्टा है, वह पारदर्शी बन

चुका है, उसके लिए उपदेश नियत्रण नियम नही है। हम भी यदि शोधन की प्रक्रिया को जानकर आत्मा से जुडेगे तो मलिनता दूर होगी।

इस स्थान पर यह समझ लेना भी आवश्यक है कि जब तक चित्तवृत्ति मलिन है तब तक व्यक्ति चरित्राचार को भी शुद्ध नही रख सकता और चरित्र ही मोक्ष का प्रधान अग है। चरित्र की शुद्धि के लिए चित्त की अनिवार्य रूप से शुद्धि होनी चाहिये। चित्त की शुद्धि के लिए निर्युक्तिकार ने उस पर लगे हुए मैल को धो डालने का निर्देश दिया है। जिस प्रकार वस्त्र की मलिनता को दूर करने के लिए उसे धो डालना आवश्यक होता है, अथवा पहले के चढे रग पर अन्य रग चढाने के लिए पहले वाले रग को धो डालना जरूरी होता है उसी प्रकार आत्मा, चरित्र अथवा भावना पर चढी हुई मलिनता को दूर करने के लिए अथवा पूर्व के पडे हुए प्रभावो को दूर करने के लिए अथवा सयम और मोक्ष का रग चढाने के लिये, पहले के अभ्यासो को दूर करना होता है तभी नये सस्कार अच्छी तरह जम पाते है। हम जानते है कि स्पष्ट अक्षर लिखने के लिये पहले पट्टी को धो कर साफ करने की आवश्यकता होती है उसी प्रकार चित्त रूपी पट्टी पर सयम के अक्षर लिखने के लिए उस पर पहले से लिखे सासारिकता के आलेख को साफ कर डालने की आवश्यकता होती है साधना मे शोधन की इसीलिये आवश्यकता होती है। ❖

भाद्रपद कृष्णा 14
11-9-96

भावधारा की निर्मलता : मातृत्व की सफलता

चरम तीर्थेश प्रभु महावीर का यह भव्य शासन प्रभु महावीर की उद्घोषणा के अनुसार इक्कीस हजार वर्ष तक निरन्तर गतिशील रहेगा, इसमे उतार-चढाव आयेगे क्योकि भगवान महावीर की जन्म राशि पर भस्म ग्रह का योग था। जिस समय प्रभु महावीर का निर्वाण होने वाला था उस समय शक्रेन्द्र ने कहा भी था—'भगवान् अपनी आयु का थोडा-सा समय आगे बढा लीजिये ताकि भस्म ग्रह का योग टल जाये।' प्रभु ने कहा—'शक्रेन्द्र, शासन के प्रति तुम्हारी हित-भावना, मगल भावना है इसी से प्रेरित होकर तुम्हारे मुँह से ऐसा कथन प्रस्फुटित हुआ है पर आयु के दलिक को बढा पाना किसी के सामर्थ्य की बात नही है। तीर्थकर भी उसमे असमर्थ है।' वैसे तीर्थकर का बल परिगणन करते हुए बताया गया है कि लोक जो चौदह राजू प्रमाण है इसकी यदि गेद बना दी जाय और तीर्थकर भगवान् उसे धीरे से टिल्ला लगाये तो यह लोक रूपी गेद अलोक मे कहाँ जाकर गिरेगी, इसका कोई ठौर-ठिकाना नही। यद्यपि ऐसा न हुआ, न है, न होगा पर इतना बल होते हुए भी आयु के दलिक को बढाने की उनकी क्षमता नही है। इसका भी कारण है—जिस समय आयु का बध होता है उस समय गति-जाति के साथ अनुबध भी हो जाता है। आज भी व्यापारिक सौदे या अनुबध जिस तारीख के लिए तय होते है उसी तारीख को वे समाप्त हो जाते है। उन्हे ˜गगे बढाया जा सकता है लेकिन जो बढाया जाता है वह दूसरी किस्त होती है, पहली किस्त अपने आप ही रद्द हो जाती है। आयु के साथ गति-जाति के दलिक आत्मा के साथ उतने ही समय तक के लिए सयोजित होते है अत उन्हे बढाया नही जा सकता यद्यपि अन्य कर्मो मे यह आत्मा पुरुषार्थ-विशेष से परिवर्तित कर सकती है। बाद मे उदय होने वाले कर्मो को पहले समाप्त किया जा सकता है। जिन कर्मो की स्थिति बहुत बाद मे उदय मे आने वाली है उन्हे पहले भोग कर आत्मा को निर्मल किया जा सकता है। आत्मा को निर्मल बनाने का सीधा सबध-'सयोगा विप्पमुक्कस्स' से है। यदि हम मान ले कि बधे कर्मो मे परिवर्तन नही किया जा सकता अथवा उन्हे समय से पूर्व उदय मे नही लाया जा सकता तो शोधन प्रक्रिया मे कोई आगे नही

बढेगा। फायदा भी नही, जिस समय उदय मे आना है, आयेगा ही फिर सफाई-धुलाई-शोधन क्यो किया जाय ? क्यो तप से निर्जरा की जाय ? समाधान हेतु एक महत्त्वपूर्ण सूत्र है—

भवकोडी सचियं कम्म, तवसा निज्जरिज्जइ—उत्तरा, 30/6

करोडो भवो के सचित कर्म, जिनका अबाधा काल पूर्ण हो गया है उनकी तप के माध्यम से निर्जरा—उदीरणा की जा सकती है। इस बात को यो समझे—एक रस्सी के एक छोर पर आग लगी है। लगभग दो किलोमीटर लबी वह रस्सी धीरे-धीरे जलेगी पर यदि उसी रस्सी के दूसरी ओर के छोर को खोलकर, कुछ बट लाकर, उसी जलते छोर के पास रख दिये जाये तो वे जलेगे या नही ? सयोजित करने पर वे दूसरे अश भी जल जायेगे। आगमिक भाषा मे इसे 'गुण श्रेणी' की सज्ञा दी गई है जिनके माध्यम से उन कर्मो को झुलसाया जा सकता है बशर्ते उदीरणा के माध्यम से रचना की स्थिति बन जाय।

कहा गया है कि अज्ञानी से सम्यक् दृष्टि की, सम्यक् दृष्टि से श्रावक की, श्रावक से साधु की क्रमश असख्यात गुणी-असख्यात गुणी निर्जरा अधिक होती है। कर्म क्षय की प्रक्रिया बनती है उसके लिए शोधन प्रक्रिया उपयोगी है। प्रश्न उत्पन्न होता है कि तब प्रत्याख्यान की इस दृष्टि से क्या स्थिति है ? शोधन के अभाव मे रूपान्तरण नही होता है। जब तक सूक्ष्म शरीर की भावधारा मे कषायो की आग अथवा मलिनता का प्रभाव है तब तक उसका प्रभाव, उसकी छाया, मन पर पडे बिना नही रहेगी। ज्योतिष चक्र चलता है, जब सूर्य या चन्द्र के विमान के सामने राहु-केतु के विमान आ जाते है तो कहा जाता है ग्रहण हो गया। राहु-केतु उन्हे निगल नही लेते है बल्कि उनके कालेपन की परछाई पडती है और ग्रहण की स्थिति बन जाती है, वैसे ही जैसे दर्पण के सामने कपडा लटक रहा हो तो उसी रग का प्रतिबिम्ब दर्पण मे दृष्टिगत होगा। भावधारा मे मलिनता है तो मन रूपी दर्पण पर मलिनता ही प्रतिबिम्बित होगी। इसीलिए मन के बजाय भावधारा का शोधन किया जाय। पच्चीस बोल मे बारहवॉ बोल है—पॉच इन्द्रियो के तेईस विषय और दो सौ चालीस विकार। यदि विषय आपके सामने है तो उसे मिटाया नही जा सकता। शब्द कानो मे आयेगे—आप सुने या नही सुने, आपकी मर्जी। यदि शोरगुल हो रहा है अथवा आप कान मे रुई ठूस लेते है तो भी शब्द उसे चीरकर प्रविष्ट हो जायेगे पर विकार तब ही जुडेगे जब उनके साथ मन की प्रतिक्रिया जुडेगी। ये शब्द शुभ हो या अशुभ, राग-द्वेष के फल लग जायेगे। यदि विषय पर कोई प्रतिक्रिया

नही होती तो विकार नही पनपेगा ? भावधारा विकृत नही होगी तो विषय विषय ही रह जायेगा। अतकृतदशाग सूत्र के अनुसार देवकी महारानी की भावधारा मे विकार आ गए तो क्या अतिमुक्त मुनि की बात मिथ्या थी ? जब उसने देखा भावधारा मे विकार आ गये तो विचार किया—प्रभु से समाधान कर लू। मान लीजिये कि आपके मन मे भी मलिनता आ जाय परन्तु आप महाराज से पूछने मे सकोच करे तो यह मलिनता जमती चली जायेगी और जब भावधारा पर ये पौधे अकुरित हो जायेगे तब आत्मा कितनी उत्पीडित होगी, यह भी क्या आप ने सोचा है ? कर्म करते व्यक्ति नही सोचता तथा बाह्य स्थितियो का आलोडन-विलोडन करते मन मे बात घुलती रहने देता है, परिणामस्वरूप मलिनता भावधारा पर चिपक जाती है। यह चिपकना भी दो प्रकार से होता है—बालक खेल खेल रहा था, काली गीली मिट्टी का गोला बनाकर दीवाल पर फेका, गोला दीवाल पर चिपक गया। एक सूखा मिट्टी का ढेला भी था, उसे भी फेका गया, वह चिपका नही बल्कि फिसल गया। गोद और पानी से एक चिपचिपा पदार्थ बनता है जो चिपकाने के लिए काम मे आता है। भावधारा के साथ भी ऐसा ही होता है। आने वाले विषय मे कषाय व योग से गीलापन उत्पन्न होता है। कषाय और योग से एक रस और पैदा होता है जैसे दो पदार्थो से तीसरा रस पैदा होता है। सिद्धात की भाषा मे उसे लेश्या कहा गया है। अब देखे कि देवकी महारानी के सबध मे क्या हुआ। उन्होने विचार किया कि मुझसे मुनि ने कहा था कि ऐसी (नल कुबेर के समान) सतानो को जन्म देने वाली अन्य माता नही होगी, तो क्या वह बात मिथ्या थी ? चिन्तन किया कि उतार-चढाव, सकल्प-विकल्प क्यो रखू ? वह तीर्थकर की वाणी का रसपान करने वाली थी, अत सशय नही रखा। सशय रखना भी नही चाहिये। प्रभु महावीर ने कहा है, सशय करने वाला—

पए पए विसीयतो, सकप्पस्स वसं गओ। दशवै-2/1

सशय से जीवन सुरक्षित नही रहता। विकल्पो मे योग, प्रवृत्ति राग-द्वेष-काषायिक परिणाम से अशुभ लेश्या प्रादुर्भूत होती है। देवकी ने विचार किया कि कही मेरी भावधारा मे अशुभ लेश्या उत्पन्न न हो जाए। अत सर्वज्ञ सर्वदर्शी प्रभु अरिष्टनेमि जो यहाँ विराज रहे है उनके पास पहुँचकर समाधान प्राप्त कर लूँ। पहुँच गई। देवकी यद्यपि महिला थी पर उसमे साहस था, सत्त्व था अन्यथा आज तो भाई भी सकोच करते है—कही महाराज नाराज न हो जाये यद्यपि ऐसी बात नही है। सत सहसा ऐसा कुछ मुँह से बोलेगे नही। आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा फरमाया करते थे—

देवकी पहुँच गई। पहुँचते ही प्रभु ने सारा दृश्य इस प्रकार प्रस्तुत कर दिया मानो देवकी के सामने टी वी सीरियल चल रहा हो। यह क्या, ये सारे पुत्र मेरे है ? प्रभु की वाणी सुनी तो सकल्प-विकल्प नही रहा। भावधारा पर वे सूखे ढेले टिक नही पाये, झड गये। यदि वे भावधारा मे चिपका लिए जाते तो वह श्रद्धा से विचलित भी हो सकती थी। शका, काक्षा, विचिकित्सा—ये दूषण है। सशय मे सम्यक्त्व मोहनीय का उदय होता है और यदि यह उदय आगे बढ गया और मिथ्यात्व मे पहुँच गया तो विनाश ही परिणाम होगा। सशय से आत्म-पतन हो जाता है। देवकी ने संशय नही रखा। पहुँच गई मुनियो के दर्शन के लिये। मुनि जब घर मे आए थे उस समय जो भावधारा थी, जो अध्यवसाय थे वे इस क्षण परिवर्तित हो गये। एक माता, जिसके प्रसव का प्रसग नही आया हो तो उसके स्तनो मे दूध भी नही आयेगा। लेकिन जब बच्चा जन्म ले लेता है तब कैसी रासायनिक प्रक्रिया होती है, जरा इस पर गहराई से चिन्तन करे। माता सिर्फ सतान को ही नहीं बल्कि उसके साथ मातृत्व भाव को भी जन्म देती है। गाय घर में भले ही चौबीस घंटे बधी रहे, हर क्षण उसके थनो मे दूध नही आता पर ज्योही बछडा छोड दिया जाता है, गाय के थनो मे दूध उतर जाता है।

इस स्थिति पर आज के सदर्भ मे विचार करे। आज तो माताएँ चाहती है, सतान जन्म ही न ले। ऐसी माताओ के लिये क्या कहे। स्थितियाँ विकट है। एक तरफ तो अहिसा के पुजारी आवाज लगाते है कि कत्लखाने बद होने चाहिए लेकिन आज तो कत्लखाने हमारे घरो मे ही खुलते चले जा रहे है। ये माताए, जो वात्सल्य की प्रतिमूर्ति मानी जाती है, कैसी निष्ठुर-हृदय बन जाती है ? एक रिपोर्ट के अनुसार पाँच लाख बहने प्रतिवर्ष अवैध रूप से भ्रूण-हत्या करवाती है। मै ज्यादा क्या कहूँ, जितने महीने का गर्भ होता है उसके अनुसार अलग-अलग तरीको से गर्भपात की क्रिया अपनाई जाती है। एक इजेक्शन द्वारा कोई द्रव पदार्थ गर्भ मे छोडा जाता है जिससे उस भ्रूण के भीतर हलन-चलन होती है। तीर्थंकरो ने कहा है—वनस्पति तक के लिए यह मत कहो कि इसे तोड दो, काट दो। इससे उसे पीडा होती है। डॉ वेकेस्टन और जगदीशचन्द्र बसु ने प्रयोग से यह सिद्ध भी कर दिया है कि ऐसी बात करने मात्र से वनस्पतियो को पीडा होती है क्योकि उनमे भी सवेदना होती है। तब सोचिये कि उस भ्रूण को क्या अनुभूत होता होगा ? वह भी सभी पचेन्द्रिय मन वाला प्राणी है। उस पर प्रभाव पडता है। महाभारत के पृष्ठ पलटिये, जान लेंगे कि

अभिमन्यु ने गर्भ मे ही चक्रव्यूह-भेदन की विधि सीख ली थी। तब आज सतान गर्भ मे माता-पिता से क्या सीखेगी ? शास्त्रकार कह रहे है—जैसे ही गर्भ मे सतान आती है माता का कर्तव्य होता है कि वह अतिशोक न करे, मिर्च-मसाले वाले पदार्थो, प्रमाद तथा आलस्य आदि का सेवन न करे। उसे जिस प्रकार की सतान बनानी है तदनुरूप अपनी दिनचर्या को ढाल ले। देवकी को दु ख हो रहा है, गर्भ मे मैने सस्कार दिये पर सतान बाहर आने पर मै सस्कार दे न सकी। ऐसा इसलिये हुआ क्योकि सतान के साथ ही मातृत्व भाव का जन्म होता है। योनि मे शस्त्र-प्रवेश से बालक भय से भीषण रूप से प्रकम्पित होता है, उस थैली मे भाग-दौड करता है तथा बचने के लिए प्रयास करता है। बालक तो मॉ की कुक्षि को रक्षा के लिए सर्वश्रेष्ठ आश्रय मानता है पर यदि मॉ ही मातृत्व भुला दे, रक्षक ही भक्षक बन जाय तो बालक कहॉ सुरक्षा ढूंढे ? वह बेचारा भीतर ही भीतर कोलाहल करता है, रक्षा के लिये भाग-दौड करता है परन्तु उसका कोई वश नही चलता। डाक्टर, जो जीवन बचाता है, वह उसके लिये जीवन का हरण करने वाला बन जाता है। अपने पक्ष मे थोथी दलीले दी जाती है। कानून की भ्रामक व्याख्या कर जनता को बहकाया जाता है। कानून यह नही कहता कि भ्रूणहत्या करो। वह तो यह प्रावधान करता है कि यदि माता का जीवन खतरे मे हो तो सतान को गिराया जा सकता है परन्तु इस प्रावधान का गलत प्रयोग किया जाता है और कागजी रिपोर्ट दे दी जाती है कि मॉ का जीवन खतरे मे था इसलिए गर्भपात कराया गया। पर ऑकडे बताते है कि प्रतिवर्ष तीस लाख के लगभग भ्रूणहत्याएँ हो रही है। गर्भ मे केवल भ्रूण की ही नही मातृत्व की भी हत्या होती है। वैज्ञानिको ने शोध की है कि यदि दो-तीन बार गर्भपात करा लिया जाय तो फिर वह माता सतान को जन्म देने योग्य नही रह जाती, बॉझ हो जाती है। बॉझ घर मे पूजी जाने योग्य नही रहती। क्या ऐसी निष्ठुर नारियॉ भी पूजनीय हो सकती है ? माता की भावधारा का इस स्थिति से गहरा सबध होता है। मातृत्व का फूल खिलने से पूर्व ही मातृत्व की हत्या कर दी जाती है। नारी की भावधारा पर इससे गहरा सदमा लगता है। कई बार महिला को अनिच्छा से भी सास-सुसर, पति आदि के दबाव से गर्भपात कराना पडता है। उसे समझाया जाता है कि इससे उसका सौदर्य बरकरार रहेगा, विषय-भोगो मे सुविधा रहेगी और बुढापा जल्दी नही आयेगा। यदि चमडी शिथिल हो गई तो अभी से बुढापा झलकने लगेगा। लेकिन वास्तव मे बुढापा जल्दी आने का कारण कुछ और है। विषय-सेवन के अतिरेक से जीवनी शक्ति बरबाद हो जाती है परिणामस्वरूप बुढापा जल्दी आ जाता है। इतिहास साक्षी

है कि हमारे पूर्वज सयमित जीवन व्यतीत करते थे। शास्त्रो के अनुसार तो साधुओ के लिये स्त्रियो से किसी भी प्रकार का ससर्ग वर्जित है। अपने हाव-भावो से वे सभी प्रकार से पतित करने की क्षमता रखती है। परन्तु सन्नारियॉ तो सभी के लिये वन्दनीय है। यदि सयमित जीवन व्यतीत किया जाय तो न तो बुढापा ही जल्दी आयेगा, न ही स्वास्थ्य और सौन्दर्य नष्ट होगा। इसी का उपाय ब्रह्मचर्य सेवन बताया गया है।

तवेसु वा उत्तम बभचेरं सूत्रकृताग सूत्र 1/6/23

आवश्यकता है विषय-त्याग की ओर आगे बढने की जबकि आज उन्मुक्त जीवनचर्या का आदर्श अपना लिये जाने के कारण मातृत्व की हानि हो रही है। गर्भ मे बालक का स्वागत तो दूर, उसे कैची दिखाई जा रही है। जैसे बहने साग-भाजी काटती है वैसे बालक के टुकडे-टुकडे कर दिये जाते है जो नलिका से बाहर आ जाते है। कभी यदि उसके टुकडे नही हुए, वह मजबूत है, तो उस पूरे बालक को ही खीचकर या प्रेशर से बाहर निकाल दिया जाता है और बोतल मे रख कर दिखाया जाता है। आज वही डाक्टर नामी माना जाता है जिसने ज्यादा से ज्यादा गर्भपात कराये होते है। हम विचार करे कि ये स्थितियॉ नैतिक अथवा धार्मिक दृष्टियो से उचित है? धार्मिक पर्व मनाने की सार्थकता फिर कहॉ है? तब पर्युषण पर्व फिर कैसे आयेगा? गीले गोले चिपकने जैसी लेश्या का ही निर्माण होगा। आपने छ पुरुषो का दृष्टान्त अवश्य सुना होगा। कृष्ण लेश्या वाला जड़मूल से ही नष्ट करना चाहता है। गर्भ की संतान को नष्ट कर रहे है तो क्या शुक्ल लेश्या होगी? पदम लेश्या होगी? वहॉ अशुभ लेश्या ही होगी, कृष्ण-नील। उससे जो द्रव उत्पन्न होगा उसमे मरी हुई गाय अथवा मरे हुए सर्प जैसी दुर्गन्ध आयेगी। ऐसा द्रव्य यदि हमारी भावधारा मे मिले तो फिर भावधारा निर्मल कैसे रहेगी? विषय ही आते रहेगे। हमने पीछे के गटर खोल रखे है। जिस प्रकार नाली मे थैलियॉ आदि आने पर पानी का प्रवाह रुक जाता है और दूषित हो जाता है उसी प्रकार जव वैकारिक थैलियॉ भावधारा मे मिल जाती है तब भावधारा रुक जाती है और दूषित भी हो जाती है। देवकी ने ऐसा नही सोचा कि कस तो वच्चो को मारेगा ही। तो क्यो न मै ही उन्हे पहले समाप्त कर दूॅ ताकि प्रसव-पीड़ा तो नही सहनी पड़े। उसका मातृत्व भाव उमड़ पड़ा—मुनि दर्शन कर रही है। कपड़े छोटे हो गये है, कसने टूट गए है, दूध की धार, वात्सल्य की धार वहने लगी है। बालक कितना भी बडा क्यो न हो जाय, माता के लिये वह वालक ही रहता है।

डॉ डी एस कोठारी माता के प्रति अत्यत श्रद्धावान थे। वे कभी भी माता की आज्ञा की अवहेलना नही करते थे। पर आज तो सतान पढ-लिख लेने के बाद यह सोचती है कि माता क्या जानती है ? पूज्य गुरुदेव की माता शृगारबाई यदि गुरुदेव को जन्म नही देती तो उन्हे कौन जानता ? आज भारत मे शृगारबाई का नाम गुरुदेव जैसे पुत्र के कारण फैला हुआ है। उन शृगारबाई को रुपये पैसे गिनने और घडी देखनी भी नही आती थी। रेत की घडी से सामायिक करती थी। जिस समय गुरुदेव को युवाचार्य पद दिया गया, माता को गाडे मे बिठाकर लाया गया। उन्होने वात्सल्य प्रकट करते हुए स्वर्गीय गुरुदेव आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा से कहा था—

'ओ अन्नदाता, म्हारे नाना पर अतरो भार क्यो डालयो। ओ तो नानो है।' स्वर्गीय गुरुदेव आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा ने उत्तर दिया था—'बाईजी। अबे ए नाना नही रया।' माता ने तो प्रबोध देते हुए पुत्र से यह भी कहा था—

अतरो मोटो पद मली गयो, पर अहकार मे मती आवजो।

क्या वह माता गुरुदेव से ज्यादा जान रही थी ? नही, पर वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर वह शिक्षा दे रही थी। ऐसी शिक्षा माता दूध पिलाते-पिलाते दे देती है। देवकी खडी है, मुनियो पर वात्सल्य भाव उमड रहा है।

आज कहते है वात्सल्य भाव नही उमडता पर ऐसा नही है। यदि पुत्र सामने हो तो वात्सल्य भाव रुक नही सकता। हम पहले पुत्र तो बने, वात्सल्य स्वत प्रवाहित होगा। पुत्र सामने थे अत देवकी का भी वात्सल्य रस फूट पड़ा। आज तो सिन्थेटिक वस्तुओ का जमाना है। जीवन मे कृत्रिमता समा गई है। स्वय को सतान के रूप मे ही प्रस्तुत नही कर पाते। सतान उखड़ रही है। महाराष्ट्र की एक घटना है। गुरुदेव विहार कर पधारे थे, लोगो ने कहा—'गुरुदेव एक वृद्ध महिला बीमार है। दर्शन दे दीजिए।' गुरुदेव थके हुए भी होते थे तो भी परवाह नही करते थे। अत दर्शन देने पधार गये। मगलपाठ सुनाया। गॉव वालो ने बताया—ये डॉक्टर साहब खडे है, इनके पुत्र है, विदेश मे प्रेक्टिस कर रहे है, माता बीमार पडी तो इन्हे बुलाया गया है। डॉक्टर साहब कहने लगे—'ये गॉव वाले तो अज्ञानी है, कुछ जानते नही। यदि इजाजत दे तो मै एक इजेक्शन से इनको शाति दिला दूँ।' उन डॉक्टर साहब ने एबोर्शन करने शुरू कर दिए थे अत उन्हे तो हत्याऍ ही दिखाई देती थी। कालशौकरिक कसाई को कैद भी कर दिया गया तो उसने मैल के पाडे बनाकर अपनी आदत का पोषण शुरू कर दिया। उसकी भावधारा मे हत्या के सस्कार जमे हुए थे।

आज गर्भ का तो क्या, मानवो का कत्ल करने मे भी हिचक नही रही है। आज डाक्टर लोभ मे कुछ भी कर सकते है। एक सत्य घटना सुना रहा हूँ। चूरू का एक भाई था। कोलकाता मे रहने लगा था। पूज्य गुरुदेव के मुम्बई चातुर्मास का प्रसग था। सन् 1985 की बात है। उसे अपना स्वास्थ्य गड़बड लगा तो डॉक्टर को दिखाया। उस डॉक्टर ने मुम्बई के एक प्रसिद्ध हॉस्पिटल का पता दे दिया। कहा—वहाँ जॉच करा लेना। वह वहाँ पहुँचा। जिस डॉक्टर को दिखाया उसकी उम्र लगभग पैतीस वर्ष की थी। उसने जॉच करके कहा—'आपको तुरन्त भरती होना पडेगा, हार्ट की बीमारी है।' उस व्यक्ति की वही आधी जान जैसे निकल गई। छोटी उम्र, बाल-बच्चे-परिवार का दायित्व, अवसाद उसकी भावधारा मे पैठ गया। उसका एक मित्र शाताक्रुज मे रहता था। सलाह दी—'एक डॉक्टर को और दिखा दो।' वे मुम्बई अस्पताल मे पहुँचे। वहाँ का डॉक्टर लगभग पचपन वर्ष की उम्र वाला था। उसने जॉच की और रिपोर्ट दी—'आपकी श्वास नलिका मे थोडी खराबी है, अन्य कोई बीमारी नही है। हार्ट की बीमारी तो है नही। पिछले वर्षो मे हार्ट खराब हुआ नहीं है और निकट भविष्य मे भी खराब होने की सभावना नही है।' बेचारा भाई विचार मे पड गया। ये क्या तमाशा है? डॉक्टर-डॉक्टर की जॉच मे इतना अतर। एक कहता है कि तत्काल ऑपरेशन आवश्यक है और दूसरा कहता है कि दिल की बीमारी की कोई सभावना भी नही है। क्या किया जाय? रोगी की मनोवैज्ञानिक स्थिति की जरा कल्पना कीजिये। बेचारा क्या करे, क्या न करे। भीषण मानसिक तनाव मे वह दूसरे डॉक्टर के पास फिर गया और पहिले डॉक्टर की जॉच-रिपोर्ट की बात उसे बताई। उस पचपन वर्षीय डॉक्टर ने उससे कहा—तुम्हे किस पर विश्वास है। मै कह चुका हूँ कि ऐसी कोई सभावना नही है। अच्छा ये बताओ कि उस अस्पताल वाले डॉक्टर की उम्र क्या थी? रोगी ने बताया—लगभग पैतीस वर्ष। तब इस दूसरे डॉक्टर ने कहा—'देखो भाई, डॉक्टरी की पढाई मे खर्च लगता है। इस उम्र मे आते-आते काफी सम्पत्ति लग जाती है और डॉक्टर चाहता है कि अभी अर्जन कर लूँ। एक ऑपरेशन से ही दस-बीस हजार मिल सकते है। वगला, कार प्राप्त करने की उसकी कामना होगी। अत जो आता होगा उस पर वह हाथ डालने की कोशिश करता होगा। पर मैने बहुत-कुछ कर लिया है। अव सोचता हूँ कि कुछ मानवता की सेवा भी कर लूँ। मैने आपको सही स्थिति वता दी है। विचार तो करिये कि यदि कोई गडबडी नही है तो ऑपरेशन से वह कुछ गड़वड़ी ही पैदा करेगा और एहसान से दवे आप हर छ माह मे जॉच करवाते रहेगे।' उस भाई

ने सलाह मानी और ऑपरेशन नही कराया। वह अभी भी जीवित है और उसे हार्ट की कोई तकलीफ भी नही है। बधुओ, देखिये, लोभ क्या-क्या अपराध नही करवाता है। बात विचारणीय है। ऐसी भावधारा का शोधन नही किया तो वह जीर्ण होती चली जायेगी।

देवकी की स्थिति पर विचार कीजिये। वह घर लौट आई और विचारो मे डूब गई। कृष्ण चरण-वदन को आये, पर माता ने ध्यान ही नही दिया। व्यक्ति जब दूसरे विचारो मे खोया होता है, तब उसे आसपास का ध्यान नही रह पाता। स्पर्श का भी अनुभव नही हो पाता। माता को पता ही नही पडा कि कौन उपस्थित हुआ था। कृष्ण को विचार आया, अरे मै दुनिया का दु ख दूर करता हूँ और मेरी ही मॉ यदि दु खी रहे तो फिर मै कैसी सतान ? मेरा भी कुछ कर्तव्य है। मॉ को तीन बार आवाज लगाई। मॉ मानो सोते से जाग पडी। कृष्ण बोले—'मॉ मै आता हूँ तब तुम मेरी पीठ और माथा सहलाती हो पर आज तुम्हे क्या हो गया है ?' माता झूर रही थी। कृष्ण ने तो आश्वासन दे दिया, सान्त्वना दे दी। बहिनो ध्यान रखिये, यदि आपने गर्भ मे ही बच्चे की हत्या कर दी तो फिर मातृत्व प्राप्ति की स्थिति नही रहेगी और फिर भले ही आप झूरो, आपकी चाहत पूरी नही हो पायेगी अत प्रतिज्ञा कर लो कि आप किसी के दबाव मे आकर अथवा स्वेच्छा से आने वाली सतान की हत्या नही करेगी, उसे आश्रय देगी।

देवकी कह रही थी—'मैने किसी को गोद मे नही खिलाया, पालने मे नही झुलाया, दूध पिलाते हुए सस्कार नही दिये।' पौराणिक आख्यानो मे माता मदालसा का विवरण आता है, जिसने लोरी के साथ घूटी पिलाई, थी, परन्तु जवानी मे आते ही वे पुत्र साधु बन गये। जब महाराज ने कहा—क्या मै बुढ़ापे मे भी राज्य ही करता रहूँगा ? तब मदालसा ने कहा—'जो माता अपने पुत्र को साधु बना सकती है वह राजा भी बना सकती है। मै आपको क्षत्रिय पुत्र दूँगी।' उसने सस्कार दिये।

एक ऐतिहासिक घटना है। जोधपुर के महाराज जसवतसिहजी एक बार युद्ध मे भयभीत हो कर वापस लौट आये। वे युद्ध से भगकर आये थे। जब घर पहुँचे तो महारानी ने कहा—मै द्वार नही खोलूँगी। मेरा पति कायर नही हो सकता, जो भाग कर आया है वह कायर है, वह मेरा पति नही हो सकता। मॉ ने उसके शब्द सुने। कहने लगी—'बीदणी यदि द्वार नही खोलेगी तो यह वहॉ

से तो भगकर आया है, अब कहॉ जायेगा ?' उसने सैनिको से कहा—द्वार खोल दो। मॉ का वात्सल्य भाव था। बीदणी से कहा—पुत्र थक कर आया है उसके लिए गरम हलवा बना दो। बीदणी नही चाहती थी पर आज्ञा हुई थी अत वह हलवा बनाने बैठी। खुरपा हिला। लोहे से लोहा टकराया तो आवाज होने लगी। राजमाता कहने लगी—'बहू, इतनी जोर से आवाज क्यो कर रही हो ? रण मे तलवार की टकराहट से मेरा बालक डर कर भाग कर यहॉ आया है। यहॉ भी डर गया तो फिर कहॉ जायेगा ?' पुत्र ने कहा—माता, तुम ये क्या कह रही हो ? उत्तर मिला—'हॉ बेटे, मैने सावधानी नही रखी। एक बार बाल्यावस्था मे तुम रो रहे थे। मैने दासियो को खिलाने के लिए सौप दिया था। चुप नही हुए थे तो एक दासी ने अपना दूध पिला दिया था। मुझे मालूम पड़ा तो मैने मुह मे हाथ डालकर उल्टी भी कराई थी पर उस दूध का कुछ अश फिर भी रह गया होगा। वही आज दु खदायी बना है। यदि वह दूध का अश नही होता तो यह स्थिति नही आती। यह मेरी ही त्रुटि थी। मेरे दूध का अश होता तो मेरा पुत्र ऐसा कायर नही निकलता।' जसवतसिह के हृदय मे वीरता के भाव उत्पन्न हो गये। कहा—'मॉ, बस-बस अब मत बोलो। मै विजय प्राप्त करके ही लौटूॅगा।' और उन्होने बाद मे विजयश्री हासिल भी की। सोचिये, कायरता का वह काला दाग क्यो लगा ? क्योकि माता के दूध मे मिलावट हो गयी थी। कितना गहरा सबंध है मॉ के दूध और पुत्र के चरित्र का। आज कहा जाता है स्तनपान मत कराओ, माता बीमार हो जायेगी। पर बीमारी का कारण दुग्धपान कराना कभी नही होता बल्कि वह तो माता और सन्तान दोनो के लिये स्वास्थ्यकर है। वात्सल्य भाव से सतान को जैसा दूध माता पिलायेगी, सन्तान का जीवन वैसा ही वनेगा। आज माता कहती है—पुत्र तो मुझे मॉ समझता ही नही। अरे ! समझेगा कैसे ? उसे वात्सल्य नही दिया गया इसलिये वह कहता है आपने क्या उपकार किया ? आपकी विषय-वासना के कारण ही मुझे गर्भ मे रहना पड़ा। आपने उसे वात्सल्य से अलग कर दिया। महारानी मदालसा ने वीरोचित सस्कार देकर, राजा को उत्तराधिकारी दिया। लेकिन उसे शिक्षा दी—पुत्र, राज्य ही सब-कुछ नहीं है। यदि तुम पर उलझने आ जाये, भावधारा समस्या-ग्रस्त हो जाये तो यह ताबीज, जिसमे मत्र है, इसे खोलकर देख लेना, तुम्हे समाधान मिल जायेगा। राजा को समाधान की आवश्यकता पडी। तावीज खोला उसमे लिखा था—

सिद्धोसि वुद्धोसि, निरंजनोसि, संसार माया परिवर्जितोसि
संसार स्वप्नं तज मोह निद्रा, मदालसा इत्युवाची पुत्रं।

श्रीकृष्ण देवकी का झूरना दूर करने के लिए, परदे की आड मे गये, वैक्रिय शक्ति से बालक का रूप बनाया, कभी माता के कपडे खीचे, कभी केश खीचे। माता ने लाड-प्यार किया। नहलाया, धुलाया। कृष्ण ने देखा— माता की ममता का तो अत नही आ रहा है, राज्य व्यवस्था का क्या होगा? लीला दिखाई। तुतलाते हुए कहने लगे—'मा भूत लगी है।' 'अरे बेटा भूख लगी है तो ले यह दूध पी ले।' कटोरा मुँह से लगाया—'यह तो फीका है।' दूध को मीठा कर दिया। 'इतना मीठा दूध मुझे नही भाता।' 'अच्छा कोई बात नही, किस बात की कमी है, कोई किसान का घर थोडी है। दूसरा दूध पीले।' 'नही, दूसरा नही पीऊगा, यही दूध पीऊगा पर इतना मीठा भी नही पीऊँगा।' माता परेशान हो गई। 'बेटे, अपनी लीला समेट।' कृष्ण ने परदे के पीछे जाकर पुन रूप परिवर्तन किया। 'अरे बेटे, वह कौन था? तू इतना बडा हो गया यह भी नही जानता कि दूध से बूरा-शक्कर निकाला नही जा सकता?' 'मॉ, वह तो बालक ही जाने, मै क्या जानू? बालक तो बालक की बात करेगा उसमे समझदारी कहॉ होगी?' माता ने कहा—'कृष्ण, तुमे भले बहलाओ पर मुझे सतोष नही होगा, न चैन पडेगा, जब तक बालक को सस्कारित करने के लिए वात्सल्य रस प्रवाहित न करूँ।' सोचिये, कितने गहरे रिश्ते होते है माता और सन्तान के। पर यदि माता मातृत्व का हनन करे तो क्या कृष्ण जैसे पुत्र प्राप्त कर सकती है? गजमुनि ने तो सिर पर अगारे रख लिए पर सहनशीलता मे कमी नही आई। आज तो कुए मे भाग पड गई है। माता कर्तव्य के प्रति सजग नही। बालक को बालमदिर मे भेज दिया। जाओ चार-छ घटे मुझे छुट्टी रहेगी। बालक की बुद्धि कुठित हो जाती है। महात्मा गाधी ने कहा है, सात वर्ष से पूर्व बालक पर भार नही डाला जाये। आगम कह रहे है जब वह बालभाव से मुक्त हो जाये तभी उस पर भार डाला जाये। पर आज तो जो बालक के खेलने के दिन अथवा जो अकुरित पौधा है उस पर ही मिट्टी डाल दी जाती है। उसका विकास रुक जाता है, क्षमता का ह्रास हो जाता है। माताओ को देवकी के मातृत्व का आदर्श अपनाना होगा, माता के कर्तव्य के प्रति सजग होना होगा, तभी भारत, जो ऋषि-मुनियो की भूमि रहा है, पुन ज्ञानियो से पूर्ण होगा और कमी नही आयेगी। भारतमाता गौरवान्वित होगी। अत भावधारा का शोधन करे, उसमे वैकारिक भावो को नही जोडे। चिन्तन-मनन के द्वारा भावधारा को निर्मल बनाये। तभी जीवन मे मगलमय दशा का प्रसग बनेगा। ❖

भाद्रपद कृष्णा अमावस्या
12-9-96

शोधन की प्रक्रिया : एक विवेचन

'सयोगा विप्पमुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो' अर्थात् संयोग से
रूप से और लबे समय के लिए जो मुक्त हो गया है वह अणगार हो
'सयोगा विप्पमुक्कस्स' पदो की व्याख्या करने पर हम अर्थ ग्रहण करने
ही सक्षम हो, हम व्याख्या मे पहुँच जाते हो, पर यथार्थ मे ये सूत्र व्याख
नही, अन्वेषण की मॉग करते है। अत हमे खोज करनी चाहिए। उसी
जिस प्रकार वैज्ञानिक करते है जो छोटा-सा सूत्र पाकर अनुसधान की ि
बढते है और जनता के सामने नये-नये आविष्कार प्रस्तुत कर देते
आविष्कार वे प्रस्तुत करते है उनका बीज इसी सृष्टि मे होता है। यि
नही होता तो तीन काल मे भी वैज्ञानिक कुछ प्रस्तुत नही कर सकते
प्रस्तुत किया जा रहा है वह है परन्तु हमसे ओझल है, हम उसे देख नही
है। वैज्ञानिको ने शोध की अथवा खोज की और बीज को वृक्ष के
उपस्थित कर उसके महत्त्व को प्रदर्शित कर दिया। मै भी सूत्र के अन्वेष
बात कह रहा हूँ जब हम चिन्तन की दिशा मे आगे बढते है तब हम सयं
नियत्रित करने के लिए प्रत्याख्यान सूत्रो के माध्यम से मन, वचन और का
नियत्रित करने का विचार करते है और सकल्प भी ग्रहण करते है, लेकि
माध्यम से भावधारा तक प्रविष्ट नही हुआ जा सकता और भावधारा मे
के लिए शोधन प्रक्रिया, जिसका दूसरा अर्थ है सफाई अभियान, अपन
सकती है। अवरोध पैदा करने वाले मन को यदि रोका नही जाता, भीतरी
की सफाई नही की जाती तो भावधारा को निर्मल नही किया जा सकेग

सभी दर्शन और दार्शनिक इस एक विषय पर सहमत है कि का
बिना कार्य की निष्पत्ति नहीं होती। कार्य है तो कारण अवश्य होगा। वृक्ष
बीज की सत्ता भी निर्विवाद सिद्ध है। जो कार्य निष्पादित हो चुका है
कारण का अन्वेषण किया जा सकता है। हमारी भावधारा पर यदि मलिन
सयोग का लेप लगा हुआ है तो वह एक प्रकार से कार्य है, तो जानना
उसका कारण क्या है? उसका कारण अथवा बीज हमारे भीतर ह
उत्तराध्ययन सूत्र में कहा गया है—रागो य दोसोऽवि य, वीयं कम्म वीयं,

राग और द्वेष—ये दो कर्म के बीज है। राग और द्वेष—ये भाव कर्म है और नये कर्म के उत्पादन हेतु बीज रूप मे कार्य करते है। एक व्यक्ति आ रहा है, मार्ग मे मुनि मिल गये। उसने कटु शब्दो से मुनि का स्वागत किया, विभिन्न तौर-तरीको से उपहास किया। मुनि ने बाते सुनी पर विचार नही किया। साथ मे ही चल रहे मुनि के उपासक ने भी ये बाते सुनी। बात वैसे कुछ नही थी पर उसका विचार बना कि सतो का कठोर शब्दो से उपहास करना अयुक्त है। मुनि ने विषय को प्रवेश नही दिया, देना भी नही चाहिए था, क्योकि यदि प्रवेश दिया जाता और वह यदि भावधारा से जुड जाता तो घातक होता और आगे नये बीजो को अकुरित करता, मुनि यह जानते थे। लेकिन उस भाई ने विचार किया, प्रवेश दिया तो आगे बात तन गई। बात इतनी बढी कि दोनो के मन मे रोष उभरने लगा। रोष से भावधारा मे जो कुछ निर्मित हुआ उसने गहरे सस्कार का रूप ले लिया। वह एक-दूसरे के प्रति द्रोह, द्वेष और बैर का कारण बना। बात ही बात मे तन गई और भावधारा मलिन हो गई। अब यदि उस भावधारा को निर्मल करना है तो शोधन आवश्यक है। जिससे कारणो की खोज करके उन्हे नष्ट किया जा सके। प्रभु ने शोधन प्रक्रिया के लिए जो सूत्र दिए है, उसके माध्यम से निर्देश दिया है कि यदि भावधारा को निर्मल करना चाहते हो तो अपने पापो को उगलने का प्रयत्न करो। आज मनोचिकित्सक जो मन की गहराइयो का अध्ययन करना चाहते है, कुछ ऐसी ही प्रक्रिया का सहारा लेते है। एक उदाहरण ले—एक आठ-दस वर्ष की बच्ची बीमार हो गई। कारण बना उसका भाई। खेल-खेल मे अनबन हो गई, उसने कह दिया—मै अब तुम्हारे साथ कभी नही खेलूगा। गहरा सदमा लगा। बच्ची बीमार हो गई। पिता करोडपति सेठ था, खाने-पीने की कमी नही थी, सारे सयोग सुलभ थे। बच्ची माता-पिता की लाडली थी अत सभी हैरान हो गए। एक नही अनेक चिकित्सक आ गये। अनेक जॉचे हो गई, दवाई भी दी गई पर निदान नही हुआ। एक मनोचिकित्सक भी आया। उसने कहा—मै बीमारी का उपचार करने की स्थिति मे हूँ। परिवार वाले उसे देवता का अवतार मानने लगे। डॉक्टर साहब उसे बचा लीजिए, पैसे की चिन्ता मत करियेगा। लाखो रुपये लगे, चाहे जितनी कीमती दवाई लगे, हमे मजूर है। बिटिया बच जानी चाहिए। डाक्टर ने कहा—प्रयत्न करना मेरा कर्तव्य है, आगे क्या होगा यह भावी के गर्भ मे है। परिवार वालो ने कहा, बी पी इन्स्ट्रूमेट, E C G जो कुछ चाहिए हमने सारे साधन घर पर उपलब्ध कर रखे है। जो चाहिए हम प्रस्तुत कर देगे। डॉ ने कहा—मुझे कोई यत्र नही चाहिए। मै एक बार मरीज को देखना चाहता

हूँ। डॉक्टर ने गहराई से निरीक्षण किया। बच्ची पलग पर सोई हुई थी, शरीर के अवयवो को देखा और अन्वेषण किया। फिर माता-पिता की ओर मुखातिब होकर बोला—मै आपसे कुछ बाते करना चाहता हूँ। माता-पिता सोचने लगे, केस सीरियस है, सामान्य नही तभी ये मरीज के सामने नही बल्कि अलग से कुछ कहना चाहते है। वे अलग कमरे मे पहुँच गये। बातचीत की गई। अनेक प्रश्न और समाधान हुए। डॉ ने पूछा—घर मे और कौन है ? नौकर-चाकर के अलावा इसके एक भाई और है। इसी का हमउम्र है। डॉ ने कहा—मै उससे भी बात करना चाहता हूँ। उसे बुलाया गया। डॉक्टर साहब ने उसकी बाते ध्यान से सुनी और सुनने के बाद उठते हुए कहने लगे—'मुन्ने, क्या तुम चाहते हो तुम्हारी बहिन अच्छी हो जाय ?' मुन्ने ने चहककर कहा—'हॉ हॉ जरूर। उसके बिना मेरा भी मन नही लगता।' डॉक्टर साहब ने कहा—आओ मेरे साथ। वे बच्ची के पास पहुँचे। बालिका पलग पर लगभग बेसुध-सी सोई थी। ऑखे बद, खाना पीना बद, आवाज देने पर भी ऑख नही खोलती थी। परिवार वाले चिन्तित थे कि इसने श्वास लिया है, वापस छोडेगी भी या नही। डॉक्टर साहब खाट पर बैठ गए। मुन्ने को सिर की ओर खडा करके कहा—अपनी बहिन के कान के पास आवाज करते हुए कहो कि 'बहिन उठो ना, चलो अपन गेद खेले।' मुन्ने ने एक बार कहा और डॉक्टर की ओर देखने लगा। डॉक्टर ने कहा—'एक बार और कहो।' उसने फिर कहा और डॉक्टर की ओर देखने लगा। डॉक्टर ने कहा—एक बार और कहो। अब तो चमत्कार हो गया। बहिन ने ऑखे खोल दी, फिर बद की, फिर खोली। डॉक्टर ने कहा—मुन्ने एक बार और कहो। उसने वही बात फिर कह दी। इस बार बहन की ऑखे घूमने लगी। एक बार और कहा तो वह उठकर बैठ गई—'हॉ भैया, तुम मेरे साथ गेद खेलोगे।' भाई ने कहा—'इसीलिए तो पुकार रहा हूँ।' बच्ची ने कहा—'मम्मी प्यास लगी है।' सभी हर्ष से प्रफुल्लित हुए। इतने दिनो से आज इसने पानी मागा है, पानी पिलाया गया। फिर उसने कहा—मुझे जोर से भूख लगी है। उसे भोजन कराया गया। फिर उसने कहा—'भैया चलो गेद खेलेगे' और दोनो खेलने मे लग गये। जिसे पारिवारिक जन गभीर रोग समझ रहे थे, जिसकी चिकित्सा के लिये लाखो रुपये खर्च करने के लिए तत्पर थे, उसकी चिकित्सा हेतु एक पुडिया भी नही लेनी पडी। बच्ची ठीक हो गई। प्रभु महावीर की दिशा मे बढकर मनोचिकित्सक ने निदान किया था। प्रभु ने कहा है, आलोचना, गर्हा और आत्म-निन्दा करो, भीतर जो भी ग्रथियॉ बन गई है उन्हे उगल दो। मानसिक दशा विकृत हो जाने से, सकोच से व्यक्ति जब बोल नहीं पाता तब

मनोचिकित्सक उसे इजेक्शन से बेसुध कर देते है फिर वार्ता प्रारभ की जाती है और बेहोशी के क्षण मे मत्रो के माध्यम से वार्तालाप किया जाता है। परिणाम यह होता है कि वह व्यक्ति भीतर की जमी बातो को निकाल देता है, वैर-विरोध की सारे बाते वह कह देता है। इस प्रकार अनेक अपराधी अपराध स्वीकार कराकर पकड़े जाते है। वहॉ तो बेहोश किया जाता है पर यहॉ प्रभु कह रहे है—हे आत्मन्। भावधारा को निर्मल करना है तो आलोचना कर। क्यो कही आलोचना की बात ? ससार को बढाने वाले तीन बीज है। आप कहेगे कर्म आठ है, ये तीन बीज कौन से है ? तीन बीज ससार वृद्धि के कारण है, इनके रहते हम मुक्त नही हो सकते। वे बीज है—(1) माया शल्य (2) निदान शल्य (3) मिथ्या-दर्शन शल्य। ये शल्य मोक्ष-मार्ग के विघातक है, अनन्त ससार-वृद्धि के कारण है। गौतम स्वामी ने पूछा—'भगवन् इन शल्यो को दूर करने का सूत्र क्या है ? ये शल्य तो जन्म-जन्मातर तक नुकसान पहुँचाने वाले है। प्रभो, आप करुणा के अवतार है—प्रत्येक प्राणी के लिए निर्झर रूप है, आप जैसे समर्थ चिकित्सक के रहते प्राणी पीडित न हो, ऐसी कृपा करे। आप जैसे तेजस्वी सूर्य के रहते अधकार का विलीनीकरण होना ही चाहिए।' गौतम की अनुनय का उद्देश्य था कि प्रभु वह सूत्र बता दे जिससे बीमारी समूल नष्ट हो सके। प्रभु ने गभीर गिरा मे कहा—'जहॉ रोग है तो चिकित्सा भी है। शका है तो समाधान-कार्य है, कारण भी है। उपाय है। वह है 'आलोयणा'। आप प्रतिक्रमण के समय कायोत्सर्ग मे कहते है—'आलोऊँ'। अगर भावधारा से उसका गहरा सबध नही जुड पाता है तो यह मात्र औपचारिक रह जाता है। इस विषय को कुछ खोलकर कहूँ।

'आ' उपसर्ग मे 'लोचृ दर्शने' से शब्द बना है। 'आ' समन्तात अर्थात् चारो तरफ से। 'आ' का सामस्त्येन अर्थ मे भी प्रयोग होता है। अपने अतर मे दृष्टि डालकर अन्वेषण कर बात को प्रकट करना या देखना—यह है आलोचना। सामस्त्येन अर्थात् समस्त प्रकार से और इस प्रकार अपने भीतर की स्थिति जो-कुछ भी आपने देखी उसे गुरु के सामने प्रकट करना। प्रतिक्रमण करते समय कायोत्सर्ग मे जो 'आलोऊँ' कहा जाता है उसका भी तात्पर्य है कि अपने भीतर छान-बीनकर देखना कि कौन-सा कीटाणु है। दुष्प्रवृत्तियो से भाव-धारा मलिन हो रही है। अत उन कर्म परमाणुओ, कर्म स्कन्धो को देखने का प्रयास करे। यद्यपि उन्हे देख नही सकते पर उनके कार्य से उसका अनुमान कर सकते है। उन दुष्प्रवृत्तियो को खोजना है जो भावधारा को मलिन कर रही

है। कृष्ण के सदर्भ मे इसे समझे। उन्होने माता को आश्वासन दिया था। विचार करने लगे कि अतिमुक्त मुनि ने जो बात कही है कि आठ पुत्रो को जन्म दोगी तो निश्चित रूप से मेरे भाई तो होगा, पर कब—यह जानकारी नही है। माता विहला है, उपाय करना चाहिए। भीतर अनुसधान किया तो स्फुरणा हुई कि इस कार्य मे हरिणगमेषी देव सहयोगी बन सकते है। वे पौषधशाला मे जाकर तेला करते है, पौषधग्रहण करते है। कृष्ण सम्यग्दृष्टि आत्मा है। आचाराग सूत्र मे (1/3/2) कहा है—

सम्मत्त दंसी न करेइ पावं

अर्थात् सम्यक्दृष्टि आत्मा पाप नही करती। सम्यक्दृष्टि का लक्ष्य पाप का नही रहता है। उसके लक्षण है—सम, सवेग, निर्वेद, अनुकम्पा और आस्था। सम अर्थात् शत्रु-मित्र पर समभाव, सवेग अर्थात् मोक्ष के प्रति भावना बनना और निर्वेद अर्थात् ससार के विषयो से उदासीनता। इनमे सवेग, निर्वेद ये सूत्र बता रहे है कि सम्यक्त्वी का उद्देश्य पाप नही है। उसे करना पडे, यह वात अलग है—

अहो समदृष्टि जीवडा, करे कुटुंव प्रतिपाल।
अंतर्गत न्यारो रहे ज्युं धाय खिलावे वाल।।

धायमाता राजकुमार को खिलाती है, नहलाती है पर उससे अपनत्व के बधन मे नही बंधती, लगाव पैदा नही करती। आप भी लगाव न करे। सम्यक्-दृष्टि आत्मा पाप नही करती और इरादतन पाप कार्यो मे नही जुड़ती। भगवती सूत्र मे सदर्भ है—गौतम स्वामी ने पूछा—भगवन्, एक व्यक्ति प्रतिज्ञा करता है कि मै निरपराध त्रस जीव को नही मारूँगा, प्रथम अणुव्रत स्वीकार कर लिया। आप पहले व्रत स्वीकार करो, नियत्रण होगा तथा शोधन होगा। यदि नियत्रण क्षमता नही तो शोधन कैसे होगा? हॉ, तो उसने प्रतिज्ञा कर ली और वही व्यक्ति पृथ्वीकाय का आरभ करता है, खेती करता है और खेती करते हुए पृथ्वीकाय की निश्रा मे रह रहे त्रस जीवो का भी आरभ हो गया। सर्प या छोटे-छोटे जीवो की मृत्यु हो गई। भगवन्! जिसने व्रत ले रखा है क्या उसका व्रत खडित हुआ, उसमे दोष लगा? उत्तर मिला—'हे गौतम! णो इणट्ठे समट्ठे! यह अर्थ समर्थ नही, उसका उद्देश्य हिसा का नही था, उसने कर्तव्य का निर्वाह करने के लिए उपक्रम किया अत उसे पाप नही लगा।' साथ ही कहा गया है कि सम्यक्दृष्टि जीव सत्तर कोटाकोटि सागरोपम की स्थिति वाला बध नहीं करता, बध मिथ्यादृष्टि ही करता है। सम्यक्दृष्टि जीव अन्त कोटाकोटि

सागरोपम का ही बध करता है। पूरे एक कोटाकोटि सागरोपम का भी नही। कहने का तात्पर्य है कि सम्यक्दृष्टि का उद्देश्य पाप नही होने से उसके पाप कर्म नही बधता। बात चल रही थी श्रीकृष्ण की, कृष्ण ने देव को बुलाने के लिए पौषध किया, वे सम्यक्दृष्टि थे, उनमे मिथ्यात्व नही था। आप कहेगे जब कृष्ण ने सासारिक कार्य के लिए पौषध किया तो हम करे तो क्या हर्ज है? पर तथ्य को समझना होगा। सम्यक्दृष्टि आत्मा पाप नही करती। कृष्ण ने जो साधन अपनाया वह पापकारी नही था। उसने देव को बुलाने के लिए धूप-दीप नैवेद्य का प्रयोग नही किया, देव की मूर्ति बनाकर पूजा नही की। यदि उस प्रतिमा मे देवता होते तो वे प्रकट क्यो नही होते? देव शक्तिसम्पन्न होते है। वे मूर्ति मे आबद्ध नही रह सकते। उन्हे मूर्ति मे आबद्ध मानना सिर्फ हमारे अज्ञान का पोषण है। भगवान् या देवता की मूर्ति किसने बनाई? कारीगर ने। तो जब कारीगर ने भगवान् बना दिया तो वह स्वय भगवान् क्यो नही बन गया? कहा जाता है—मूर्ति मे प्राण-प्रतिष्ठा की जाती है। आगम साक्षी है—क्या निर्जीव मे प्राण-प्रतिष्ठा सभव है? प्राण दो प्रकार का होता है—1 द्रव्य 2 भाव। द्रव्य प्राण दस व भाव प्राण चार है। वे आत्मा के साथ रहते है। द्रव्य प्राण मूर्ति मे प्रक्षिप्त नही किए जा सकते क्योकि वे तो गर्भ मे ही जीव के साथ जुड जाते है। यदि कहे कि मत्रो से प्राण-प्रतिष्ठा होती है तो फिर हमे भी मत्रो की कृपा से सदेह मोक्ष क्यो नही मिल जाता? कृष्ण इस तथ्य से परिचित थे इसीलिए वैसी आराधना नही की। सम्यक्दृष्टि भाव से कार्य किया। पौषध मे देव के साथ आत्म सम्पर्क किया। आज का टेलीपैथी सिद्धान्त कहता है—आत्म सम्पर्क सभव है। हम अपने से हजार कोस की दूरी पर रह रहे व्यक्ति को मन से ही बुला सकते है और वह आ सकता है। टेलीपैथी मे इतना बल है क्योकि उसके माध्यम से भावधारा का सयोग बन जाता है। प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार सयोग बनाना चाहता है पर ऐसा कैसे हो? भावधारा कैसे जुडे? भावधारा ठीक हो तो आप शात रहेगे। मै पहले भी कह चुका हूँ कि तालाब के पानी मे तरगे ज्यादा आती है बजाय कुएँ के पानी के। भावधारा दह की भाति है और मन कूप की तरह। मन शात है, तरगे नही उठ रही है, तो भावधारा के साथ मन का सयोग करके कृष्ण ने देव का स्मरण किया। कृष्ण ने विधिपूर्वक पौषध पूर्ण किया। यह नही कि पौषध मे ही देव चला न जाय। तेले तो आज भी होते है पर देव नही आते क्योकि भावधारा पर नियत्रण और उसका शोधन नही होता। भावधारा का नियत्रण और शोधन हो तो देव को बुलाना कोई बड़ी बात नही है। कृष्ण ने पौषध को विधि से पूर्ण किया और फिर देव के यह पूछने पर कि मुझे

क्यो याद किया, कृष्ण ने कहा—मेरे एक भाई और होना चाहिए। देव ने कहा—आप तत्त्वो के ज्ञाता है, देव मे शक्ति नही कि किसी को बेटा या भाई दे सके पर अवधि ज्ञान से जानकारी हो तो बता सकते है। जानकारी यह है कि देवलोक से च्युत होकर एक देव तुम्हारे भाई के रूप मे जन्म लेगा किन्तु यौवन की दहलीज पर आते ही बाल-भाव से उन्मुक्त हो कर मुनि बन जायेगा। सयोगा विप्पमुक्कस्स परिवार के ममत्व को छोड देगा, निर्ग्रन्थ बन जायेगा। हम जानते है कि कृष्ण के भाई का जन्म हुआ, देवकी की अभिलाषा पूर्ण हुई, भगवान् अरिष्टनेमि का आगमन हुआ, कृष्ण अपने अनुज गजसुकुमाल कुमार के साथ दर्शन करने पहुँचे। भगवान् ने कहा—सयोगा विप्पमुक्कस्स, सयोग आत्मा को दु खी करते है।

सबुज्जह कि न बुज्जह, सबोही खलु पेच्च दुलहा। वे जाग्रत हुए। भगवान्, मेरी आत्मा इतने समय तक सयोगो मे भयकर रूप से जकड़ी रही है। पैरो से कठ नही मस्तक तक जकडा हूँ। भगवन् इस नागपाश से मुक्त करो। नागपाश से मेघनाथ को बाधा गया था, हनुमान को बाधा गया था। हनुमान ने क्या किया ? छोटा रूप बनाकर बधन से मुक्त हो गये। पाश का अर्थ रस्सी भी है और देखना भी है। आर्द्रकुमार साधु बन गये, देवो ने मना भी किया पर नहीं माने, भोगावली कर्मो के कारण वापस गृहस्थ जीवन मे आ गये। बारह वर्ष पूर्ण होने वाले थे। पत्नी चरखा लेकर सूत कातने बैठी। पुत्र ने पूछा—माँ क्या कर रही हो ? उत्तर मिला—'बेटे तुम्हारे पिता का बारह व्रर्ष का ही सयोग है। वे चले जायेगे, फिर क्या करूंगी। चरखे चला कर जीवन बसर करूगी।' पुत्र ने कहा—'ऐसी बात है तो मै नही जाने दूगा।' धागा लेकर पहुँचा। पिताजी सोए थे। उसने धागे से बाध दिया। 'पिताजी मैने बाध दिया है आप छोड़कर नहीं जायेगे।' आर्द्रकुमार फिर उस पाश मे बध गये। जितने आरे है उतने वर्ष तक घर छोड कर नही जाऊँगा। कहते है वे फिर 12 वर्ष के लिए बध गए। सूत मे बाधने की क्षमता नही थी पर सयोग, स्नेह, मोह ने बाध लिया, जकड़ गए। गजसुकुमाल कह रहे है—सयोग को छोडे बिना आत्मा निर्मल नहीं होगी मै शाश्वत सुख को पाना चाहता हूँ। 'अम्मापियर आपुच्छामि' माता-पिता को पूछकर आपके समीप दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ।

भगवान् ने कहा—अहासुहं देवानुप्पिया। भगवान् का मार्ग, जबरदस्ती का मार्ग नही है। गजसुकुमाल माता के पास पहुँचे। कृष्ण तो पहले ही चले गए

थे, सम्यक्दृष्टि आत्मा थी। उन्होने देखा गजसुकुमाल भगवान् की भक्ति मे है। वे साथ लाये थे पर ले गए नही। ये बाद मे पहुँचे। माता से अनुनय-विनय की। माता ने कहा—'पुत्र तुम्हारा नाम ही गजसुकुमाल है। गज के तालु के समान कोमल शरीर, साधु जीवन की आराधना कोई सरल कार्य नही है। वहाँ मखमली गद्दे-तकिए नही होगे। जमीन पर शयन करना होगा। पैदल यात्रा करनी पड़ेगी। वत्स-सयम का मार्ग कठिन है।' गजसुकुमाल ने कहा—'माँ, तुम कह रही हो वह यथार्थ है, तुम झूठ नही कह रही हो, मैने नही जाना, लेकिन जो-कुछ जाना वह आपकी बात से ही जाना कि वह पथ कटकाकीर्ण है। पर आप से प्रश्न है—आप वीर पुत्र की माता है या कायर पुत्र की?' माता क्या जवाब देती। कोई भी माता अपने पुत्र को कायर नही कह सकती। सोच रही थी—मै वीर माता हूँ, मैने वीर पुत्र को जन्म दिया है। मैने जन्म से ही नही किंतु गर्भ मे भी सस्कार दिए है। पुत्र कह रहा था—'माँ, कायर घबराता है, वीर वैसे मार्ग पर चलने से घबराता थोडे ही है।'

जरा हम अपनी ओर देखे। आज हम छोटे-से प्रत्याख्यान मे बधने से घबराते है। यद्यपि प्रत्याख्यान का बधन नही है वरन् बधन को तोडने वाला है। गाय खूटे से बधकर ही सुरक्षित रह सकती है। यदि खूटा छोड दे, जंगल मे दौड़ जाए तो खूख्वार जानवर गाय को मार डाले। सोचिये, व्रतो के खूटे से नही बंधे तो असयम और विकारो के खूख्वार जानवर-जन्तु हावी हो जायेगे। बहुत चर्चा हुई। माता ने कहा—'लाल, और तो मैने बहुत-कुछ देखा है। बस, तुम्हारा राज्य-अभिषेक और देखना चाहती हूँ।' कृष्ण को ज्ञात हुआ, वे भी आये। 'भ्राता, तुम साधु बनना चाहते हो, अच्छी बात है जरूर बनना पर अभी वय छोटी है, बडे हो जाओ, मै नही रोकूगा।' अलग-अलग लोगो की कैसी अलग-अलग प्रतिक्रियाएँ होती है। एक कहता है मै नही दूगा, तो वैरागी कहता है मै लेकर रहूँगा। ससार का नियम है कि क्रिया के साथ प्रतिक्रिया होती है। कृष्ण कह रहे है—मै चाहता हूँ साधु बनो पर अभी राज्य सचालन कर लो। गजसुकुमाल ने बहुत प्रार्थना की पर कृष्ण का आग्रह प्रबल था। गजसुकुमाल मौन रह गए। कृष्ण ने उन्हे राजा बना दिया। कृष्ण ने सोचा, इससे इनकी वैराग्य भावना की परीक्षा भी हो जायेगी। पता चल जायेगी कि इनकी भावधारा राज्य-भोग के सयोग से लिप्त होती है या निर्लिप्त रहती है। ये कही राजा बनकर सत्ता के नशे मे तो नही आते। यदि इनकी वैराग्य भावना दृढ होगी तो वह भी ज्ञात हो जायेगी। गजसुकुमाल सोच रहे थे कि कृष्ण से कह दूँ—

वैरागी हूँ, वैरागी हूँ, वैरागी को न धन चाहिये।
न राज चाहिये, एक नेम प्रभु की शरण चाहिये।

परन्तु आग्रह प्रबल था अत राजा बन गए। राजा से पूछा गया—क्या आज्ञा है? आदेश हुआ—'नापित को बुलाओ, ओगे पात्रे मगाकर, दीक्षा महोत्सव सम्पन्न करो और मुझे प्रभु चरणो मे समर्पित करो।' सारी प्रक्रिया हो गई। दीक्षित होते ही तिलमिलाहट लग गई। भगवन् मैने सयोगो को देख लिया अब इन्हे भावधारा से हटाना है। मै पूर्णत निर्विकार हो जाऊँ मुझे ऐसी आराधना, साधना, शोधन का सूत्र दे दो। आलोयणा तो फिर भी सरल है। उससे भी भावधारा का पूर्ण शोधन कठिन है। मेरी आत्मा अनादि सस्कारो से निर्बल बनी हुई है पर प्रभु, आपके चरणो का प्रसाद मिल गया है इसलिए आपका शिष्य कायरता नही दिखायेगा। सूत्र दिया गया—भिक्षु की बारहवी-महापडिमा। इससे भावधारा शुद्ध होगी। यदि सही आराधना की जाये तो अवधि, मन·पर्यव या केवलज्ञान की उपलब्धि। यदि आराधना सही नही, उफान आ गया अथवा मन का आलोडन हो गया तो पागल हो जाये। ऐसी स्थिति मे भावधारा छिन्न-भिन्न हो जाती है, मानसिक उत्ताल, तरगे चहुँ ओर उठने से नियंत्रण टूट जाता है। परिणाम, दीर्घकाल तक रोगग्रस्त होने की स्थिति, सासारिकता के बधनो की विकरालता और उद्धार की आशा क्षीणतर। गजसुकुमाल ने महाकाल श्मशान मे महा प्रतिमा स्वीकार कर ली। अगारे सिर पर धधकते रहे, परन्तु समभाव से गजसुकुमाल सहते रहे।

उन्होने एक दिन के प्रयोग से ही, प्रभु-प्रदत्त सूत्र की आजमाइश कर ली। सयम का एक अनोखा उदाहरण आचार्य भगवन् ने भी सन् 1950 मे दिल्ली चातुर्मास मे प्रस्तुत किया। सग्रहणी के इलाज हेतु वैद्य आये। परामर्श दिया कि आपको केवल दही और मठे का सेवन करना है। पानी की एक बूद और अन्न भी नही लेना है। नौ माह तक औषधि दी गई। आचार्य भगवन् ने पूरी सावधानी से इलाज लिया। सुबह दही ले आते और बाद मे छोटी पात्री मे दूध लाकर दही जमा देते। गुरुदेव ने नौ माह तक पानी की वूंद भी नहीं ली। सब्जी मडी मे चातुर्मास था, पंडितरत्न श्री सुदर्शनमुनिजी म सा साथ ही थे। नौ महीने की चिकित्सा के बाद वैद्य ने कहा—अपने जीवन मे ऐसा रोगी व इलाज लेन वाला, सिर्फ आप ही मिले है। अपने-आप पर इतना अधिक नियत्रण रखने वाला मुझे आज तक नही मिला था। आज तो हमे चाहिए एन्टीबायटिक दवाइयाँ, तत्काल परिणाम, क्योकि धन की लगाम खींच रही है। पर यदि

लगाम अपने हाथो मे ले ले तो सूत्र उपयोगी हो जायेगा। गजमुनि ने मोक्ष मार्ग के विघातक उन तीन शल्यो का उद्धरण कर लिया। कीटाणु जलते गए और ज्योति प्रकट होती गई। शल्य निकलते गये और पॉव मुस्तेदी से मुक्ति की ओर बढते गये। कैवल्य प्राप्त कर लिया। निष्कर्ष यह निकलता है कि आलोयणा सामक्त्वेन अर्थात् समस्त प्रकार से कीटाणु का निरीक्षण किया जाय, शल्य की शोध की जाय फिर कार्यान्विति की जाय।

भाव-शुद्धि होगी, तभी भावधारा निर्मल होगी और शोधन प्रक्रिया पूर्ण होगी। शोधन का सैद्धातिक व प्रायोगिक स्वरूप जानना आवश्यक है। पर्युषण मे इसी दिशा मे प्रयास किये जाने चाहिये। कृष्ण ने अपने कर्तव्य-भाव का निर्वाह किया। पाप से लिप्त नही हुए। उत्तरदायित्व को निर्वहन करने का प्रसग समझे पर लिप्त न बने। हम भी भावना से सयोगो को हटाए तो शोधन होगा। नये सयोग नही जुडेगे, परन्तु पुराने सयोग हटाने के लिए प्रयत्नशील होना होगा। दुष्प्रवृत्तियो की आलोयणा करे कि मैने कितने काषायिक भावो के सदा सबध जोडे है। प्रतिक्रमण करे। पर शोधन प्रक्रिया इतने से ही पूर्ण नही होगी, चित्तवृत्ति को निर्मल करना होगा। वह यदि नही की गई तो फिर ससार के खेल चलते रहेगे। सवेग और निर्वेद भाव जागे। आरभ परिग्रह से बचे, पॉच महाव्रत स्वीकार कर शुद्ध साधु जीवन जीने का प्रयास करे तो फिर मगलमय दिशा की ओर गति सुनिश्चित होगी। ❖

भाद्रपद शुक्ला 1
13-9-96

सच्चे अणगार का स्वरूप

जो आत्माए सयोग से मुक्त हो गई है उन्हे अणगार बनना होगा और जो अणगार बन गया है उसे भिक्षु बनना होगा। साधु, मुनि, सयति, सवृत, अणगार, भिक्षु, श्रमण—ये लगभग पर्यायवाची नाम है। भिक्षु से भी साधु का बोध होता है और साधु तथा मुनि से भी। प्रश्न यह है कि जब एक ही अर्थ को प्रकट करने वाले ये एकार्थक शब्द है तो एकार्थक दो पदो का इस गाथा मे प्रयोग क्यो किया गया—

अणगारस्स भिक्खुणो

अणगार कहने से ही बात आ गई तो उसके साथ ही, भिक्षु के विनय को कहूँगा, यह बात क्यो कही गई? गणधर निरर्थक वचनो का या निरर्थक-पद विन्यास करे यह सभव नही है। इस पद पर चिन्तन करने से एक बात स्पष्ट होती है कि जो अणगार बनता है उसे भिक्षुक बनना होगा। भिक्षुक नहीं बना तो अणगार भी नही बन सकेगा। घर नही होने से ही अणगार नही है इसलिए भिक्षुक पद का न्यास किया गया है क्योकि अणगार होने के पश्चात् कोई भी पदार्थ उसके स्वामित्व मे नही रहता है। लेकिन वह शरीर के साथ रह रहा है तो शरीर निर्वाह के लिए आवश्यक साधनो की अपेक्षा को नकारा नही जा सकता। अन्न, वस्त्र, जल की अपेक्षा रहती है। प्रभु ने कहा है—'सव्व से जाइय होइ, णत्थि किंचि अजाइय'। साधक तुमने घर त्याग दिया है अत ऐसा सोचकर घबराओ मत कि अब निर्वाह कैसे होगा? भिक्षा से तुम आजीविका चलाना। बडा कठोर व्रत है। कहा गया है—'मागण वाला मर गया, जो कोई मागण जाय'। मागने वाला मर-मरकर भी माग रहा है तो क्या वह भूत हो गया? भूत नही हुआ है। इसमे गहरा चिन्तन है कि भगवान् ने साधक को मरना सिखाया है कि तुम मरो। यह तो उल्टा गणित हो गया। एक ओर तो कहते है कि 'सव्वे-जीवावि इच्छति जीविउ न मरिज्जिउ' अर्थात् सभी जीव जीना चाहते है, कोई मरना नही चाहता और प्रभु कहते है—मरना सीखो, मरो। यह उल्टा गणित नही है, इसमे गहरा अर्थ है। अब तक तो व्यक्ति बहुत बार मरा, पर शरीर से मरा। आशा, तृष्णा नही मरीं इसलिए प्रभु मरण सिखाते है। मरना

सीख गया तो जीवन-कला सीख लेगा। मरने का ज्ञान नही तब तक जीवन अधूरा है। इसलिए प्रभु ने कहा है—मरना सीखो। क्यो सीखो? मागना बहुत कठिन काम है, हर व्यक्ति हाथ नही पसार सकता। पर साधु बनने के बाद हाथ पसारना होगा, उदरपूर्ति के लिये। यह नही कि अणगार बन गया, साथ मे गाडा भर लिया, टिफिन आ गया, जब चाहे जहाँ चाहे आहार कर लिया फिर आगे चलना प्रारम्भ कर दिया। पुद्‌गलो के प्रति पूर्ण त्याग-भाव होने पर ही अणगार बना है। जब वह अणगार है तो उसे भिक्षावृत्ति अपनानी होगी। ऐसा क्यो कहा गया? एक स्थान पर बैठकर भी भोजन किया जा सकता था। बहुत से भक्त आमत्रित करेगे—'भगवन्, आज मेरे घर पधारे। यहाँ खुशी से बैठकर भोजन करे।' पर ऐसे भोजन के पीछे हिसा आश्रव जुडेगा और अनेक सयोग उसके पीछे लग जायेगे। फिर साधु को सोचना पडेगा कि आज कौन बुलाएगा, और भक्तो मे भी होड लग जायेगी कि अमुक ने महाराज को ऐसा भोजन कराया तो मै उससे बढिया भोजन कराऊँ। इस प्रकार आरभ प्रवृत्ति जुड जायेगी।

निकला था घर से सयोग छोडकर पर इस प्रकार तो सयोग जुडते चले जायेगे, अणगार-वृत्ति सुरक्षित नही रह पायेगी। इसलिए भिक्षु ने कहा है कि भिक्षावृत्ति स्वीकार कर। जहाँ वह भिक्षा-वृत्ति स्वीकार करेगा, उसका सबसे पहला प्रभाव होगा अहकार पर चोट। अरे मै इतने बडे घर से निकला हुआ हूँ और भिक्षा के लिए जाऊँ? इसलिए प्रभु ने कहा—भिक्षा के लिए जा और नही जाता तो कर ले तपस्या। एक दिन, दो, तीन, चार और मास-खमण, दो मास खमण। आखिर अह झुकेगा और उदरपूर्ति के लिये आहार लाना होगा। भिक्षा के लिए जायेगा, अह पर चोट होगी तभी अणगार वृत्ति सुरक्षित रह पायेगी, तभी वह यथार्थ मे भिक्षुक होगा। एक उदाहरण ले। शात-क्रान्ति के अग्रदूत आचार्यश्री गणेशीलालजी म सा थली प्रदेश मे भिक्षा के लिए गये, वहाँ भाई और बहने मना कर देती। एक बार वहाँ के जैनो (?) ने आचार्यश्री के पात्र मे कुत्ते के पिल्ले डाल दिये। आचार्यश्री ने कहा, वैसे ये हमारे काम के नही है पर आज मुझे प्रसन्नता है कि तुमने कुछ देना प्रारम्भ किया, कुछ देना सीखा। उन्हे कुछ ऐसे ही सस्कार मिले हुए थे कि 'अमुक पथ के साधुओ के अलावा शेष जो भी है वे वेशधारी है।' प्रभु महावीर को सभी स्थितियो का ज्ञान था। वे जानते थे कि भिक्षा पाने मे साधुओ के सम्मुख समस्याएँ आयेगी इसलिये उन्होने अणगार को भिक्षा देने के लिए श्रावको को भी कुछ सकेत दिये है। अतिथि सविभाग व्रत यह नही कह रहा है कि साधु को ही देना, पर साधु चूकि

तिथि नही बाधता और जिन चौदह प्रकार की 'प्रासुक एषणीय' वस्तुओ का कथन लिया है और वे अतिचार भी साधु जीवन से सबधित है इसलिए बारहवा व्रत निपजता है सतो को दान देने से। पर यह नही कि सतो को ही दान देकर इस व्रत की आराधना की जाती है। सत आपके घर कब आएगे? तुगिया नगरी के श्रावको के लिए कहा गया है कि उनके द्वार दान के लिए सदा उन्मुक्त रहते थे। यदि राजहस को बुलाना है तो अन्य पक्षियो को दाना डालना पड़ता है ताकि कभी घूमता हुआ राजहस भी आ जाये।

एक कथानक है कि एक राजा के हाथ मे जहरीला फोडा (मोती छाला) हो गया। वैद्य ने बताया कि यदि उस पर राजहस चोच मार दे तो फोड़ा ठीक हो सकता है। पर समस्या हुई कि राजहस को कैसे बुलाया जाय? मत्री ने कहा—राजन् कुछ मेहनत तो करनी ही होगी। दूसरे पक्षियो को भी चुग्गा डालना होगा, ताकि कभी राजहस भी आ जाये। हम जानते है कि राजहस सिर्फ मोती ही चुगता है। छत बनाई गई और उसमे एक जगह छिद्र रखा गया ताकि उसमे वह फोडा भली प्रकार से रखा जा सके। छत पर पक्षी दाना चुगने के लिए आने लगे। सयोग से एक दिन भूला-भटका एक राजहस भी पहुँच गया। मत्री ने कहा—राजन्! तैयार हो जाइये। हाथ के फोड़े को उस छिद्र मे स्थापित कर दिया गया। हाथ या व्यक्ति ऊपर दिखाई नही दे रहा था अत पक्षियो के भयभीत होने की कोई सभावना नही रही थी। राजहस असली मोती चुगता हुआ आया और उस जहरीले फोड़े की नोक को भी मोती समझकर उस पर चोच मार दी। जहर बाहर आ गया, छाला ठीक हो गया।

मै आपको तुगिया नगरी के श्रावको की बात बता चुका हूँ कि वे अपने घर के द्वार उन्मुक्त रखते थे। दस प्रकार के दान बताये गए है उनमे एक अनुकम्पा दान भी है, उसके लिए निषेध नही किया गया है। यदि अनुकम्पा का स्रोत सूख जायेगा तो सम्यक्त्व की भावना कैसे सुरक्षित रहेगी? घर के द्वार सभी के लिए खुले रहेगे तो कभी संत भी आ जायेगे। भिक्षा के लिए निकले हुए सत के लिए प्रभु ने सकेत दिया है—वह केवल उन्ही घरो मे न जाये जिन घरो मे अनेक साधन है, मिर्च-मसाले युक्त पदार्थ है। यह न सोचे कि अनेक व्यजनो व रसो के आस्वाद से इन्द्रिय-पोषण होगा, इन्द्रिय-पोषण से मन आगे से आगे बढता जायेगा। उस पर चोट करने के लिये वैसी साधना जरूरी है। वह 'सामुदानिक' भिक्षा करे। यह नही कि अमुक-अमुक घर मे ही जाय, अन्य मे नही। 'सामुदानिक' भिक्षा अर्थात् जिन चौको मे मास नहीं बनता, जो

अप्रीतिकारी कुल न हो तथा जिनका आचार-व्यवहार शुद्ध हो ऐसे उच्च-नीच सभी घरो से साधक समान भाव से आहार ग्रहण करे। जिन घरो का या बहनो का आचरण शुद्ध नही हो ऐसे दुगुच्छ कुलो मे साधु न जाये। साधक परिभ्रमण कर शुद्ध आहार ही उपलब्ध करे। गणधर गौतम भिक्षार्थ जाने से पूर्व प्रभु के चरणो मे वदन-नमस्कार करते और कहते इच्छमिण भते? तुब्भेहि अब्भणुण्णाए समाणे अर्थात् आपकी आज्ञा हो तो मै भिक्षा के लिए परिभ्रमण करना चाहता हूँ और फिर वे ऊँच, नीच, मध्यम कुलो मे समान भाव से भ्रमण करते, मन मे किसी भी प्रकार की उद्विग्नता नही रखते। दशवैकालिक सूत्र मे कहा है—'अव्वक्खित्तेण चेयसा'—यदि चित्त विक्षिप्त है तो वह यथार्थ मे भिक्षावृत्ति नही है, चित्त की निर्मलता तथा एकाग्रता एक आलम्बन पर स्थिर करने से ही होगी। विक्षिप्तता से चित्त अनेक वृत्तियो को प्रादुर्भूत करेगा, अनेक सतानो को पैदा करेगा। ये वृत्तिया न पनपे इसलिए एक लक्ष्य बने। वृत्तियो के जाल को समाप्त करने के लिए 'वृत्ति-सक्षेप' की बात कही गई है। 'वृत्ति-सक्षेप' अर्थात् भिन्न-भिन्न दिशाओ मे दौडती वृत्तियो को सक्षिप्त करना। वह होता है भोजन के आधार पर। भोजन सही नही तो मन उडान भरता रहेगा, नई-नई वृत्तियाँ पनपेगी। ऐसी स्थिति न बने, इसलिए 'वृत्ति-सक्षेप' की आवश्यकता है। अपनी आवश्यकताओ को सक्षिप्त करे। उनका फैलाव नही करे। व्यक्ति चाहता है कि वह सारा का सारा बुद्धि से ग्रहण कर ले, पर एक बुद्धि पर इतना भार क्यो डाला जाए? भूख पेट की होती है उसे बुद्धि से क्यो जोडा जाय। बुद्धि बेचारी कट कर रह जाती है। सभी के अलग-अलग कार्य होते है। जिसके जिम्मे जो कार्य है वह उसे पूर्ण करे। एक पर ही सारा भार नही डालना चाहिए अन्यथा वह सफल नही होगा। बुद्धि आगे से आगे भागती है। भूख पेट की होती है पर व्यक्ति पेट से जोड देता है—भूख नही है, पर बुद्धि यह समझती है और ग्रहण करने की स्थिति बन जाती है। इसलिए 'वृत्ति-सक्षेप' की जरूरत है। जब इस प्रकार की अवस्था आ जाती है तब अणगार का जीवन व्यवस्थित हो जाता है। सयोग से मुक्त ऐसा अणगार भिक्षावृत्ति से अपना जीवन-यापन करता है।

भिक्षाचर्या को 'गोचरी' भी कहा गया है। गोचरी=गउ चरी। गधा घास को समूल उखाड देता है जबकि गाय ऊपर-ऊपर से चरती है, जड़ सही सलामत बनी रहने देती है। दूसरी उपमा भँवरे की भी दी गई है कि भँवरा अनेक फूलो से थोडा-थोडा पराग ले लेता है—फूल भी नही कुम्हलाता, खिला रहता है, और

वह अपनी आत्मा को तृप्त भी कर लेता है। इसी प्रकार अणगार भी जब सभी घरो से थोडा-थोडा आहार लेता है तब किसी एक पर भार-भूत नहीं होता। यदि एक ही घर से लेगा तो निश्चित आरम्भ-समारम्भ होगा और उसका पाप भी उसे लगेगा। तब आश्रव द्वार रूप सयोग जुड जायेगा।

अनाथी मुनि से सम्राट श्रेणिक ने पूछा—बहुत-से व्यक्ति जोश मे आकर साधु तो बन जाते है पर 'वृत्ति-सक्षेप' नही कर पाते। वृत्तियो का प्रसार कर लेते है, रसना-पोषण में लग जाते हैं और इस आशा से भ्रमण करते है कि वहाँ रसो का योग मिलेगा। ऐसी भिक्षावृत्ति वस्तुत भिक्षावृत्ति नही, रस-लोलुपता है। ऐसे व्यक्ति अणगार नही है, भिक्षुक नही है। भिक्षुक तो वही है जो समान भाव से सभी घरो से चाहे रूखा-सूखा ही मिले, पाकर मस्त हो जाता है। उसका तो आदर्श होता है—

साधु तो मगन भये, हरि गुण गाय के।

शरीर रत्नत्रय की आराधना का साधन है इसलिए इसे थोड़ा-थोड़ा भोजन देना होगा ताकि साधना का भाव भी चलता रहे। इसे टिकाने के लिए भाड़ा देना होगा। इस प्रकार के अणगार भिक्षुक के लिए प्रभु ने कहा है कि--विनय का कथन करूँगा। भिक्षावृत्ति से जब अह गल जायेगा तब वह प्रणत हो जायेगा। उसकी जो अवस्था बनेगी उसका विनय कैसा हो यही अभिक्रम प्रभु का अभिप्रेत है। प्रभु ने साधु के लिये ही नही किन्तु श्रावक के लिए भी विनय की बात कही है। श्रावक के लिए धर्म-स्थान मे प्रवेश करने के पॉच अभिगम बताये है, उसमे चौथा अभिगम है—दृष्टि-वन्दन अर्थात् धर्म-स्थान मे प्रवेश करते ही जहॉ से चारित्रात्माएँ दृष्टिगत हों वही से मस्तक झुका कर वन्दन करे। अस्तु, ''। र का स्वरूप व्यक्त करते हुए भिक्षुक से कहा है कि वह स्वय मरे, दूसरों को नही मारे। यह मरना शरीर से नही है, बल्कि कषायो को मारना है, इन्द्रियो-विषयो-वासनाओ को मारना है। इसी प्रकार पॉच प्रकार का मुण्डन बताया है कि इन्द्रियो का जो विषयो से लगाव है उसका पोषण मत कर, तुझे विजित-इन्द्रिय बनना है। इन्द्रियो की दौड़ को लगाम से वश मे करना—यही 'वृत्ति सक्षेप' है। इन्द्रियो को विषयो से मोड़ देना ही मरण होगा। मरण होगा अह का, विषय-वासना का और तभी चेतना का स्वरूप उजागर होगा। जब तक भीतर का स्वरूप अनावृत नही होगा, सयोग बना रहेगा और जिसमे सयोग भाव बना रहेगा वह साधु नहीं है। साधु सयोग के जजालो मे उलझा तो चेतना आवृत होगी, वह अधोगामी हो जायेगा। साधु बनने के बाद भी उत्पथगामी रह जायेगा

और आत्मोत्कर्ष नही कर पायेगा। उत्कर्ष को अपनाना है तो प्रभु के निर्देशानुरूप मरण को अपनाओ। ऐसा करने पर ही वह भिक्षु शात-प्रशात ऊर्ध्वमुखी बनेगा।

सन् 1981 की घटना है। आचार्यश्री नानेश का चातुर्मास उदयपुर था। बाबू सरजुगसिहजी, जो एक तान्त्रिक थे, आचार्य भगवन् के दर्शनार्थ आये। साथ मे श्री हिम्मतसिहजी भी आए थे। उन्होने वहॉ बैठे-बैठे कहा—'अरे हिम्मत। यो सत तो राख थई गयू छे।' बाद मे समझ मे आया कि वे कह रह थे कि आचार्य भगवन् मे आसक्ति लेश मात्र भी नही रही है, विषय, वासना, कषाय, सभी नष्ट होकर राख बन चुके है। इन्द्रियो के दौडाये नही दौडते। शात हो गये है। पास बैठे हम सतो के लिए कहा—'ये अभी अगारे है।' अगारे अर्थात् धधकने वाले। अभी इनके दुर्गुण शात नही हुए है। अभी ये आसक्ति, लगाव से जुडे हुए है। हम जानते हैं कि व्यग्रता है तो उत्तेजना बनी रहेगी। ऐसी स्थिति मे वह भिक्षु या अणगार नही रह पायेगा। जो एकाग्र बनेगा, वृत्तियो को सक्षिप्त करेगा, वह ऊर्ध्वमुखी होगा, राख बनकर चतुर्दिक प्रसृत होगा। इस प्रकार साधना-आराधना और धर्मप्रज्ञप्ति से अणगार-भिक्षु ऊर्ध्वारोहण करेगा। ❖

भाद्रपद शुक्ला 9
21-9-96

विनय : धर्म का प्रवेश द्वार

चरम तीर्थेश प्रभु महावीर की वाणी की सबसे बडी विशेषता यह है कि उसमे सघन आध्यात्मिकता और व्यापक लौकिकता का गहन परन्तु सहज समन्वय उपलब्ध होता है। यह समन्वय मनुष्य को अपनी कार्यप्रणाली एव चिन्तन को निर्देशित एव नियोजित करने की दृष्टि प्रदान करता है। इस रूप मे चेतना की बात करते हुए प्रभु ने उसके जिन दो विभागो की चर्चा की है वे व्यावहारिक ही नही मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी स्वीकृत है। ये विभाग है— (1) आवृत चेतना और (2) अनावृत चेतना। चेतना का वह भाग आवृत चेतना कहलाता है जो ढका हुआ अथवा प्रच्छन्न होता है। इसी प्रकार अनावृत विभाग वह है जो प्रकट अथवा व्यक्त होता है। आवृत और अनावृत विभागो की बात किसी विशिष्ट चेतना की नही, सम्पूर्ण चेतना की है। ऐसा नहीं होता कि एक चेतना का एक भाग अनावृत हो और एक आवृत रह जाय। कर्म बधन की प्रक्रिया भी इनके साथ जुडी होती है। आत्मा के प्रदेशो के साथ 'कार्मण वर्गणा' का जो सयोग होता है उसे ही 'बध' शब्द से परिभाषित किया गया है। इस सयोग से मुक्त होना आत्मा का लक्ष्य होना चाहिये। कहा भी गया है—'सयोगा विप्पमुक्कस्स।' सयोग से मुक्त होने के लिये ही हमारी साधना होनी चाहिये। पर आज व्यक्ति सयोग को जोडता जा रहा है। वह ऊपर से तो चाह करता है कि शाति प्राप्त करूँ, सुख प्राप्त करूँ पर रहता है तनावग्रस्त, टेन्शन से घिरा। इसका क्या कारण है? कारण है—चाहत मे ईमानदारी की कमी। एक चाह तो ऊपरी स्तर से होती है और एक भीतर की गहराई से। आज जो सुख या शाति की कामना है वह ऊपरी है, अतर मे तो सयोग की गहरी जडे जमी हुई है और उनका सिचन भी जारी है। बबूल बोने पर आम्रफल प्राप्त नही हो सकते। जिस वृक्ष को सींचा जा रहा है। उसके अनुरूप ही फल मिलेगे। आज की जो स्थितियाँ है, चाहत मे जो गहराई नहीं है उसमे तो टेन्शन और द्वन्द ही प्राप्त होगा। यथार्थ सुख की चाहत है तो गवेषणा अथवा खोज करनी होगी। पर जब तक गहराई मे नही पहुँचेगे तब तक दु ख-द्वन्द्व के कीटाणु पनपते रहेगे। जब तक इन्हे पूर्णत नष्ट नहीं करेगे तब तक सुख-शाति का अनुभव नही हो सकेगा।

'सयोगा विप्पमुक्कस्स' गाथा की सम्यक् एव विस्तृत विवेचना आवश्यक है क्योकि इसे समझे बिना जीव-जगत के सारे खेल से छुटकारा नही पाया जा सकता। यदि सयोग आत्मा की भावधारा से अलग हो जाए तो हमारी चेतना अनावृत हो जायेगी, फिर उसके मुक्ति के प्रयासो मे कोई बाधा नही रह जायेगी। अभी हमारी चेतना प्रच्छन्न है, शरीर के भीतर छिपी हुई है, हम उसके दर्शन नही कर पा रहे है। हम केवल लेबल या आवरण को देख रहे है, माल को नही। माल देखने की क्षमता भी नही है। डॉक्टर एक्सरे से हड्डियो का फोटो ले सकता है, सोनोग्राफी से भीतर के चित्र ले सकता है, पर ये सारी प्रक्रियाएँ शरीर के साथ ही है जिनके द्वारा इस शरीर की गति को देखना, सुनना हो रहा है। शरीर से भिन्न जो तत्त्व है तथा जिनका प्रतीक अथवा पहिचान यह शरीर है, उसे हम नही देख पा रहे है। उसे केवल अनुभूतियो से जान रहे है। हम इतना जानते है कि यदि वह तत्त्व न रहे तो फिर शरीर गति नही करेगा, नीद भी नही ले पायेगा और लेगा तो ऐसी नीद लेगा कि फिर कभी जग नही पायेगा। यदि व्यक्ति के भीतर का हस उड जाये, चेतना प्रस्थित हो जाये तो फिर परिवार वाले भले रोते रहे, पर बाबू साहब या माताजी, कोई सुनेगा नही क्योकि सुनने वाला तो है ही नही, वह तो चला गया। पर वह सुनने या देखने वाला है कौन, उसे किसी ने कभी देखा है? कितनी अनोखी बात है कि हम जिसे जान रहे है वह शरीर देखने वाला नही है, देखने वाला भिन्न है। जो देखने वाला है, उसे हमने भुला दिया है और इस कारण स्वय मानसिक-मनोवैज्ञानिक बोझ से दबे हुए है।

हम दुनिया को देखते है कि क्या हो रहा है। टी वी के विविध कार्यक्रम देखते है, समाचारो से जानते है कि दुनिया मे कहॉ-कहॉ क्या-क्या हो रहा है, पर स्वय के भीतर के बारे मे कुछ नही जानते। हम बाहर ही बाहर देख रहे है, भीतर नही क्योकि ऑख का द्वार बाहर ही है। जिस दिन भीतर देख लेगे उस दिन अलग ही घटना घटित हो जायेगी। फिर बाहर की ओर ध्यान ही नही जायेगा। जिसने एक बार अदर की छवि देख ली, वह फिर बाहर क्या देखेगा? लेकिन हमने अदर देखा ही नही है। यह कहना भी गलत है कि कोई धर्म से दूर है। धर्म है किस चिडिया का नाम? हमने क्या धर्म का ठेका ले रखा है? धर्म हमारे-तुम्हारे कहने मे नही है। धर्म आत्मा के प्रदेश मे होता है। वह प्रत्येक पदार्थ मे है। किसी को भी धर्मरहित नही कहा जा सकता। सिर्फ आवश्यकता है उसे प्रकट करने की। सबके भीतर वह ज्योति है परन्तु छुपी है, प्रकट नही

है। स्थिति यह है कि ऑखे खुली तो है पर हम सोये हुए है। प्रभु महावीर कह रहे है--ज्योति प्रकट करनी है तो अपने-आपको सयोगो से मुक्त कर लो।

संयोगों की मुक्ति से ही विनय की बात जुड़ती है। उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन 'विनय सूत्रम्' की प्रथम गाथा मे ही भगवान् ने विनय की महिमा का प्रतिपादन कर दिया है। उनका वचन है—

संजोगा विप्पमुक्कस्स अणगारस्स भिक्खुणो।
विणयं पाउकरिस्सामि आणुपुव्विं सुणेह मे।।

अर्थात् जो सासारिक सयोगो से विप्रमुक्त है, अनगार है तथा भिक्षु है उसके विनय अर्थात् अनुशासन एव आचार का, मै क्रमश प्रतिपादन करूँगा, मुझसे सुनो।

तब क्या यह मान ले कि जो सयोगो से मुक्त है उसी की विनय की महिमा है। जब तक आत्मा सयोग से लिप्त रहेगी, विनय क्या है, नही जान पायेगी। हम सोच लेते हैं गुरु पधारे, हम खड़े हो गये, नमन कर लिया, विनय हो गया। पर विनय का स्वरूप समझने के लिये गहाराई मे जाना होगा। विनय कोई मामूली चीज नही है। वह धर्म का प्रवेश द्वार है। धर्म वृक्ष का फल मोक्ष है तो उसकी मूल अथवा जड विनय है। धर्म यदि मकान है तो विनय उसकी नींव है। धर्म यदि तिजोरी है तो विनय उसके ताले की कुजी है। विनय के विना धर्म मे प्रवेश नही हो सकता। धर्म क्या है? 'स्व' स्वरूप को प्राप्त करना और उसका माध्यम है 'विनय'। आज तक हमने विनय का स्वरूप समझा नही है। हमने सिर्फ नम जाने को या विनम्र बन जाने को ही विनय समझा है। अत. यह आवश्यक है कि हम विनय के सही स्वरूप को समझे। विनय शब्द 'वि' उपसर्ग के 'नय' मे जुडने से बना है। 'नय' का अर्थ है अनेक प्रकार के विचार जानने के मार्ग, और 'वि' अर्थात् विशेष। जिस मार्ग को विशेष रूप से जाना जाता है वह मार्ग आपके भीतर है और उसे प्रकट करने के लिए अपेक्षित होती है 'गुरु-कृपा'। उत्तराध्ययन सूत्र मे आगे कहा गया है कि उसे पाने के लिए आज्ञा और निर्देश का पालन कर। गुरु के समीप रहने वाला बनेगा तभी वह प्रवाह विशेष रूप से प्रवाहित होगा जो धर्म तक पहुँचाने वाला होगा। यदि वह प्रवाहित नही होगा तो तेरा अतर रोता ही रहेगा, उसे सतोष प्राप्त नहीं होगा। अत. हमारा परम कर्तव्य है कि हम गुरु की आज्ञा का पालन करे, अनुशासन मे रहे और विनय का मार्ग कभी न छोड़े। इस स्थान पर विनय के वास्तविक स्वरूप को भी समझ लेना आवश्यक है।

विनय के सामान्यत तीन अर्थ लगाये जाते है—नम्रता, आचार और अनुशासन। परन्तु यदि विचार करे तो स्पष्ट होगा कि अनुशासन मे प्रथम दोनो अर्थो का समावेश हो जाता है क्योकि बिना नम्रता और सम्यक् आचार के अनुशासन की स्थिति ही नही बनती। प्रस्तुत सदर्भ मे विनय का अर्थ सदाचार और अनुशासन ही प्रमुख रूप से समझा जाना चाहिये। अनुशासन के भी दस सूत्र बताये गये है जो गुरु मे निष्ठा का प्रमाण तो प्रस्तुत करते ही है, गुरु की कृपा का पात्र भी बनाते है। उत्तराध्ययन सूत्र के प्रथम अध्ययन मे 'विनय सूत्र' के अतर्गत भिक्षाजीवी निर्ग्रन्थ के विनय के सूत्रो की विस्तृत विवेचना की गई है। विनय मुक्ति का प्रथम चरण, धर्म का मूल तथा आभ्यतर तप है। विनयरूपी मूल के बिना सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूपी पुष्प ही जब प्राप्त नही होते तब मोक्षफल की प्राप्ति की अपेक्षा तो की ही नही जा सकती। अनुशासन और विनय के बिना साधक ज्ञानादि मे खोखला रह जाता है, उसके चरित्र की नीव सुदृढ नही होती। अनुशासन-विहीन शिष्य कालान्तर मे उच्छृखल एव स्वच्छन्द हो जाता है। ऐसा अनुशासन-विहीन दुर्विनीत शिष्य दुष्ट बैल की तरह सघ रूपी शकट और उसके स्वामी सघाचार्य की भी हानि करता है। गुरु की अवहेलना से सघ, सघ की अवहेलना से समाज और समाज की अवहेलना से व्यक्ति अथवा श्रावक का अस्तित्व ही सकट मे पड जाता है। इस प्रकार यदि हम मूल से चले तो सर्वप्रथम व्यक्ति अथवा श्रावक का विनयी होना अत्यावश्यक है क्योकि तब वह अपनी वृत्ति के अनुसार सघ और गुरु की सेवा करता हुआ स्वय का हित सुनिश्चित कर लेता है। दभ, पाखण्ड और सयोग का त्याग करता हुआ ऐसा सुश्रावक सघ की शान और गुरु का गौरव बनता है।

कल्पना करे—एक घड़ा है जिस पर कटोरी का ढक्कन रखा है। ऊपर से वर्षा हो रही है, घडा झकझोले भी खाता है, पर मुँह तो ढक्कन से बद है इसलिये वर्षा की एक भी बूँद का उसमे प्रवेश नही होगा। उसी प्रकार द्वार यदि उन्मुक्त नही है तो व्यक्ति का भीतर प्रवेश नही हो सकेगा। प्रभु के जब मोक्षगमन का समय निकट आ गया तब बिना किसी के पूछे उन्होने उत्तराध्ययन सूत्र की वाचना दी। प्रभु ने अतिम देशना देते हुए कहा—

सयोगा विप्पमुक्कस्स ।

सयोग से मुक्त बनो। मुक्त बनने के लिए ही उन्होने विनय को प्रस्तुत किया और कहा कि विनय से ही स्थिरता आने पर अतर मे धर्म का साम्राज्य स्थापित होगा। आज हम धर्म को ऊपर-ऊपर ढूँढ रहे है। क्रियाओ मे ढूँढ रहे

है। क्रियाएँ यद्यपि सहयोगी है पर कब ? जब हमारे भीतर विनय भाव का सही रूप प्रकट होगा, वह नही जो आज प्रकट है। समवसरण मे प्रभु विराज रहे है। नव मल्ली नव लच्छी राजा पौषधव्रत की आराधना के साथ प्रभु की अंतिम देशना सुन रहे है। प्रभु ने कहा—'सयोगा विप्पमुक्कस्स' और उसी के साथ गणधर गौतम से कहा कि देव शर्मा ब्राह्मण को प्रतिबोधित करने जाओ। विचार कीजिए—प्रभु के अतिम क्षण है। गौतम, जो जिदगी-भर साथ रहे थे, एक नहीं अनेक भव से जो साथ थे और ये थे वे क्षण, जिनके बाद प्रभु की आत्मा प्रयाण करने वाली थी, शरीर के कारागृह से मुक्त होने वाली थी, पक्षी उड़ जाने वाला था, ऐसे समय मे प्रभु कह रहे है—'गौतम। प्रतिबोध देने जाओ।' क्या कोई दूसरा साधु नही था ? क्या गौतम स्वामी यह नही कह सकते थे कि उसे तो मै कल-परसो भी प्रतिबोध दे सकता हूँ। भगवन् मेरी इतनी-सी विनय सुन लो, अभी मुझे अपने पास ही रहने दो। पर नही, वहाँ न कोई विनय थी, न कोई आग्रह, न कोई तर्क-वितर्क। कभी ऐसा भी होता है कि हम मुँह से न भी कहे कि गुरुदेव का आदेश है इसलिये मानना होगा पर मन मे उतार-चढाव, सकल्प-विकल्प आ ही जाते है। प्रभु महावीर ने जब कहा कि मै उन महात्माओ को विनय स्वरूप कहूँगा तब पहले विनय के स्वरूप का जीवन की प्रयोगशाला मे प्रयोग किया गणधर गौतम से प्रस्थान हेतु कह कर और प्रयोग सौ प्रतिशत सही रहा। गौतम ने सकल्प-विकल्प नही किया, आदेश हुआ ओर वे 'जो आज्ञा' कह कर रवाना हो गये। यह है 'विनय का स्वरूप'।

आज हम अपने अतर को टटोले, देखे कि क्या प्रक्रियाएँ होती है ? हम भी उपदेश मे कह देते है, जैसे मै भी कह रहा हूँ, और इसमे जोर नही लगता पर जब आचरण की स्थिति बनती है तब देखे कि भीतर कहीं कोई भाव प्रकम्पित तो नही होता, तर्क-वितर्क तो नहीं उभरता, तभी जान सकते है कि विनय के क्षेत्र मे चरण-न्यास हुआ या नहीं। कहना बहुत सरल है। परन्तु विनय पर व्यवहार करना उतना सरल नही है।

सेठ धनावह नगरश्रेष्ठि था। सेठ ही नही था पर अपनी सेठाई पर कायम भी था। सेठाई क्या ? आज तो ढोगी ज्यादा से ज्यादा प्रदर्शन करते है, पर वे प्रदर्शन-प्रिय नही थे। धरती पर चलने वाले थे। आज तो व्यक्ति थोडा-सा कुछ प्राप्त कर लेगा तो पॉव जमीन पर नहीं रखेगा। गाड़ी में यात्रा नहीं करेगा, आकाश मे उडान भरेगा चाहे वह वाह-वाह के लिये ही हो। सेठ साहब के आगे-पीछे दस लोग घूमने वाले हो तो सेठ साहब धरातल पर पैर नहीं रखे, पर

धरातल के बिना सेठाई टिकेगी भी नही। नीव मजबूत नही तो महल लडखडा जायेगा। भूचाल आया कि महल गिरेगा। छत के नीचे व्यक्ति दब जाय तो फिर क्या दशा होगी ? आज आवश्यकता है कि हम आकाश मे न उडे, पाताल मे जाना छोडे, जो जमीन पर चल रहे है उनके साथ कदम मिलाएँ। युगद्रष्टा आचार्यश्री जवाहरलालजी म सा क्रातिकारी सत थे, मेरा सौभाग्य नही था कि मै दर्शन कर पाता, पर कई व्यक्ति, जिन्होने दर्शन लाभ लिया है, बतलाते है कि उनमे इतनी प्रतिभा थी कि कोई सहसा उनके सामने बोल नही पाता था। कोई ऐसा क्षेत्र अछूता नही रहा जिस पर उनकी निगाह न पडी हो, चाहे वह सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक क्षेत्र हो, पिछडेपन अथवा व्यसन का क्षेत्र हो, सामने श्रावक हो या साधु, उन्होने किसी को नही बख्शा। श्रावक जीवन यदि व्यवस्थित नही तो वे कहने से नही चूके। रतलाम का प्रसग है, उनसे कहा गया कि नरेश व्याख्यान मे आने वाले है, वे खादी के विरोधी है अत आप खादी पर उपदेश मत देना। परन्तु वे अपनी आत्मा की आवाज ही सुनते थे। दूसरे के कथनानुसार नही चलते थे। अत उन्होने खादी का ही उपदेश दिया और नरेश खादी के हिमायती बन गये। उनके भीतर सम्प्रेषण हो गया। हम समझ ले कि बाहर या भीतर का कोई भी आग्रह लेकर या तनकर हम सयोग से मुक्त नही हो सकते। अत आवश्यक है कि हम वास्तविक को समझे और यथार्थ का अन्वेषण करे।

सेठ धनावह सार्थवाह था। उसने गाव मे ढिढोरा पिटवा दिया कि मै व्यापार के लिए जा रहा हूँ और जो-कोई चाहे वह साथ मे चल सकता है। मार्ग का व्यय मै वहन करूँगा। व्यापार के लिए अपेक्षित धन भी उपलब्ध कराऊँगा। यह ऐसा लाभदा यक प्रस्ताव था अत बहुत-से व्यक्ति भाग्य आजमाने के लिये साथ जाने को तैयार भी हो गये। सार्थ रवाना हुआ, मार्ग मे बीहड जगल था। सेठ तो बार-बार यात्रा करता रहता था। उसने सबको हिदायत दी—'आपकी सुरक्षा की जिम्मेवारी मुझ पर है पर मै एक चेतावनी देता हूँ—इस जगल मे नदी वृक्ष है जिसके फल सुहावने और मन को आकर्षित करने वाले है। थका व्यक्ति वृक्ष की छाया मे विश्राति की इच्छा करने लगता है, फल की सुगध दूर से ही उसे आकृष्ट करती है। मन होता है तोडकर खा लूँ पर वे फल जहरीले है इसलिए कोई भी वे फल न खाये क्योकि खा लेने के बाद कोई बचा नही पायेगा। मेरे पीछे-पीछे चले आओ, छाँव मे बैठना मत।' सेठ आगे-आगे चल रहा था। पीछे-पीछे बहुत-से व्यक्ति चल रहे थे। कई व्यक्तियो के मन मे

विचार आया कि सेठ ने हमे झासा दिया है। सेठ तो आगे है, खुशबूदार फल खाये बिना रहा नही जायेगा। उन्होने फल खा लिये। अहो! इतने मधुर फल खाये बिना अनुभूति कैसे होती। थोडे साथ मे भी ले ले बाद मे काम आयेगे। दो मिनिट सुस्ताने बैठे पर यह क्या? हमारी नसो मे खिचाव क्यो हो रहा है? थोडी देर मे उनका सारा शरीर ऐठने लगा। सेठ ने कहा था, पर हम विचलित हो गए। जिन्होने फल खाये, वे अपनी आयु पूर्ण कर गये। प्रभु ने भी अपने सतो को एव श्रावको को सदेश दिया है—देवानुप्रिय! मै जहॉ विनय की बात कर रहा हूँ और आप मानते है कि प्रभु चक्रवर्ती है, हमारे धर्म-रथ के सारथी है, तो इस रथ मे इसके पहियो के चिह्नो पर चलने वाला परदर्शी बन जायेगा। अपनी मुक्ति की मजिल को पा लेगा। बशर्ते नदीफल का भोग नही करे। वे नदीफल है—कषाय के और विषय-वासना के। यदि व्यक्ति इनमे उलझ गया, इन्हे अपनी प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लिया तो धर्म-रथ मे आरूढ नही हो सकेगा। वह फिर मुक्तिपुरी कैसे प्राप्त करेगा? यह आख्यान जिस रूप मे भी घटित हुआ हो, हम सुनते है, पर जीवन के साथ तौलते नहीं, जीवन का मूल्याकन नहीं करते, तो फिर मात्र सुनने से कुछ नही होगा।

मेरे पास एक प्रस्ताव आया है कि मै 'व्यसनमुक्ति' पर कुछ बात रखूँ। मै वही कह रहा हूँ। सार्थवाह की कथा के अनुसार जिन्होने फल खाये वे जहरीले फल उनके लिये मृत्युदाता बने। आज उस प्रकार के जहरीले फल तो नही है किंतु व्यसन के जहरीले फल है तो मृत्यु के विषैले कीटाणु उत्पन्न करते है। हम देखे कि कही ये कीटाणु हम अपने भीतर तो नही उड़ेल रहे है? कही विषैली चीजे तो गले के नीचे नही उतार रहे है? अमेरिका मे एक शोध हुई है। वहाँ के बारह प्रातो के सत्रह कारागृहो के तेरह हजार चार सौ दो कैदी जब न्यायालय मे लाये गये और सर्वेक्षण किया गया तो मालूम हुआ कि पचास प्रतिशत अपराध शराब पीने के कारण हुए थे। शराब पीने से मस्तिष्क और चिन्तन ही दुर्बल नही होता, जीवन भी असयमित हो जाता है। उसी के कारण अपराध होते है। आज हम कहते है कि आतकवाद बढ रहा है, अपराध बढ रहे है। आप चाहते तो सुख है पर तनाव और टेन्शन ही मिलता है। जब आप विष-वृक्ष की जड़ो का ही सिंचन कर रहे है तब निश्चित है कि वे पल्लवित-पुष्पित होगी। जहरीले फल लगेगे। हमारे भीतर शराब, व्यसन, अपराध, आतंक, तनाव ही फैलेगे, सहिष्णुता का अभाव होगा। थोड़ी देर के लिए व्यक्ति सोचता है—मै शराब पीकर तनाव रहित हो जाऊँगा पर नहीं, उसमे चिड़चिड़ापन और हताशा ही पैदा होगी।

एक घटना है। एक सेठ ने अपने इकलौते पुत्र का समारोहपूर्वक विवाह किया। मित्रो ने कहा टी-पार्टी का आयोजन होना चाहिए। ठीक है, टीपार्टी सही। आपको हमारी तीन बाते माननी होगी, दोस्तो का आग्रह था। उसने पूछा क्या बाते है ? पहली यह कि तुम अपनी पत्नी की पिटाई करो, नही तो वह सिर चढ जायेगी, बात नही मानेगी। लडके ने कहा—'नही, यह तो नही हो सकता। वह तो सदाचारिणी है, मै उसकी पिटाई नही कर सकता।' 'अच्छा तो दूसरी बात यह है कि छुरी से अपने माता-पिता का मर्डर कर दो नही तो वे रोक-टोक करेगे, मस्ती से जी नही सकोगे।' पुत्र ने कहा—'मुझे ऐसी मस्ती नही चाहिये। मै हरगिज यह काम नही कर सकता।' 'अच्छा दो बाते नही मानी, तो एक माननी ही पडेगी। हमारे साथ टी-पार्टी मे आना होगा।' उसने मजूरी दे दी। शराब का दौर चला। दोस्तो ने उसे छका कर शराब पिला दी, इतनी शराब पिला दी कि उसके सारे शरीर मे सनसनी फैल गई। उसके हाथ मे छुरी दे दी, होटल से बाहर निकले। वह अपने घर पहुँचा, द्वार खटखटाया, माँ ने द्वार खोला—'अरे। आज तू इतनी रात गये आया है ? यह क्या, तेरे मुँह से तो बू आ रही है। छि. छि तूने शराब पी है।' इतना सुनना था कि छुरी तो हाथ मे थी ही, कर दिया माँ पर वार। लहूलुहान हो गई, एक चीख निकली और जमीन पर ढेर हो गई। चीख सुनकर पत्नी आई, 'अरे पतिदेव, यह क्या ?' छुरी हाथ से गिर गई। 'अरे। आपने शराब पी रखी है ? सासूजी की हत्या कर दी। यह क्या किया ?' पास मे ही कपडा धोने का डडा पडा था। उठाया और शुरू कर दी पत्नी की पिटाई। प्रहार पडते ही पत्नी जोर से चिल्लाई। पास-पडोस के लोग इकट्ठे हुए और पकड कर उसे कमरे मे बद कर दिया। रात-भर वह कमरे मे उलट-पुलट करता रहा। फर्नीचर तोडे, पर्दे फाडे, इतना उत्पात मचाया कि थक गया। सुबह-सुबह थोडी नीद आई, नशा उतरा तो द्वार खुलवाया। यह क्या ? पत्नी कहाँ गई ? बाहर माँ का शव पडा था। यह छुरी। खून।। यह सब कैसे हुआ ? पड़ोसियो ने बताया—यह तुम्हारी ही करतूत है और तुम्हारी पत्नी को हास्पिटल मे भरती करवाया है। 'अरे कही दम न तोड दे।' पहुँचा अस्पताल मे। वह अब ठीक थी। सोचिये, एक शराब कितनी बुराई की जड है। इसीलिये कहते है कि पहले तो आदमी शराब पीता है, फिर शराब शराब पीती है और फिर शराब आदमी को पी जाती है।

एक सुप्रसिद्ध न्यायाधीश ने बताया है कि उनके कोर्ट मे जितने मुकद्दमे आते है उनमे से प्रत्येक दस मुकद्दमो मे से नौ मुकद्दमे शराब से सबधित होते

है। निश्चित ही शराब सब अपराधो की जड है। धूम्रपान, चोरी वेश्यागमन आदि कुव्यसन व्यक्ति को पागल बना देते है। तब व्यसनियो मे विनय भी कहाँ रहेगा और वे धर्म मे प्रविष्ट कैसे होगे? एक सर्वे मे बताया गया है कि गले, दॉत, हृदय, कैसर आदि के रोग धूम्रपान से होते है। सोचे कि हम किधर जा रहे है? ऐसे व्यसनो का सेवन करने वाला क्या गुरु की धर्म-प्रज्ञप्ति को स्वीकार कर पायेगा? गुरु के, पिता के नाम को रोशन करना है तो इन दुर्व्यसनो से दूर ही रहो क्योकि ये स्वय छूटने वाले नही है। हमारा दायित्व है कि हम गुरु का नाम रोशन करे। प्रभु महावीर के श्रावक आनन्द और कामदेव ने प्रभु का नाम रोशन किया, प्रभु की धर्म-प्रज्ञप्ति को स्वीकार किया। जब वे प्रभु के श्रावक नही बने थे तब उनका जीवन वैसा नही था। वे सयोग से जुडे हुए थे। उनके गोकुल मे चालीस हजार गौधन था। कितना दूध, दही होता था और आरभ-सारभ भी होता था। वह आनन्द एक-एक पैसा जोड़ता था पर जब प्रभु का शिष्य बन गया तो पैसा गौण हो गया, मुख्य नही रहा। मै यह नही कहता कि तुम सब- कुछ त्याग दो। क्योकि—

श्रावक के पास कौड़ी नही तो वह कौडी का।
साधु के पास कौडी है तो वह कौडी का।

कौडी पैसे का प्रतीक है, मागलिक वस्तु मानकर लोग उसे अपने पास रखते है, पर साधु के पास फूटी कौडी भी नही होनी चाहिए। आनन्द श्रावक नही बना तब तक लक्ष्य था अर्जन का और श्रावक बनने के बाद लक्ष्य हो गया विसर्जन का। चिन्तन की दिशा विपरीत हो गई, उसमे परिवर्तन हो गया, विचारो का रूपान्तरण हो गया। श्रावक का कर्तव्य है कि वह दिखावा न करे, पाखण्ड से बचे, सरल और विनीत बने। त्याग करे तो नाम के लिये न करे, उसका ढिढोरा न पीटे। यदि त्याग अथवा उपकार किया परन्तु उसका ढिढोरा पीट दिया तो फिर वह विसर्जन नही होगा, त्याग नही होगा, उपकार नही होगा, बल्कि सौदा होगा। प्रभु के विनय धर्म को सुनकर कर्म के महत्त्व को भी समझे। नशीले पदार्थो का त्याग करे। यह कसौटी है। यदि गुरु के हम सच्चे भक्त है तो प्रयास करे कि हमारा नाम, हमारी पहचान बने त्याग से। जीवन-व्यवहार मे स्वधर्मी वात्सल्य आ जाये, हृदय का विस्तार हो, सकुचन नही। नाम चाहने से नाम नही होता, वह होता है कर्म से, कर्तव्यपालन से।

एक व्यक्ति ने सुना व्याख्यान मे कि अमुक-अमुक के नाम अमर हो गये। उसने भी सोचा मै अपना नाम अमर करूँ। उसने जमीन पर नाम अंकित

किया—हवा आई, वर्षा से नाम मिट गया। दु खी हो गया, अब क्या करूँ ? दीवाल पर नाम खुदवा दिया। लिपाई-पुताई हुई, नाम भी पुत गया। सयोग से एक महात्मा पहुँचे भिक्षा के लिए। भाई उदास बैठा था। पूछा—क्या बात है ? मै नाम अमर करना चाहता हूँ। किन्तु दुनिया करने नही देती। मैने जमीन पर, दीवार पर अकित किया, पर मिट गया। अनेक तरीके अपनाए, पर सब विफल। महात्मा ने कहा—नाम अमर हो सकता है, पर यह मत सोचो कि मेरा नाम हो। बस, अपना कार्य करते जाओ। महात्मा ने विधि सिखा दी। अब वह त्यागमय जीवन बिताने लगा। सम्पत्ति धर्मार्थ अर्पित कर दी। नाम की चाह नही थी, पर वह चारो ओर फैलने लगा। चाहता था तब तक नही हुआ। आज प्रतिस्पर्धा होती है। पूरे गॉव मे नाम फैल गया। बहनो को भी यदि नाम अमर करना है तो आज से ही प्रतिज्ञा कर ले कि हिसा से उत्पादित सौन्दर्य-प्रसाधन सामग्री एव रेशमी वस्त्रो का उपयोग नही करेगी क्योकि यह भी विनय का ही एक रूप है—पशु एव प्राणिजगत् के जीवन की रक्षा तथा उसके प्रति सम्मान का भाव। इस प्रकार यह प्रदर्शित किया जा सकता है कि जिस प्रकार मुझे अपना जीवन प्रिय है उसी प्रकार दूसरे को भी अपना जीवन प्रिय है और यदि मै अपने जीवन की रक्षा का अधिकार रखता हूँ तो मुझे दूसरे के जीवन की रक्षा के अधिकार को भी स्वीकार करना चाहिये। यह व्यावहारिकता है। यह सच्चा ज्ञान है जिसके सबध मे कहा जाता है—'विद्या ददाति विनय' और जब यह ज्ञान या विद्या आती है तब व्यक्ति उसी प्रकार झुक जाता है जिस प्रकार फलो से लद जाने के बाद वृक्ष की शाखाएँ झुक जाती है। गहरी नदी तटो मे बँध कर बहती है और भारी बर्तन जल्दी गरम नही होता। वह तो थोथा चना ही होता है जिसके बारे मे कहा जाता है 'बाजे घणा'। इस विनय की शिक्षा का प्रारभ माता-पिता के प्रति विनय से तो होता ही है, गुरु का सान्निध्य इसे पुष्ट कर जीवन का पाथेय बना देता है परन्तु इसके लिये आवश्यक है कि पात्र भी विनयी और श्रद्धावान हो। हम जानते है कि जो गगरी झुकती है वही सरोवर के जल से अपने आप को भर पाती है। 'आचाराग सूत्र' के पचम अध्ययन के पञ्चमोद्देशक मे गुरु को निर्मल जल से भरे हुए सरोवर की उपमा दी गई है। ऐसे ज्ञान के सरोवर गुरु के प्रति अपने जीवन की गगरी को झुकाने वाला श्रावक या शिष्य ही उस ज्ञान से परिपूर्ण हो पाता है जो मुक्ति की दिशा मे ले जा सकता है। गुरु की ऐसी ही महिमा को समझ कर उसके प्रति विनय भाव प्रकट करते हुए कवि बिहारी ने कहा था—

गुरु गोविन्द दोऊ खडे, काके लागूॅ पॉय।
वलिहारी गुरु आपकी, गोविन्द दियो वताय।।

तब यह समझ ले कि विनय-मार्ग पर प्रगति गुरु के प्रति श्रद्धा और गुरु-कृपा से ही प्रारभ होती है। अत विनय के उस उद्गम के पति हम मन, वचन और कर्म से समर्पित रहे जिससे उस मार्ग का अनुसधान करने मे सफलता मिले, जो मोक्ष की दिशा मे ले जाता है। ❖

भाद्रपद शुक्ला 10
22-9-96

महाभयों से मुक्ति का मार्ग

श्री सुपार्श्व जिन वदिए, सुख-सम्पतिनो हेतु, ललना।
शात सुधारस जलनिधि, भवसागरमा सेतु, ललना।।

प्रार्थना की ये पक्तियाँ अत्यत अर्थपूर्ण है। यदि इनमे निहित भावो को व्यक्ति अपने जीवन मे उतार ले तो वह त्रिविध तापो से ही नही, सभी 'भव भयो' से भी मुक्त हो जाय क्योकि प्रभु इन भयो को निकट आने ही नही देते, निर्भय बनाये रखते है, पर हम है कि भयो से सतत आक्रात रहते है, उनसे मुक्ति के मार्ग को ही भूल बैठे है। तब विचारे कि भय हमारे भीतर क्यो आता है।

सभवनाथ भगवान् की प्रार्थना करते हुए भय के सबध मे कहा गया है—जहाँ परिणामो की चचलता है वही भय है। भय मोहनीय कर्म का भेद है। चचलता भी मोह के आधार पर होती है। यदि मोह का सर्वथा उपशम या क्षय हो जाय तो उस समय चित्त चचल नही होगा। ग्यारहवे एव बारहवे गुण स्थान मे मोहनीय कर्म का उदय नही है, उपशम या क्षय हो गया है। इसलिए ग्यारहवे, बारहवे, तेरहवे गुणस्थान मे चित्त की चचलता नही है। यथाख्यात चारित्र की प्राप्ति हो गई है। यथाख्यात अर्थात् आत्मा का जैसा स्वरूप है वैसा स्वरूप प्राप्त कर उसमे अवस्थित हो जाना। वहाँ फिर हिलोरे या तरगे नही रहती। जो तरगे आती है उनका मुख्य कारण मोहनीय कर्म है। मोहनीय इस प्रकार कि कुछ छूटने अथवा किसी हानि की आशका होती है अथवा भय होता है। छूटने और हानि का एहसास तभी होता है जब किसी वस्तु या व्यक्ति से जुड़ाव हो या उससे प्राप्त होने वाले लाभ मे रुचि हो। जुडाव और लाभ का भाव लगाव, आसक्ति अथवा सयोग के परिणाम के रूप मे ही प्रकट होता है। यदि हमे कोई अपेक्षाएँ ही न हो तो प्राप्त न होने का दु ख भी नही होगा—'जिनको कछू न चाहिये, ते साहन के साह', यदि लगाव न हो तो हानि का भय भी न हो। लोभ और लाभ से आकर्षण अथवा सयोग भाव बढता जाता है, व्यक्ति और अधिक की कामना करने लगता है—'ज्यो प्रतिलाभ लोभ अधिकाई।' जितना अधिक लाभ उतना अधिक उसका मोह और उतना ही अधिक उसके चले जाने का भय। इस प्रकार परिग्रह भाव लोभ को पुष्ट करता है इसीलिये उसे पचरत्नो मे

एक रत्न माना गया है। अलमस्त अकिंचन को न पाने का हर्ष होता है न खोने का गम अर्थात् उसे भय नही सताता। भयो मे भी सात प्रमुख भय है जिन्हें 'महाभय' कहा जाता है। इनकी प्रकृति और स्वरूप पर विचार कर लेना उपयुक्त होगा।

प्रथम महाभय है 'लोक का भय'। इस भय के अनेक रूप है जैसे विद्यार्थी को परीक्षा का भय रहता है—'कॉपती है रूह मेरी, बस सदा इम्तिहान से।' केवल एक भय—कही फेल न हो जाऊँ, उसे चौबीसो घण्टे आक्रान्त किये रहता है। वैसे परीक्षा का भय तो प्रतिभासम्पन्न विद्यार्थी को भी रहता है। परीक्षा से तो सत, मुनि, सज्जन सभी भयभीत रहते है। बाइबिल मे कहा गया है—'हे प्रभु, मुझे परीक्षा से बचाना।' अन्य भयो की महिमा भी कम नही है। व्यापारी को सदा हानि का भय सताता रहता है। कन्या बडी हो गई तो अभिभावको को उसके विवाह की चिन्ता होती है, साथ ही यह भय भी कि कही ऐसा घर-वर ना मिल जाये जहॉ वह दु ख पाये।

एक युग कन्या के लिए स्वर्णिम युग था। आज वर को खोजना पड़ता है, उस युग मे आवश्यकता होती तो कन्या की खोज करनी पड़ती थी। पूर्व के युग मे यदि किसी के घर कन्या का जन्म होता था तो सोचते थे कि हमारे घर लक्ष्मी आ गई। आज युग ने करवट ली है। अब वह दिन दूर नही जब कन्या की खोज एक समस्या बन जायेगी। एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान मे कन्याओ का अनुपात वरो की तुलना मे कम हो रहा है क्योकि कन्या भ्रूण की गर्भ मे ही हत्या कर दी जाती है। आने वाले युग मे तो कन्या की खोज कष्टप्रद हो सकती है। फिर तो चिन्ता यह होगी कि पुत्रो का सबध कहॉ करे ? वर के लिए वधू और वधू के लिये वर की खोज की चिन्ता इस लोक का एक विकट भय है। ऐसे लोकजीवन के भयो की शृखला विविध रूपो मे बनती है। कोई-न-कोई चिन्ता बनी ही रहती है। कोई व्यक्ति दु खी है, कोई पीडित है। कोई अपराध हो गया तो भय कि कही पुलिस न पकड ले। ये बाते मस्तिष्क मे चक्कर काटती रहती है और व्यक्ति चिन्ता मे डूब जाता है। चिन्ता है तो चित्त मे चचलता आये बिना नही रहेगी। चचलता भय की जननी है, जो भय का पालन-पोषण करती है।

दूसरा महाभय है—परलोक का भय। न जाने मरकर कहॉ जाऊँगा ? नरक मे चला गया तो भयकर यातनाऍ प्राप्त होगी। कटना, पिटना, अग्नि मे झुलसाया जाना, करवत से चीरा जाना, पता नही क्या-क्या यातनाएँ सहनी पडेगी। व्यक्ति इन भयो से प्रकम्पित हो जाता है। कहीं इस आत्मा ने नर्क

दिशा नही पकडी तो छठे आरे मे जाना पडेगा—जहॉ 'मच्छ गलागल न्याय' होगा। वहॉ भी क्या कहे—मासाहार, हिसा, कैसे-कैसे कार्य करने होगे। इस प्रकार अनेक कोटि सस्पर्शी विचारो अर्थात् अनेक प्रकार के विचारो का स्पर्श भय पैदा करता है। जिस समय भय का प्रसग होता है, व्यक्ति अपने भीतर सिकुडता है और जहॉ सिकुडन होती है वहॉ तनाव आये बिना नही रहता। हाथ को सिकोडेगे तो तनाव महसूस होगा, कागज को सिकोडेगे तो उस पर सलवटे पड जायेगी। भय तनाव को पैदा करता है। जब तक भय है तब तक व्यक्ति आत्मसाधना मे तत्पर नही हो सकता।

तीसरा भय है—आदान भय। मेरे पास इतनी सपत्ति है, कोई चोर-डाकू ले न जाय। आजकल तो चोर-डाकू नही भी आये तो भी सभ्य डाका पड सकता है, जिसे आज की भाषा मे छापा कहते है। दु ख तो होता होगा पर यह क्यो नही सोचता कि यह सपत्ति मेरे घर कहॉ से, कैसे आई ? व्यक्ति सोचता है कि मैने किया वह तो ठीक था। चाहे हजारो घर उजाड़े हो, पर मेरे घर हुआ तो बुरा हुआ, अन्याय हुआ। यह 'आदान भय' है। मै सम्पत्ति का दान या उसका अर्पण कर दूॅ, यह विचार आये तो अच्छी बात है पर दिया नही जाता। परिवार पर भी विश्वास नही रहा, नही तो चाबी सौप देता। चाबी तो रखो ही नही, बैक मे डाल दो, चिन्ता दूर। जिस जमाने मे तिजोरियॉ होती थी उस जमाने मे जैसे बहनो के पायल के घुघरू बजते है, वैसे ही सेठजी की कमर मे चाबियॉ बजती थी। वह भी एक शौक था। अब तो लॉकर मे डाल दिया और सतोष कर लिया कि वहॉ तो बिगाड नही होगा। पर यदि सरकार का छापा पड गया तो बैक के लॉकर भी सील हो जायेगे। पर यह भय है किसे ? उसे, जिसने बेईमानी से धन इकट्ठा किया है, वह अपने किये को बेईमानी नही कहेगा पर सरकारी कागजो मे उसे बेईमानी कहा जायेगा। यदि वैसा नही है तो भय भी नही रहेगा। बताइए, साधु को भय होता है क्या ? और आप भी पौषध मे है तो भय रहेगा क्या ? इसलिए श्रावको को चार विश्राम-स्थल बताये गये है। इन विश्राम-स्थलो मे भय से, तनाव से मुक्ति मिलती है। बारह व्रत ग्रहण करे तो कितना विश्राम मिले। पर नही, बाते तो चलती है कि बारह व्रत समझने है पर फुर्सत नही मिलती। कभी एक व्यस्तता रहेगी, कभी दूसरी। फिर सतो का सग भी हर समय उपलब्ध रहे, यह जरूरी नही। पर अपनी अक्षमता के लिए कारण अवश्य प्रस्तुत कर दिये जाते है। वे यह नही समझते कि कितने भी व्यस्त क्यो न हो पर घटे-आध घटे का समय निकल ही सकता है। व्रतो का महत्त्व भी समझने

की आवश्यकता है। यदि द्वार खुले है तो आश्रव आत्मा के साथ जुडते चले जायेगे। द्वार खुले होने से तात्पर्य है सासारिकता मे लीन होना। ऐसे लोग यद्यपि इस समय बस, ट्रेन, प्लेन आदि वाहनो से यात्रा नही कर रहे हो पर समस्त आरभ प्रवृत्ति का पाप जुडता जा रहा है। आप कहेगे कैसे ? ये प्रवृत्तियाँ जुडती है और आगे तरगे विक्षोभ पैदा करती है, यह सब इकट्ठा होता जाता है। इसे यो समझे—मान लीजिए आपने मकान किराये पर लिया, लिखा-पढी कर ली, पर अभी मुहूर्त नही किया। इस स्थिति मे किराया लगेगा या नही ? आपका जुडाव हो गया। त्याग नही तब तक मार्ग खुले है और आत्मा से कर्मो का सयोग हो रहा है। एक करोडपति सेठ के घर बालक जन्मा, उस बालक का भी उस फर्म मे शेयर जुडा या नही ? भले ही वह आज जन्मा हो पर वह हकदार बन गया। इसी प्रकार चार गति एक परिवार है जिसमे जन्म लेने वाला प्रत्येक आत्मा चार गति की क्रियाओ का भागीदार हो जाता है। मास, शराब, कत्लखाने का त्याग नही तो आत्मा के साथ पाप जुडता रहता है।

अकस्मात भय—अचानक किसी विपत्ति के आने का भय भी मनुष्य को आक्रात किये रहता है। यह मनुष्य का स्वभाव है कि वह अनागत की आशका से भयभीत रहता है। परम-सुख के क्षणो मे भी किसी आगामी दु ख या विपत्ति की आशका उसे पूर्ण सतुष्ट नही होने देती। जो दु ख आ गया वह तो सहन कर लिया जाता है परन्तु जो आया नही उसका भय मनुष्य को भयानक रूप से आक्रान्त किये रहता है।

एक अन्य भय है—अपयश-भय। कही मेरी प्रतिष्ठा को हानि न पहुँचे, यह भय अच्छो-अच्छो की नीद हराम कर देता है। एक घटना है। उदयपुर के महाराणा के पास एक इत्र बेचने वाला गधी पहुँचा। उसने खोल-खोलकर शीशियाँ दिखाई। इत्र भी अनेक प्रकार के थे और उनके मूल्य भी अलग-अलग थे। महाराणा सोचने लगे, इत्र किस काम का ? मौज-शौक के लिए कपड़ो पर छिडक लिया तो बस खुशबू रहेगी, बडप्पन बना रहेगा। शौक के निमित्त इतना पैसा क्यो बरबाद किया जाय ? उस समय उदयपुर के कोष मे ज्यादा धन भी नही था। महाराणा ने सोचा मौज-शौक मे पैसे उडाऊँगा तो कोष का क्या होगा ? तब मुझे इत्र नही खरीदना है। गधी विचार करने लगा, मै इतना चलकर आया। काश ! एकाध शीशी ही बिक जाती तो श्रम सार्थक हो जाता। जब राजा ही इत्र नही खरीदता तब सामान्य जनता से क्या उम्मीद की जाय ? गधी उदास लौट रहा था। मार्ग मे महाराणा का ही एक सामन्त मिला। पूछा—'भाई उदास

क्यो हो ?' उसने अपनी उदासी का कारण बता दिया। सामन्त ने कुछ विचार किया और फिर सारा इत्र खरीद लिया और घोडे के शरीर पर चुपड दिया। गधी प्रसन्न होकर चला गया। महाराणा को यह बात मालूम पडी तो उन्हे क्रोध आ गया। यह तो सरासर हमारी बेइज्जती है। जिस इत्र को मैने नही खरीदा उसे सामन्त ने क्यो खरीदा, और घोडे पर क्यो चुपड दिया ? वह सामन्त हमारी प्रतिष्ठा पर आघात करने वाला है। सामन्त को बुलाया गया और उससे इस अशिष्टता का कारण पूछा गया। सामन्त ने शान्ति से उत्तर दिया—'महाराज। मैने आपकी बेइज्जती नही की बल्कि आपकी इज्जत बढाई है। आपने इत्र नही खरीदा इस बात की चर्चा वह जिस राज्य मे पहुँचता, उसमे करता। वे राजा सोचते, जरूर महाराणा का कोष खाली हो गया है। वे आक्रमण करते और फिर हम परेशानी मे पड जाते। मैने इत्र खरीद कर घोडे पर चुपड़ दिया तो जब वह यह बात वहाँ कहेगा तब वे सोचेगे—जहाँ इत्र से घोड़े के शरीर चुपडे जाते है वहाँ के कोष की क्या बात करे, और आपका यश बढेगा।' राजा खुश हो गया। क्रोध प्रसन्नता मे बदल गया। यह क्रोध आया था प्रतिष्ठा की हानि के भय से। हमारे साथ परेशानी यह है कि हम छोटी-छोटी बातो को प्रतिष्ठा का प्रश्न बना लेते है। यदि जीवन व्यवस्थित नही है तो इज्जत जायेगी पर यदि व्यवस्थित जीवन मे घुल-मिल जाये तो आपकी इज्जत कोई ले नही सकता। इज्जत कोई वस्त्र नही है कि कोई खीच ले, लेकिन आज हमने उसका जामा पहन लिया है। द्रौपदी के अहभाव ने उसे निर्वस्त्र किये जाने की स्थिति तक पहुँचा दिया। लेकिन जब उसने अहभाव त्याग कर परमात्मा के चरणो मे समर्पण कर दिया तब फिर उसका चीर दु शासन खीचते-खीचते थक गया पर वह चीर समाप्त नही हुआ।

राजा हरीश्चन्द्र चाडाल के घर बिक गये पर क्या उनकी प्रतिष्ठा की हानि हुई ? आज आप को चाडाल के घर पानी भरना पडे तो कहेगे कि दुनिया को मुँह कैसे दिखाऊँ, ऐसा इसलिये है कि हमने इज्जत को ऊपर ओढ लिया है, तभी महाराणाजी सामन्त की बात सुनकर प्रसन्न हो गये। वही गधी सयोग से दिल्ली के बादशाह के पास पहुँचा। बादशाह ने शीशियाँ देखी और चुनकर दो शीशियाँ पसन्द कर ली। गधी रवाना होने लगा। शीशियो को उठाने-रखने मे एक दो बूँद इत्र जमीन पर भी गिर गई। बादशाह ने सोचा—वे निरर्थक क्यो जाये इसलिए उठाकर अपनी दाढी, मूँछ पर लगा ली। इधर तो बादशाह ने बूँदे उठाई, उधर दरबार मे बीरबल का प्रवेश हुआ। बादशाह ने सोचा, हो न हो

बीरबल ने मुझे बूँद उठाते हुए देख लिया है। अब तो अवश्य मेरे यश पर धब्बा लग जायेगा। बादशाह की कारगुजारी देखकर बीरबल मद-मद मुस्कराने लगा। बादशाह ने अपनी झेप मिटाने के लिए कहा कि खजाची को बुलाओ। खजाची को बुलाया गया और उससे कहा गया कि दिल्ली के जितने भी गधी है। उन्हे खबर दे दो कि बादशाह तुम्हारा सारा इत्र खरीदना चाहते है। क्रियान्विति हो गई। जिसका भी जितना माल था, स्टॉक मे पडा था, बिक नही रहा था, वह सभी माल ले-लेकर आ गये। बादशाह ने आदेश दिया यह सारा इत्र हमारे स्नान के हौज मे भर दिया जाय। बादशाह ने उस इत्र के हौज मे डुबकी लगा दी। बादशाह स्नान करते, तैरते हुए आनदित हो रहे थे। बीरबल हौज के पास ही खडा था। उसके चेहरे पर मुस्कान थी। बादशाह ने कहा—बीरबल इत्र के हौज मे तैरने मे बहुत आनद आ रहा है। बीरबल का प्रत्युत्तर था—हुजूर, जो बूँद मे गई वह हौज मे नही आ सकती। बादशाह ने झेप मिटाने के लिए इत्र के हौज मे स्नान के लिए जो इतना खर्च किया उससे क्या उसके यश मे धब्बा लगने से बच गया ? आज यश के लिए व्यक्ति क्या नही करता ? यह नही सोचता कि दिखावटी यश क्या सदा बना रहेगा ? सहज अवस्था से हटने पर ही ऐसी प्रवृत्ति बनती है। बादशाह सहज अवस्था से चलता तो यह भी सोचा जा सकता था कि एक बूँद भी निरर्थक क्यो जाय, काम मे आये तो भले ही पूरी शीशी भी आ जाय, नही तो बूँद को भी निरर्थक क्यो जाने दे। परन्तु ऐसा उसने नही सोचा क्योकि उसके मन मे हीन-भावना पैठी हुई थी। इसीलिये उसे भय हुआ कि इत्र की बूँदे उठाने के मेरे कार्य को मेरी कजूसी की मानसिकता के प्रमाण के रूप मे देखा जायेगा। तब दूसरो की नजरो मे अपनी प्रतिष्ठा गिरने के भय ने उसे फूहड रूप मे वैभव-प्रदर्शन करने के लिये प्रेरित किया। बीरबल की सटीक टिप्पणी इस प्रतिक्रिया का उचित उत्तर थी।

परन्तु ऐसा भी होता है कि व्यक्ति के मन मे हीन भावना नही, सार्थक उपयोग की भावना हो। तब यदि वह ऐसा करे तो उसके कार्य को चिन्तन की गभीरता के रूप मे देखा जायेगा। बीकानेर के भाडाशाह ने इसी प्रवृत्ति का परिचय दिया था जब उन्होने जमीन पर गिरी घी की एक बूँद को उठा लिया था। घटना इस प्रकार है—बीकानेर के भाडाशाह के मन मे विचार आया कि नगर मे एक सुन्दर मदिर का निर्माण करवाना है। इस हेतु बडे-बडे वास्तुकार और शिल्पकार बुलाये गये। सयोग से एक घी की बूँद गिर गई। उन्होने वह उठाकर जूते पर लगा ली। एक मक्खी भी घी मे गिर गई थी। उसे भी

निकालकर उन्होने जूते पर मसल लिया। कारीगरो ने विचार किया—कैसे मक्खीचूस से पाला पडा है। यह क्या मदिर बनवायेगा? भाडाशाह उनके मनोगत भावो को जान गये। उन्होने शिलपकारो से कहा—मै चाहता हूँ कि मदिर-निर्माण मे जो नीव भरी जाय उसमे सीमेन्ट, चूना आदि जो भी डाला जायेगा वह घी से माडा जाय और उन्होने घी मगवा भी दिया। शिल्पकारो ने पूछा—क्या बात है, एक ओर तो मक्खी को भी आपने मसल लिया और दूसरी तरफ घी की नाली बहा दी। उसने कहा—'मै जैनी हूँ—अनर्थ दण्ड से बचने के लिए कटिबद्ध हूँ। अर्थ क्रिया के लिये करना पडे तो कोई बात नही पर वह अनर्थ था। उस घी मे चीटियाँ आ जाती, न जाने कितने जीवो की हिसा होती, कितना पाप होता? भाडाशाह की वह क्रिया उनकी मितव्ययी प्रवृत्ति ही नही, गहन धर्मनिष्ठा का भी प्रमाण थी क्योकि उसमे वैभव-प्रदर्शन की मानसिकता का लेशमात्र अश भी नही था। विशाल मदिर बना, जिसकी गणना आज भी बीकानेर नगर के सुन्दरतम मदिरो मे की जाती है। यदि हम थोडा-सा भी विवेक बरते तो अनर्थ क्रिया से बच सकते है। विवेक है तो सासारिक कार्य करते हुए भी धर्म का उपार्जन किया जा सकता है।

एक महाभय आजीविका का भी होता है। पुराने जमाने मे तो इसका रूप इतना विकराल नही था जितना आज हो गया है क्योकि तब आजीविका के साधन किसी रूप मे उपलब्ध हो जाते थे लेकिन आज तो बेकारी अथवा आजीविका के अभाव की समस्या विश्व-व्यापी रूप ग्रहण कर चुकी है। सरकार और व्यवस्था की दोगली नीतियो के कारण यह समस्या विकरालतर होती जा रही है। पहले कहते थे—'उत्तम खेती, मध्यम बान। अधम चाकरी भीख निदान।' आज तो नौकरी भीख की तरह माँगी जाती है और माँगने वाला सब कही दुत्कारा जाता है। परन्तु आजीविका का अर्थ नौकरी तक ही सीमित नही माना जा सकता। वह कोई भी कार्य, जो मनुष्य के जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति मे सहायक हो, आजीविका कहा जा सकता है। कार्य की इस परिभाषा की परिधि आज इतनी व्यापक हो गई है कि चोरी, डकैती, अपहरण, तस्करी जैसे दुष्कृत्य भी इसकी कोटि मे आ गये है। परन्तु ये तो अर्थ-सकोच के उदाहरण है। आजीविका से अभिप्राय उस धर्मविहित कार्य से होता है जो ईमानदारी, सम्मान, न्यायबुद्धि और सद्भाव के साथ जीवन की आवश्यकताओ की पूर्ति का मार्ग खोलता है। परन्तु सभी युगो मे अनीतिपूर्वक

जीविकोपार्जन करने वालो के दृष्टात धर्मग्रथो और इतिहास मे भरे पडे है। बस, भय का यही कारण है क्योकि ऐसा लगता है कि पूरी ईमानदारी और नैतिकता के सहारे आजीविका कमाने के मार्ग पर चलना कठिन है। जो धर्म और नीति के अनुसार चलता है उसे फूँक-फूँक कर आजीविका के क्षेत्र मे कदम रखने पडते है, फिर भी पैर फिसलने की सभावनाएँ तो रहती ही है क्योकि लाभ का लोभ वृत्तियो पर हावी हो जाया करता है। तब क्या इस भय से उद्धार का मार्ग नही है? मार्ग है। हमारी पुरानी नीति कथाओ, कथनो और सतो की वाणी मे ऐसे मार्गो के उदाहरण भरे पडे है। कहते है—'रूखी-सूखी खाय के ठण्डा पानी पीव। कर साहब की बन्दगी भूखे को दे भीख', अथवा पैसा हाथ का मैल होता है। इतिहास साक्षी है कि सतो ने सिकन्दर और अकबर जैसी हस्तियो के प्रलोभनो को तिरस्कारपूर्वक ठुकरा दिया था। यदि धर्म, नीति और अध्यात्म द्वारा दिखाये गये मार्गो पर विचार करे तो मोह तथा तृष्णा से मुक्त 'सादा जीवन उच्च विचार' का सिद्धान्त आजीविका के भय से मुक्ति दिला सकता है। निश्चय ही ऐसी मानसिकता के विकास के लिए गुरु-कृपा और गुरु के आशीर्वाद की महती आवश्यकता होती है। वैसे भी ये दोनो तो सभी प्रकार के भयो से मुक्ति के लिए आवश्यक हैं।

सात भय मे एक भय मरण-भय भी है। जीवन बहुत प्रिय होता है। भगवान् सुपार्श्वनाथ इन भयो को टालते थे। टालने की इस प्रक्रिया का सूत्र क्या था, इसका निर्देश प्रभु महावीर ने इस प्रकार दिया है—

आणाणिद्देसकरे गुरूणमुववायकारए

गुरु की आज्ञा और निर्देश का पालन करना, उनके सन्निकट-उपपात मे रहना—इस प्रकार जब वह शरण ग्रहण कर लेगा तब उसका लक्ष्य हो जायेगा—'अरिहते सरण पवज्जामि, सिद्धे सरण पवज्जामि, साहू सरण पवज्जामि, केवलि पण्णत्त धम्म सरणं पवज्जामि' और गुरु और धर्म की शरण मे ही कदम बढायेगा। यह वैसी ही बात हुई जैसी जल प्रवाह को नियत्रित कर उसका उचित नियोजन करने की, जल के प्रवाह को नहर की दिशा मे प्रवाहित कर उससे खेती करने और विद्युत का उत्पादन करने की। जब तक दिशा निर्देश नही होगा, विकास भी सभव नही। गुरु से नियत्रित होकर वृत्तियो का उचित नियोजन हो जाता है और मोक्ष की दिशा मे गति हो जाती है। तब 'सौप दिया उस जीवन का सब भार तुम्हारे चरणो मे।'

गुरु की शरण छत्र है जहाँ भय का स्थान नही है, वहाँ आत्मा उद्वेलित नही हो सकती, चित्त मे तरगे नही उठती, विक्षोभ और चल-मल-अगाढ दोष उत्पन्न नही होता तथा चित्त शात-प्रशात हो जाता है। निर्देश नही स्वीकारा तो विभ्रम और विभ्रम से चचलता पैदा होगी। वहाँ जो बुद-बुदे उठेगे वे भय का कारण बनेगे। इस स्थिति से बचना है तो प्रभु की देशना अमोघ औषधि का काम करेगी। *गुरु की आज्ञा के प्रति-समर्पित हो जाओ।* *गुरु जिस ओर बहाव* को मोड दे उस ओर ही मुड जाओ, उसे ही अपनी गति मान लो। किधर बहाव देना है, यह तो उन्हे ही सोचना है—मै तो अपनी शात अवस्था और समाधि-भाव मे ही रमण करता रहूँ। जिसकी मानसिक स्थिति एक अग्र पर अवलबित होती है वह स्थिर बनता है, नही तो मदिर की ध्वजावत् उसकी डॉवाडोल स्थिति बनी रहती है। गीताजी मे भी श्रीकृष्ण ने कहा है—

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज

सभी धर्मो को छोड कर एक मेरी शरण, एक मेरे धर्म मे आ जाओ। सर्व धर्म अर्थात् इन्द्रियो के जो-जो विषय है वे उनके धर्म है, उन्हे छोडकर मेरे धर्म मे आ जाओ। यहाँ मेरे धर्म से श्रीकृष्ण का सकेत स्व-आत्मा के लिये है उस आत्मा के धर्म मे आने का सकेत है। उस शरण मे आने के बाद सात भय भयभीत नही कर सकेगे। आपके सम्यक्त्व मे एकनिष्ठता आ जायेगी। एक देव, एक गुरु और एक धर्म की उपासना मे मन जुड जायेगा। इसका यह तात्पर्य कतई नही है कि अन्य धर्म का तिरस्कार या अपमान किया जाये। जैन धर्म भी यही कहता है कि आप सम्मान नही कर सकते तो अपमान करने का भी अधिकार आपको नही है। भगवान् महावीर ने सुलसा श्राविका का नाम लिया था क्योकि वह 'परमत्थ सथवो वावि सुदिट्ठ परमत्थ सेवणा' के स्वरूप को आत्मसात् करने वाली थी। उसके जीवन मे सम्यक्त्व की निर्मलता थी। एकनिष्ठा नही रही तो फिर अन्य अनेक रागी-द्वेषी देवी-देवताओ के प्रति रुझान बनेगा। लोगो ने सुलसा श्राविका से कहा—पच्चीसवे तीर्थंकर के रूप मे अम्बड़ का आगमन हुआ है। कुछ लोग कहते है—देखने चले गये तो क्या हुआ ? प्रश्न होता है—क्यो चले गये ? क्या आपको प्रभु की वाणी पर विश्वास नही है ? तीर्थंकर चौबीस ही होते है, पच्चीसवा तीर्थंकर 'न भूतो न भविष्यति'। यह आपका भटकना भी मोह का उद्वेग है। उससे चित्त की चचलता बनती है। चचलता आयी तो श्रद्धा-प्ररूपणा स्थिर कैसे रहेगी ? श्रद्धा और प्ररूपणा सही है तो स्पर्शना भी सही होगी। सुलसा ने कहा—मै मदिर की ध्वजा नही बन

सकती हूँ। उसका अभिप्राय था कि चचल प्रवृत्ति की नही बनूगी, एकनिष्ठ रहूँगी। सुलसा भी एक नारी थी, पर देखिये उसकी दृढता। यदि नारी अपना स्वरूप जगा ले तो बहुत-कुछ कर सकती है। दुर्गा, काली का नाम सुना होगा। कथा चाहे जिस रूप मे हो, पर दुर्गा ने असुरराज का वध किया था। एक राक्षस को मार दिया था। इसी प्रकार दहेज-लोलुप राक्षसो को चाहे तो ये बहने परास्त कर सकती है। वे प्रण कर ले कि हम चाहे कुँवारी रह लेगी पर ऐसे राक्षसो को अपना जीवन समर्पित नही करेगी। पर यदि वे अपने-आपको अबला समझ ले, सोच ले कि हम क्या कर सकती है, तो फिर कोई उपाय नही। वे कहेगी हम पिताजी के सामने जुबान कैसे खोले? और भी मजबूरियाँ बतायेगी पर विनयपूर्वक अपने हक की बात कहने मे उन्हे सकोच नही होना चाहिये।

एक घटना है। एक शिक्षक के तीन पुत्रियाँ थी। वह विवाह की चिन्ता मे घुल रहा था। सोचता था कि अगर मै अपना घर भी बेच दूँ तो भी इनके हाथ पीले नही कर पाऊँगा। सतो के समक्ष उसने अपनी व्यथा कही—क्या करूँ? मकान बेच कर सडक पर आ जाऊँ तो भी इनके पीले हाथ नही कर सकता। कभी सोचता हूँ—हम दोनो कुएँ मे गिर कर प्राणान्त कर ले। उनकी पुत्रियाँ भी गुरु-दर्शनार्थ आई हुई थी। पिता को देखा तो वे भी पास के कमरे मे दीवार से सटकर बात सुनने लगी। पिता की व्यथा को उन्होने समझा कि ये हमारी वजह से दुखी है। उन्होने मन मे उपाय ढूँढ लिया। पिता के जाने के पश्चात् उन्होने आचार्यश्री नानेश से निवेदन किया—'हमे शादी करने के त्याग करवा दीजिये। यदि कोई पैसे की बात नही करेगा तो भले ही विवाह करे अन्यथा हम विवाह नही करना चाहती।' आचार्यश्री ने कहा—'देखो भावुकता मे मत बहो। अच्छी तरह सोच लो।' उन्होने कहा—'हमने अच्छी तरह सोच लिया है। प्रतिज्ञा का पालन अच्छी तरह करेगी।' और उन्होने प्रतिज्ञा का पालन किया। यह घटना प्रमाणित करती है कि बहिने यदि चाहे तो अपनी क्षमता और शक्ति को जाग्रत कर सकती है। उन्हे अन्याय का प्रतिकार करने मे कभी पीछे नही रहना चाहिए। एक आलबन पर, चाहे वह धर्म का हो या गुरु का, अपने जीवन को केन्द्रित कर वे अपना यह भव सुधार सकती है और सभी भयो से आसानी से मुक्ति प्राप्त कर सकती है। यही बात भाइयो के सबध मे भी सत्य है—गुरु अथवा धर्म का अवलम्बन उन्हे सभी भयो से मुक्त कर उनकी सभी लौकिक चिताओ से उन्हे छुटकारा दिला सकता है अन्यथा चिन्ता उन्हे सतत जलाती रहेगी। चिन्ता और चिता मे केवल एक बिन्दी का अन्तर है परन्तु चिन्ता चिता

से भी भयानक दाहक है। चिता तो मृत शरीर को जलाती है जबकि चिन्ता जीवित शरीर को जलाती रहती है। गिरधर कविराय ने ठीक ही कहा है—

चिन्ता ज्वाल शरीर वन, दावा लगि लगि जाय,
प्रकट धुआँ नहि देखियत, उर-अतर धुधुआय।
उर-अतर धुधुआय जलै ज्यो कॉच की भट्टी,
जलिगौ लोहू-मॉस, रह गइ हाड की टट्टी।।

यदि इस स्थिति से बचना है, तो जैसा प्रार्थना की पक्तियो मे कहा गया है, श्री सुपार्श्वनाथ जिन की वन्दना करे, उन्हे अपने एकमात्र अवलब के रूप मे हृदय मे बैठाये क्योकि वे ही उस सम्पूर्ण सुख-सम्पत्ति के दाता है जिसकी प्राप्ति जीवन का लक्ष्य होती है। वे शान्त सुधारस के ऐसे जलनिधि है जिसमे पहुँच कर जीवन-नैया स्थिर भाव से बहने लगती है। वे ही इस ससार-सागर से पार करने वाले सेतु भी है। अत सभी भयो को उनके चरणो मे समर्पित कर हम निर्भय हो जाये। ❖

भाद्रपद शुक्ला 12
24-9-96

गुरु-सान्निध्य और तन्मय योग

इस ससार मे जो सात महाभय है वे मनुष्य को आक्रान्त न कर सके इसके लिए प्रभु की कृपा अपेक्षित है। ऐसी कृपा उनकी चरण-सेवा द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। यही बात कवि आनन्दघनजी प्रार्थना के माध्यम से कहते है—

सावधान मनसा करी, धारो जिनपद सेव ललना।

पर सावधान कैसे हो ? सावधान कहने से व्यक्ति सजग हो जाता है। पर जरा गहराई मे जाये तो सावधान का मतलब समझ मे आ जाता है—सावधान स+अवधान। अवधान अर्थात् उपयोगपूर्वक, 'स' अर्थात् सहित। भाव हुआ मन की जो दशा है उसे अवधान के साथ सयुक्त करते हुए जिनेश्वर प्रभु की सेवा स्वीकारो। सेवा कैसे करे ? आज तो जिनेश्वर प्रभु सामने नही है। जिस समय कवि ने कविता बनाई थी उस समय भी जिनेश्वर मौजूद नही थे। मौजूद तो थे पर वह मौजूदगी हमारी क्षेत्रीय परिधि मे नही थी। महाविदेह क्षेत्र मे तो वे सदैव मौजूद है। उस दृष्टि से वे अभी भी मौजूद है पर क्षेत्रीय परिधि की स्थिति से हमारे समक्ष नही है। सेवा इस तरह नही होती कि एक व्यक्ति यहॉ हो और दूसरा दूर हो। पर कहा जाता है कि हजारो कोस दूर रह कर भी जो आज्ञा की आराधना करे तो वह सेवा ही करता है। 'धारो जिनपद सेव' जिनेश्वर की सेवा के लिए मन को अवधानता से जोडना होगा। अवधान किस रूप मे हो ? उत्तर होगा 'तन्मय योग के रूप मे।' हमारे शरीर की सरचना मे यद्यपि चिकित्सक जिन केन्द्रो को ढूँढ नही पाये है, योगियो ने साधना के माध्यम से उन केन्द्रो को पा लिया है, उनकी अनुभूति की है और साधना करते हुए तथा शक्ति का ऊर्ध्वारोहण करते हुए उसे ज्ञान केन्द्र मे पहुँचाया है। यदि यह शक्ति अधोगामी हो जाती है तो व्यक्ति मोह अथवा मूर्च्छा मे पड जाता है। शक्ति या ऊर्जा जब-जब अधोगामी होती है तब-तब ईर्ष्या, दुर्भावना और राग-द्वेष जैसी वृत्तियॉ पनपने लगती है। बात हम मन की करते है पर मन बेचारा क्या करे ? मन तो दर्पण है, स्फटिक के समान स्वच्छ, निर्मल। उसके सामने मनोवर्गणा की जिन वृत्तियो का प्रतिबिम्ब पडता है, वही हमे अनुभूत होता है और इसमें

मारा जाता है 'मन'। चित्त उसके पीछे होता है। उस चित्त मे जिन वृत्तियो का सयोग या निर्माण होता है उनके कारण हम चित्तवृत्ति को जान नही पाते और उन चित्रो को देखकर सोच लेते है कि मन खराब है। किसी व्यक्ति का फोटो देखकर हम कहे कि यह व्यक्ति खराब है तो यह अनुचित होगा क्योकि फोटो तो व्यक्ति नही है। दीवार पर यदि गाय का या घोडे का चित्र अकित है तो क्या हम उस घोडे की सवारी कर सकते है या क्या चित्र की गाय से दूध मिल सकता है? वैसे ही हम मन को नियत्रित करना चाहते है पर यह नही सोच पा रहे है कि चित्तवृत्तियो का जो-कुछ प्रसग बन रहा है उसे नियत्रित कैसे करे? चित्तवृत्तियाँ शात नही तो मन भी शात नही होगा, मन मे तरगे उठती रहेगी इसलिये अवधान की बात कही गई है। अवधान का अर्थ 'कला' भी है। गहराई से समीक्षा की जाना भी अवधान है। समीक्षा मे वे वृत्तियाँ सामने आयेगी। फिर प्रश्न होगा—उन्हे शमित कैसे करे? प्रभु ने उत्तराध्ययन सूत्र मे चित्तवृत्तियो का निग्रह करने के लिए कहा है—

आणानिद्देसकरे, गुरूणमुववायकारए।
इगियागारसंपन्ने, से विणीए त्ति वुच्चई।।

गुरु के उपपात मे अर्थात् नजदीक अर्थात् गुरु के सान्निध्य मे जो रहता है वह इन वृत्तियो का निग्रह कर सकता है। गुरु का सान्निध्य भी कैसा हो—यह समझने की बात है क्योकि यदि सान्निध्य भी मिल गया पर हमने बीच मे परत या परदा रख लिया तो सामीप्य भी लाभदायी नही बन पायेगा।

एक महात्मा के पास एक गरीब व्यक्ति आया, बहुत दु खी था। उसने अपने दु ख का रोना रोया। महात्मा ने एक लोहे की डिबिया देते हुए कहा—इसमे एक पारस पत्थर है, जिससे लोहे का स्पर्श हुआ तो लोहा स्वर्ण बन जायेगा। गरीब ने डिबिया हाथ मे ली, देखा। अरे, यह डिबिया तो स्वय लोहे की है और महात्मा ने कहा है कि इसमे पारस पत्थर है जिसे पारसमणि भी कहते है, तब उसने इस डिबिया को स्वर्णमय क्यो नही बनाया? बहुत देर तक वह उसे देखता रहा फिर वह डिब्बी उसने महात्मा के चरणो मे रख दी और कहा—'महात्मन् मुझ गरीब को आशीर्वाद ही दे देते तो अच्छी बात थी पर कम से कम हसी तो न करते।' 'भाई मैने हसी कहाँ की है?' 'आप ही कह रहे थे कि पारसमणि लोहे को स्वर्ण बनाती है पर यह डिब्बी भी तो लोहे की ही है। इसमे परिवर्तन क्यो नही हुआ?' महात्मा ने डिब्बी हाथ मे ली, खोलकर मुस्कराते हुए कहा—'मुझे स्वर्ण की आवश्यकता नही है। पर तुम गहराई से

देखो, डिब्बी व पारसमणि के बीच एक पतली झिल्ली है, इसलिए सीधा स्पर्श बन नही पा रहा है।' पतली झिल्ली, वह गरीब समझ गया, आप भी समझ गये होगे। जब तक झिल्ली का आवरण है तब तक गुरु का उपपात लाभदायी नहीं हो सकता। प्रभु महावीर ने बताया है कि गुरु के पास कैसे रहे ? उनका सबोधन है—'यथाजात', अर्थात् 'जन्म लेता हुआ बालक', जैसे उसके शरीर पर वस्त्र का आवरण नही होता वैसे ही गुरु के पास रहते हुए चित्त पर आवरण मत रखो। प्रश्न उत्पन्न होता है कि आवरण दूर करने के लिए ही तो हम गुरु के पास आते है और बात कही जा रही है कि आवरण मत रखो। यदि हम स्वय आवरण हटा पाते तो गुरु के पास क्यो आते ? यदि हमे ही हटाना है तो सान्निध्य किस काम का ? बात समझने की है। आवरण नही रखने से अभिप्राय है कि हमारा चित्त प्रकम्पित न हो। यदि वृत्तियो का निर्माण हो रहा है तो उसे गुरु के समक्ष स्पष्ट रूप से बयान करते रहे तो वे वृत्तियॉ निर्मूल होती जायेगी, जम नही पायेगी। अन्यथा एक चित्तवृत्ति का जन्म हुआ, उसे दबाने की कोशिश नही की तो दूसरी और अन्य वृत्तियो का जन्म होगा और वे वृत्तियॉ इतनी गहरी हो जायेगी कि चित्त ओझल हो जायेगा। आवरण मे हम उसे ढूँढ नही पायेगे। चित्त सत् चित् आनन्द रूप है। सत् अर्थात् आत्मा, चित् अर्थात आनन्द का केन्द्र, उसे हमने ढॅक दिया है। हमारे भीतर अमृत भरा है, पर अमृत का कलश हमने चारो ओर से ढॅक दिया है, खोलने की देरी है। घडा भरा है पर क्या काम आ रहा है ? लोग मर रहे है, पर जब तक जनता को खोलकर पिलाया नही, डाला नही, तब तक लाभ नही होगा। घडा भरा ही पड़ा रह जायेगा। जिस चित्त मे आनन्द है उसे आवेष्टित, आवरण से वेष्टित करने से वह छिप गया है। चित्त को गुरु के चरणो मे रखना है, गुरु के पास रहना है। गुरु का स्पर्श पाना चाहते है तो चित्त वृत्ति का वेष्टन अलग कीजिये। आवरण अलग करने का अर्थ है चित्तवृत्तियो मे जिस रूप मे भाव निर्मित हुए है उसी रूप मे बयान हो जाये। यदि बयान होता रहे तो नई वृत्तियॉ जन्म नही लेगी, चित्त परिष्कृत हो जायेगा। जो आच्छादित है वह प्रकट हो जायेगा, फिर साधना का अमृत निर्झरित होगा। वह शक्ति-केन्द्रो को जाग्रत करेगा। जाग्रत कर लिया और उसे नियत्रित रखा तो वह ज्ञान-केन्द्रो मे पहुॅच जायेगा फिर उससे साधक को अनोखे आनन्द की अनुभूति होगी। फिर न चिन्ता, न राग और न अन्य कोई मूर्च्छा ही रह पायेगी। वह साधक अपने-आप मे मस्त हो जायेगा। प्रत्येक व्यक्ति स्वय को जाग्रत कर सकता है पर जाग्रत करने के लिए गुरु की समीपता आवश्यक है। तभी कहा गया है—

वसे गुरुकुले णिच्च

हम जानते है कि रोगी को डॉक्टर की देख-रेख मे रखा जाता है। पुराने वैद्य सगीन रोगी को अपनी देख-रेख मे रखते थे जिससे वह किसी अपथ्य का सेवन न कर ले। अपथ्य-सेवन कर लिया तो उपचार मुमकिन न होगा। उत्तराध्ययन सूत्र मे एक आख्यान आता है—

राजा बीमार हो गया, वैद्य ने उपचार किया और निर्देश दिया—आप को आम की छाया मे भी नही बैठना है, आम की गध भी नही लेनी है, खाना तो है ही नही, अन्यथा आपका जीवन खतरे मे पड जायेगा। एक बार राजा जगल मे घूमने गया, थका हुआ था, आम्र वृक्ष दिखाई दिये, विश्राम के लिए आगे बढा। मत्री ने मना किया—'राजन्। उस ओर नही बढना है।' राजा ने कहा—'विश्राम करने मे क्या बाधा है, मै आम खा नही रहा हूँ।' और राजा आम्र वृक्ष के नीचे लेट गया। राजा की निगाहे फलो पर टिकी थी। भीनी-भीनी महक आ रही थी। मन चाह रहा था—एक फल गिर जाये और सयोगवशात् एक फल हवा के झोके से टूटा और राजा की गोद मे आ गिरा। मत्री ने मना किया—'राजन्। हाथ मे न ले।' 'अरे, मै देख रहा हूँ, खा थोडी रहा हूँ।' उसका एक मन कह रहा था—खा लूँ, वैद्य तो यूँ ही डराते है। मुझे तो अभी बीमारी नही है, बीमारी थी तब थी। मैने तो तोडा नही, मुझे तो भाग्य से मिला है। विचार कीजिये—आप उस जगह हो और हरी वनस्पति का त्याग नही हो, और हो भी तो एक मन कहेगा—'कुण देखे।' अभी भूख लगी है क्यो नही खा लूँ, फिर आलोचना कर लूँगा, प्रायश्चित्त ले लूँगा। दूसरा मन कहेगा—त्याग नही तोडना है। एक मन कहता है—मैने तोड़ा नही है। मुझे पाप क्यो लगेगा ? पर ये ही क्षण परीक्षा के होते है। राजा ने आम को हाथो मे इधर-उधर घुमाया, मन बहलाया, फिर मुह तक ले आया। मत्री ने हाथ पकड लिया। 'अरे मै खा नही रहा हूँ, सूघने मे क्या बुराई है ?' मत्री कहता रहा पर कौन सुने ? भक्षण कर लिया। शरीर मे अकड़न पैदा हुई, राजा को घोडे पर लादकर राजभवन मे लाया गया। वैद्य ने देखा तो कहा—अब इलाज नही हो सकता है। मैने पहले ही कह दिया था कि आपको आम की छाया से भी दूर रहना है क्योकि यदि आप निकट जायेगे तो मन पिघल जायेगा। नब्ज की गति कह रही है आपने आम का भक्षण कर लिया है। अब चिकित्सा काम नही आयेगी।

जैसे इस प्रकार अपथ्य सेवन करने पर राजा का उपचार नही हुआ उसी प्रकार गुरु के पास अपथ्य सेवन कर लिया तो इलाज कारगर नही होगा। परन्तु

यदि निकट रहकर प्रकटीकरण करता रहा तो फिर निरन्तर इलाज होता रहेगा और बीमारी नही बढ पायेगी। वृत्तियो का निर्माण नही होने से शक्ति/ऊर्जा ऊर्ध्वगामी बनेगी। सामीप्य के लिए द्रव्य रूप से तो गुरु का सान्निध्य होना चाहिए पर यह सभव नही कि सभी सत गुरु से पास बैठ जाये। तो फिर गुरु का सान्निध्य कैसे होगा ? उसके लिए 'तन्मय योग' की बात है। हम अपने चित्त मे एक गुरु का निर्माण करे, ऐसा निर्माण कि जैसे ही हम ध्यान करे, गुरु हमारे सामने आ जाये और हम उनका उपपात लेकर सामीप्य प्राप्त कर ले। वस्तुत प्रतिमा उपपात नही दे सकती पर यदि चित्त मे गुरु को गहरा बिठा लिया जाये तो फिर कभी जुदाई या अलगाव सभव नही है। हमारे अतर मे जो गहरा समा गया उसे कोई निकाल नही पायेगा। गुरु ही नही, जिस भी व्यक्ति को आकृष्ट करना है उसे भी 'तन्मय योग' की साधना से आकृष्ट किया जा सकता है। लेकिन गलत कार्यो के लिए तन्मय योग का सहारा न लिया जाय। नही तो शक्ति का ह्रास होगा। दूसरो की भलाई के लिये यदि उसका सहारा लिया जाता है तो शक्ति तो वहाँ भी लगेगी पर उसका सदुपयोग होगा।

लन्दन मे एक बहिन ने बहुत-से प्रयोग किये। उसने बताया कि यदि कोई आह्लाद भाव से भरा हुआ है तो उसके चित्त को आकृष्ट करने मे मात्र पन्द्रह सेकड का समय लगता है और यदि मै उसके चित्त मे दूसरे भावो को उभारना चाहती हूँ तो पन्द्रह सेकंड मे कार्य हो जाता है। उसने यह भी बताया कि यदि व्यक्ति मे अहकार, द्वेष आदि के भाव है तो उसके चित्त को आकृष्ट करने में बहुत शक्ति व्यय करनी पडती है। तब तीस मिनट का समय परिष्करण मे लग जाता है और उसके लिए शक्ति सयोजन मे मेरा वजन भी घट जाता है। जिस समय शक्ति संप्रेषण करती हूँ उस समय तीस मिनट के कार्य मे मेरा चार पौड वजन घट जाता है। आप भी प्रयोग मे ध्यान रखे। कवि आनन्दघनजी भी कह रहे है—

सावधान मनसा करी, धारो जिनपद सेव ललना

जिनपद की सेवा और आराधना हम करना चाहते है तो सही रूप मे आराध्य को हृदय मे प्रतिष्ठित करे। प्रत्यक्ष है तो गुरु के सामने वृत्तियो को सशोधित करे और प्रत्यक्ष नही है तो स्वय को आराधना मे तन्मय कर ले, तभी होगा गुरु का, परमात्मा का उपपात। और फिर अपार आह्लाद भाव, प्रेम और आनन्द की अनुभूति होगी। वही अमृत की धार फिर बाहर बरसने लगेगी।

तीर्थकर के समवसरण मे यदि प्राणी की चित्तवृत्तियाँ शात हो जाती है तो उसका भी कारण है—उसे आनद का वातावरण मिलता है और आनन्द उसके भीतर आन्दोलित होने लगता है।

इब्राहिम खवास एक सत थे। एक बार मार्ग से जा रहे थे। जाते-जाते दोपहरी हो गई, विश्राम के लिए बैठे, सध्या हो गई थी, शिष्य भी साथ मे था। उन्होने कहा कि सध्या वदन, पूजन कर ले, फिर आगे बढेगे। और वे उपासना-आराधना मे लीन हो गये। वे एक वृक्ष के नीचे बैठे हुए थे। शिष्य ने देखा—एक सिह उसी दिशा मे अपनी मस्त चाल से चला आ रहा था। शिष्य घबरा रहा था, उसने गुरु से भी कहा कि सिह आ रहा है, पर उन पर तो कोई असर नही हुआ। शिष्य ने सोचा—मै क्यो व्यर्थ मे जान जोखिम मे डालूँ ? वह वृक्ष पर चढ गया। सिह आया। महात्मा ध्यान मे थे, सिह ने सूघा, इधर-उधर दृष्टि का प्रक्षेप किया और एक-दो क्षण रुक कर वापस चला गया। शिष्य ने देखा—अब सिह तो काफी दूर जा चुका है, अत वह नीचे उतर आया। महात्मा ध्यान से उपरत हुए। शिष्य ने बताया—'गुरुदेव सिह आया था।' 'आया होगा।' 'उसने आपको सूघा।' 'सूघा होगा।' 'अच्छा, चलो आगे चले।' कुछ दूर ही चले होगे कि एक मच्छर ने महात्मा को काटा, जलन होने लगी, हाथ मे मच्छर ने काटा था। महात्मा उस स्थान को मसलने लगे, ओफ ये मच्छर कैसा था ? भयकर जलन और पीड़ा हो रही है। आगे बढने मे भी उन्हे तकलीफ महसूस होने लगी। शिष्य विस्मित हुआ—'अरे, यह क्या। सिह आया तब तो गुरुदेव आप बैठे रहे, हिले नही और एक मच्छर ने काट लिया तो विचलित हो गये ? आप ऊँचे-नीचे हो रहे है ? मै यह क्या देख रहा हूँ ?' महात्मा ने कहा—'उस समय मै साधना मे था अत सिह के आने पर भी अविचल रहा और अभी मच्छर के काटने से विचलित हुआ इसका कारण है जिसे तुम समझ नही पाए। वस्तुत मै तो तुच्छ व्यक्ति हूँ पर जिस समय उपासना मे था उस समय खुदा मेरे साथ था इसलिए मुझे शेर से भी भय नही लगा। पर इस समय तुम जैसे कायर के साथ हूँ इसलिए मै विचलित हो गया।' तब समझे कि जिस समय अपने मन मे हम गुरु का, परमात्मा का निवास करा लेगे, हर सफलता हमारे कदमो मे होगी। भक्ति के पद की इन पक्तियो मे भी कहा है—

प्रभु मन मदिर मे आओ।
म्हारो जीवन सफल बनाओ जी।।प्रभु

पर प्रभु कैसे आये ? उसके लिए हमारे पास स्थान भी है या नही ? कथा

सुनी होगी—सेठ सुदर्शन को जब राजा के सन्मुख लाया गया तव राजा ने कहा—'बोल दो अभया के महल मे किस प्रकार आये ?' तव क्या उन्होने बोला कुछ ? क्या कर रहे थे वे ? उन्होने पौषध किया हुआ था। हम भी करते है पौषध, पर क्या चित्तवृत्ति मे गुरु को या परमात्मा को बैठाते है ? भाई कहते है—सकट भी आया था पर गुरु कृपा से टल गया। ऐसा कैसे हो गया ? कहॉ से पधार गए वहॉ गुरुदेव ?—'भय बिन होत न प्रीति', 'दु ख मे सुमिरण सव करे सुख मे करे न कोय।' दु ख मे भगवान् याद आते है, दु ख गया, भगवान् भी गये। दु ख से घिरता है तो गहराई से गुरु को, प्रभु को मन मे प्रतिष्ठित कर लेता है तो दु ख ऊपर से निकल जाता है। पर यदि दु ख मे अधीर हो गया तो उसके साथ भगवान भी क्या सहयोग करेगे ? गुरुदेव के माध्यम से ऊर्जा मिलती है, उसका ऊर्ध्वारोहण होता है। वह सारी ऊर्जा ज्ञान केन्द्र मे समाविष्ट हो जाती है। उस समय व्यक्ति के भीतर मूर्च्छा-भाव, आसक्ति नही रहती, पुद्गलो से लगाव नही रहता, विमल भावो का सचार हो जाता है। शास्त्रो मे कहा गया है—जो प्रमादी साधु है उसको कदाचित् देव अपहरण कर अन्य क्षेत्र मे भी पहुॅचा सकता है पर अप्रमत्त साधु का अपहरण नही कर सकता। इसका क्या कारण है ? अप्रमत्त साधु की आत्मा परमात्मा मे एकाकार भाव से स्थापित हो जाती है। गुरु के साथ, प्रभु के साथ तादात्म्य भाव होने पर सकट नहीं आ सकता। संकट आये भी तो व्यक्ति अविचल रहेगा। तीर्थकरो के जीवन प्रसग से ही देखिए। भगवान् महावीर पर, भगवान पार्श्वनाथ पर कैसे-कैसे परीषह, उपसर्ग आये। गजसुकुमाल के सिर पर जलते अगारे रखे गये पर वे सभी महापुरुष अविचलित रहे क्योकि उन्होने तन्मय योग, तादात्म्य भाव स्थापित कर लिया था। अत कोई भी शक्ति उन्हे विचलित नही कर सकी। चित्त-वृत्तियों का सशोधन नही है तभी तक मन में तरंगे उठेगी, आसक्ति का उद्भव होगा। आप सोचेगे—यह तन्मय योग तो साधु के लिए ही है। नहीं, ऐसी वात नही है। कहा गया है—

अहो समदृष्टि जीवड़ा, करे कुटुंब प्रतिपाल।
अंतर्गत न्यारो रहे, ज्यू धाय खिलावे वाल।।

कोई भी ऐसी साधना कर सकता है फिर वह पारिवारिक सवधो मे आसक्ति से नही जुडेगा बल्कि तटस्थ हो जायेगा। तव आत्मा मे अवस्थान होगा और वह निर्विकार भाव से कर्तव्यपालन करेगा पर आत्मा पर लेप नही लगने देगा। यह एक अवसर होता है, ऐसा अवसर कव मिलता है ? अवसर

मिले तो उसका लाभ उठा लेना चाहिये। तात्पर्य यह है कि उस प्रकार की साधना से भावित होकर परमात्मा का हृदय मे निवास करा लो 'धारो जिनपद सेव ललना'।

कवि ने शब्दो का जो सयोजन किया है उनमे गहरा रहस्य छिपा हुआ है। प्रभु की देशना मे जो विनय का स्वरूप व्यक्त हुआ है, जो स्रोत है वह कैसे प्रादुर्भूत हो ? गुरु के पास रहो तो वे ऊर्जा के स्रोत उद्घाटित होगे, ऊर्ध्वारोहण होगा। इन सारे सिद्धातो को जीवन मे महत्त्व देगे, उतारने का प्रयास करेगे तो फिर अनुभव करेगे तभी लाभ होगा नही तो शास्त्र भरे पडे है, पुस्तकालय भरे पड़े है, कोई लाभ नही होगा। मस्तिष्क मे भी यदि लाइब्रेरी भर ली तो भी काम नही होगा। एक आदमी कुए मे गिर गया, सिद्धान्तशास्त्री आया और अपनी बात कहने लगा। कर्मवादी कर्म की बात कहने लगा—'तुम्हारे कर्म ही ऐसे है, फल-भोग कर रहे हो।' ज्योतिषी भी आया। कहने लगा—'कुडली देख लू कि तुम निकलोगे या यही पडे रहोगे ?' वह व्यक्ति मन मे कहने लगा—'पहले मुझे निकाल तो लो, एक बार निकल गया तो बता दूगा कि सिद्धात, कर्म और कुडली क्या कहते है।' वह कह रहा है सहयोग दो तो फिर मै सब-कुछ बता दूगा। हम भी देख रहे है—सिद्धात यह कह रहा है पर जब तक प्रेक्टिकल नही किया, तत्परता नही बनी तब तक क्या होना-जाना है। हम पानी मे है, पानी ऊपर से निकलता जा रहा है पर पीया नही, तो प्यास बुझेगी नही। पुरुषार्थ करना होगा तभी शक्ति के स्रोत उद्घाटित होगे। आचार्य भगवन् के सान्निध्य का लाभ ले तथा उनके सामीप्य से ऊर्जा को सक्रिय करे। यह सामीप्य तभी लाभदायी होगा जब हमारा चित्त गुरुमय बन जाये।

रामायण का प्रसग है। राम सीता के विरह मे बार-बार सीता-सीता की रट लगाये हुए थे। लक्ष्मण ने कहा—'आप लगातार उन्ही के ध्यान मे डूबे रहे तो फिर आप वैसे ही, अर्थात् सीता, बन जायेगे।' राम ने कहा—'कोई बात नही, मै सीता बन जाऊँगा, तो सीता भी तो राम मे तन्मय होगी, वे राम बन जायेगी।' अर्थात् व्यक्ति का परिवर्तन भले हो जाये पर वे रहेगे तो सही। प्रेक्टिकल करो, अनुभूत होगा। आजकल व्यक्ति पर्स मे नोटो के साथ एक तस्वीर भी रख लेता है और कहता है—सुबह-सुबह देख लेता हूँ। आपकी चित्त-वृत्ति मे यदि है तो फिर आपको बाह्य अवलम्बन नही लेना पडेगा और जहाँ आप बैठेगे वही गुरु का सामीप्य मिल जायेगा। गुरु को हृदय मे बिठा लो तो परमात्मा भी बैठे जायेगे। गुरु तो परमात्मा तक पहुँचने का माध्यम है।

आत्मा भले ही स्खलित होकर कर्मों से आवेष्टित हो गई है पर यदि शक्ति का ऊर्ध्वारोहण हो जाये तो, पाप कर्मों से मुक्त हो सकते है सिद्धान्त की यह बात व्यवहार मे ला कर देखें तो स्वतः ही विश्वास हो जायेगा। संतों के आदर्श इसे प्रमाणित करते हैं। गुरु के सान्निध्य का लाभ मिले तो बहुत अच्छी बात है अन्यथा तन्मय योग का सहारा लिया जा सकता है। व्यक्ति और आत्मा के कल्याण का इससे अच्छा अन्य कोई मार्ग नहीं है। ❖

[illegible] 13

25-3-96